Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

846

रसामृतम्

137

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

137

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

All India Ayurvedic Congress,
"Dhanwantari Bhavan,"
Road 66, Punjabi Bagh; New Delhi-110026

Date of Return. 13.10.82

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसामृतम्

लेखक

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

नेपाली खपड़ा, पोस्ट बक्स नं. ७५, बनारस

वि. सं. २००८, ई. स. १९५१

मूल्य ५) रु.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुस्तकप्राप्तिस्थान—

१ मोतीलाल बनारसीदास, पोस्ट बक्स नं. ७५, **बनारस**

२ मोतीलाल बनारसीदास, किनारी बाजार, **दिल्ली**

३ मोतीलाल बनारसीदास, **बांकीपुर, पटना**

Vaidyaraj Zandu Bhatt
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.........................
Book No.........................
Acc No.........................

इस ग्रन्थके पुनर्मुद्रण आदिके सब अधिकार लेखकके अधीन हैं ।

L: 68
152N51

– मुद्रकः –

रामचंद्र येसू शेडगे,

निर्णयसागर प्रेस,

कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई नं. २

000484

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रस्तावना।

यह **रसामृत** ग्रन्थ विद्यार्थियोंको रसशास्त्रके पाठ्य ग्रन्थके रूपमें तथा चिकित्सकोंको भस्म, पिष्टि, रसयोग आदिके निर्माणमें उपयुक्त-मार्गदर्शक हो इस दृष्टिसे लिखा गया है। द्रव्यगुणविज्ञान–उत्तरार्धके **औषधद्रव्यविज्ञान** नामक द्वितीय खण्डमें चिकित्सकों-के नित्य व्यवहार–उपयोगमें आनेवाले उद्भिज्ज और प्राणिज द्रव्योंका वर्णन दिया गया है। खनिज (भौम–पार्थिव) द्रव्योंका वर्णन अवशिष्ट था, वह इस ग्रन्थमें लिखा है। पार्थिव द्रव्योंके उपयोगका आरम्भ आर्षकालसे ही हो गया था। चरक–सुश्रुतमें जिन खनिज द्रव्योंका उल्लेख मिलता है उनकी संक्षिप्त स्थलनिर्देशके साथ एक सूची परिशिष्ट ९ में दी है, इससे यह बात स्पष्ट मालूम होगी। तथापि उस समय वनस्पति और प्राणिज द्रव्योंसे ही अधिक काम लिया जाता था, पार्थिव द्रव्योंका उपयोग कम किया जाता था। आर्षकालमें खनिज द्रव्योंका उपयोग कुछ रोगोंकी चिकित्सातक ही सीमित था। पार्थिव द्रव्योंका उपयोग रसशास्त्रके विकासके साथ-साथ अधिक प्रमाणमें होने लगा। रससिद्धोंने प्रायः सर्व रोगोंकी चिकित्सा खनिज द्रव्योंसे करनेका यत्न किया है। रसग्रन्थोंमें उद्भिज्ज और प्राणिज द्रव्योंका उपयोग भस्मों और रसयोगोंके बनानेमें सहायक रूपमें तथा उनके अनुपान रूपमें देखा जाता है।

आर्षकालमें पार्थिव द्रव्योंका उपयोग प्रायः उनका अञ्जनसदृश अति सूक्ष्म चूर्ण[1] (पिष्टि) बनाकर किया जाता था, रसतन्त्रोंमें जैसा अग्निपुटके द्वारा उनके मारण (भस्म बनाने) का विधान है, ऐसा चरक–सुश्रुतमें देखनेमें नहीं आता। मुक्ता-प्रवाल आदि रत्न और उपरत्नोंकी पिष्टी बनानेकी प्रक्रिया यूनानी वैद्यों-हकीमोंकी देखादेखी भारतीय वैद्योंमें प्रचलित हुई यह कई वैद्योंकी धारणा ठीक नहीं है। चरक-सुश्रुतके समयमें भी उनकी पिष्टि[2] बनाकर उपयोग किया जाता था। लोहा (तीक्ष्णायस्), सुवर्ण, रौप्य आदि धातुओंके कण्टकवेधी पत्रे बना, उनको अग्निमें वे रक्तवर्ण हो जाँय इतना तपा-तपा, शालसारादि गण-त्रिफला आदि वनस्पतियोंके क्वाथ–गोमूत्र आदिमें बुझा, उनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर प्रयोग करनेका विधान सुश्रुत और चरकमें पाया जाता है। इस प्रकार बनाए हुए धातुओंके चूर्णको सुश्रुतने **अयस्कृति**[3] नाम दिया है।

---

१ "मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम्।" (च. चि. अ. १६, श्लो. ७४)। २ "पिबे-त्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे।" (च. चि. अ. २६, श्लो. २६)। "प्रवाल-मुक्ताञ्जनशङ्खचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकोत्थम्।" (सु. उ. अ. ४४, श्लो. २१)। ३ अय-स्कृतिका विधान इसी ग्रन्थमें पृष्ठ ४६ पर देखें। "त्रिफलाया रसे मूत्रे गवां क्षारेऽथ लावणे। क्रमेण चेङ्गुदीक्षारे किंशुकक्षार एव च॥ तीक्ष्णायसस्य पत्राणि वह्निवर्णानि साधयेत्। चतुरङ्गुल-दीर्घाणि तिलोत्सेधतनूनि च॥ ज्ञात्वा तान्यञ्जनाभानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।×××। अनेनैव प्रकारेण हेम्नश्च रजतस्य च। आयुःप्रकर्षकृत् सिद्धः प्रयोगः सर्वरोगनुत्॥" (च. चि. अ. १, पा. ३)। क्षारे लावणे इति ज्योतिष्मत्याः क्षारे। क्षारे इति क्षारोदके। साधयेत् निर्वापयेत्। 'अञ्जना-भानि' इत्यस्य 'ज्ञात्वा' इत्यनेन, 'सूक्ष्मचूर्णानि' इत्यनेन च संबन्धः। तेन अञ्जनवर्णानि ज्ञात्वा अञ्जनसदृशसूक्ष्मचूर्णानि कारयेदित्यर्थः।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुश्रुत उत्तरतन्त्र अ. १८, श्लो. ८५-९५ में लिखे हुए चूर्णाञ्जनके योगमें सौवीराञ्जन, पन्द्रह सुवर्ण, ताम्र और रौप्य–इनको मूषामें अग्नि पर गला, गोमूत्र-दही-घृत-मधु आदि द्रव पदार्थोंमें बुझा, सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उनका प्रयोग करना लिखा है। पार्थिव द्रव्योंकी अग्निपुट द्वारा भस्म बनानेकी प्रक्रिया रसशास्त्रके विकासके वाद प्रचलित हुई है ऐसा मालूम होता है।

रसशास्त्रोक्त शोधनविधिका प्रयोजन।

रसशास्त्रमें पारदसे लेकर रत्नों-मणियों तथा सविष (तीक्ष्णवीर्य) उद्भिज्ज द्रव्योंका विशिष्ट प्रक्रियाओं द्वारा शोधन करके औषधार्थ प्रयोग करना लिखा है। शोधन-विधिका प्रधान उद्देश्य उन द्रव्योंमें रहे हुए शरीरको हानि पहुँचानेवाले दोषोंको दूर करना यह बताया गया है। रसग्रन्थोंमें अशोधित पारद, गन्धक, स्वर्णादि लोह तथा माक्षिक आदि धातु द्रव्योंसे शरीरमें कौन–कौनसे दोष (विकार) उत्पन्न होते हैं यह प्रत्येक द्रव्यके प्रकरणमें प्रायः लिखा गया है। जिन-जिन अशोधित द्रव्योंके दोषोंका वर्णन रसग्रन्थोंमें मिला उनका संग्रह परिशिष्ट ६ में दिया है। रसशास्त्रोक्त शोधनविधिके पूर्वोक्त प्रधान उद्देश्यके अतिरिक्त उस द्रव्यमें रही हुई अन्य अशुद्धि (तदतिरिक्त अन्य द्रव्यके मिश्रण) को दूर करना तथा उसको मारण (भस्म बनाने) के लिये उपयुक्त बनाना जिससे उसकी शीघ्र और सरलतासे भस्म बन सके-ये दो और उद्देश्य भी हैं। रसशास्त्रोक्त शोधनविधिसे शुद्ध किये हुए द्रव्यमें कौन-कौनसे भौतिक और रासायनिक परिवर्तन हुए उनका तथा उस द्रव्यके रसशास्त्रमें जो दोष वर्णित हैं उनकी निवृत्ति हुई कि नहीं–इन विषयोंका अनुसंधान होना चाहिये।

रसशास्त्रोक्त मारणविधिका प्रयोजन।

रसशास्त्रमें लोह, धातु (खनिज), रत्न, उपरत्न, शङ्ख–कौड़ी–मोती–प्रवाल आदि प्राणिज द्रव्य—आदिकी भस्म या पिष्टि बनाकर उनका औषधार्थ प्रयोग करनेको लिखा है। भस्म या पिष्टि बनानेके मुख्य प्रयोजन उनका अति सूक्ष्म अणुओंमें परिवर्तन करना जिससे उनका शरीरमें पचन हो सके, वे रक्तादि धातुओंमें मिल सकें, वे शरीरमें किसी प्रकारका अपाय न कर सकें और उनके गुणोंकी वृद्धि हो ये हैं। भस्म बनानेमें पारद-गन्धक-ताल-मनःशिला आदि विशिष्ट द्रव्योंका संयोग, वनस्पतियोंका स्वरस-गोमूत्र आदि द्रव पदार्थ, मर्दन (घोटना) और अमुक निश्चित मात्रामें अग्निमें पकाना (पुट देना)—इन साधनों। तथा क्रियाओंकी आवश्यकता होती है। भस्म बनानेमें कौन-कौन सी सावधानियाँ रखनी चाहिये यह **भस्म बनाने और पुट देनेके विषयमें आवश्यक सूचनाएँ** इस शीर्षक परिशिष्ट १ में देखें।

रसग्रन्थोंमें एक–एक द्रव्यकी अनेक शोधन और मारण विधियाँ लिखी गई हैं। उनमेंसे जो विधियाँ प्रायः सर्वसंमत, वैद्योंमें प्रचलित, सुकर तथा स्वयं अनुभूत हैं उनको इस ग्रन्थमें स्थान दिया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सत्त्वपातन ।

जिस धातु(खनिज)द्रव्यमें किसी प्रकारका लोह (Metal) हो उस लोहको क्रियाविशेषसे पृथक् करनेकी क्रियाको **सत्त्वपातन** और पृथक् किये हुए पदार्थ-लोहको रसशास्त्रमें **सत्त्व** कहते हैं। रसशास्त्रमें जिन-जिन धातुओंके सत्त्वपातनका विधान मिलता है उनका वर्णन परिशिष्ट ७ में दिया है।

खनिज द्रव्योंका रसशास्त्रमें दिया हुआ वर्गीकरण ।

रसशास्त्रमें पारदका किसी वर्गमें अन्तर्भाव न कर उसको स्वतन्त्र द्रव्य माना है। अन्य खनिज द्रव्योंका **लोह, महारस, साधारणरस, उपरस, रत्न** और **उपरत्न**-इन छः प्रधान वर्गोंमें वर्गीकरण किया है। इन वर्गोंका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

१—**लोहवर्ग**[1]—प्राचीन समयमें सोना, चांदी आदि जिन द्रव्योंको प्रचलित भाषामें **धातु** तथा अंग्रेजीमें **मेटल**—(Metal) कहते हैं उनको **लोह** तथा जिन खनिजोंमें किसी प्रकारका लोह विद्यमान हो उनको **धातु** (लोहको धारण करनेवाला-अं. ओअर Ore) कहते थे। **चाणक्यने** अर्थशास्त्र (आदिसे अ. ३३) में **सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, तीक्ष्ण** (अयस्), **त्रपु** (वङ्ग), **सीस** (नाग) और **वैक्रन्तक**[2]—इन सात लोहोंके खनिजोंका स्वरूप लिखकर उनको **स्वर्णधातु, रूप्यधातु, तीक्ष्णधातु, ताम्रधातु, त्रपुधातु, सीसधातु** और **वैक्रन्तकधातु** ये नाम दिये हैं। रसार्णवमें सुवर्ण और रौप्यको **शुद्धलोह,** ताम्र और अयस्‌को **साधारणलोह** तथा नाग और वङ्गको **पूतिलोह** नाम देकर छः प्रकारके **अमिश्र** लोहोंका वर्णन किया है। [3]सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, राँगा और सीसा ये छः लोह अति प्राचीन कालसे भारतीयोंको मालूम थे। पीछे रससिद्धोंने खर्परसे जस्ता निकाला, उसका जनतामें प्रचार हुआ तब जस्तेको भी लोहोंमें स्थान मिला[4]। भारतीय रससिद्धोंने स्रोतोञ्जनसे **वरनाग** (एन्टीमनी), फिटकिरीसे कांक्षीसत्त्व (एल्युमिनियम्) और चपलसे चपलसत्त्व (बिसमथ या सेलिनियम्) ये लोह भी निकाले थे। परन्तु उनका प्रचार रससिद्धोंमें धातुवादतक ही सीमित रहा, चिकित्सा या जनसाधारणके व्यवहारमें इनका प्रचार नहीं हुआ।

---

१ संस्कृत भाषामें लोहे(अयस्)के लिये भी 'लोह' शब्दका व्यवहार होता है। २ वैक्रन्तकके लिये इसी ग्रन्थमें पृ. ८४–८५ देखें। ३ "सुवर्णं रजतं ताम्रं तीक्ष्णं वङ्गो भुजङ्गमः। लोहं तु षड्विधं प्रोक्तं यथापूर्वं तदक्षयम् ॥ तत्रादितः सुरेशानि **सारलोह**द्वयं स्मृतम्। **साधारणे** तीक्ष्णशुल्बे नागवङ्गौ तु **पूतिकौ** ॥" (रसार्णव प. ७)। ४ "सुवर्णं रजतं ताम्रं वङ्गं **यशद**-सीसकम्। लोहं चैते मताः सप्त **धातवो** गिरिसंभवाः ॥" (आ. प्र. अ. ७)। इस श्लोकमें स्वर्णादि सातों लोहोंके लिये '**धातु**' शब्दका प्रयोग किया है, जो आजकलकी लोक भाषामें इस अर्थमें रूढ हो गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२—**महारसवर्ग**—रसार्णवमें **माक्षिक, विमल, शैल** (**शिलाजीत**), **चपल, रसक** (खर्पर), **सस्यक** (मयूरतुत्थ) **हिंगुल** और **स्रोतोञ्जन**—इन आठ द्रव्योंको **महारस** नाम दिया है। **सोमदेवने रसेन्द्रचूडामणि**में **अभ्रक, राजावर्त, वैक्रान्त, सस्यक** (मयूरतुत्थ), **विमल, शिलाजीत, तुत्थ,** (खर्पर) और **माक्षिक**—इन आठ द्रव्योंकी महारसोंमें गणना की है। रसार्णवोक्त **चपल, हिंगुल** और **स्रोतोञ्जन**के स्थानमें **सोमदेवने अभ्रक, राजावर्त** और **वैक्रान्त**को **महारसों**में रक्खा है। अर्थात् महारसके विषयमें दोनोंमें मतैक्य नहीं है।

३—**उपरसवर्ग**—**रसार्णव**में **गन्धक, हरताल, मैनसिल, फिटकिरी, कसीस, गेरू, राजावर्त** और **कङ्कुष्ठ**—इन आठ द्रव्योंको तथा **रसेन्द्रचूड़ामणि**में **गन्धक, हरताल, फिटकिरी, मैनसिल, सौवीराञ्जन, कंकुष्ठ, कसीस** और **गेरू**—इन आठ द्रव्योंको **उपरस** नाम दिया है। रसार्णवोक्त **राजावर्त**के स्थानमें रसेन्द्रचूडामणिमें **सौवीराञ्जन** रखा गया है। **आयुर्वेदप्रकाशमें गन्धक, हिङ्गुल, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, स्रोतोञ्जन, टङ्कण, लाजवर्द, चुम्बक पत्थर, फिटकिरी, शङ्ख, खड़िया मिट्टी, गेरू, कसीस, खपरिया, कौड़ी, बालू, बोल** और **सौराष्ट्री** (जिससे फिटकिरी बनाई जाती है वह मिट्टी)—इन सबकी **उपरसों**में गणना की है।

साधारणरसवर्ग—कमीला, चपल, संखिया, नौसादर, कौड़ी, अंबर, गिरिसिन्दूर, हिंगुल और **मुर्दारसंग**—इन आठको **रसेन्द्रचूडामणि**में **साधारणरस** कहा गया है।

रत्नवर्ग—हीरा, प्रवाल, मोती, पन्ना, लहसुनिया, गोमेद, माणिक, नीलम और **पुखराज** ये नौ **रत्न** कहलाते हैं।

---

१ "माक्षिको विमलः शैलश्चपलो रसकस्तथा। सस्यको दरदश्चैव स्रोतोञ्जनमथाष्टमम्॥ अष्टौ महारसाः" (रसार्णव पटल ७), २ "महारसाः स्युर्घनराजवर्तवैक्रान्तसस्या विमलाद्रिजाते। तुत्थं च ताप्यं च" (र. चू. अ. १०)। इस श्लोकमें **सोमदेवने सस्यक**शब्दका **मयूरतुत्थ** (**नीलाथोथा**) और तुत्थ शब्दका **रसक** (**खर्परिया**) के अर्थमें प्रयोग किया है एसा उसके आगे दिये हुए उन द्रव्योंके वर्णनसे मालूम होता है। ३ 'गन्धकस्तालकशिला सौराष्ट्री खगगैरिकम्। राजावर्तश्च कङ्कुष्ठमष्टावुपरसाः स्मृताः" (रसार्णव प. ७)। ४ "गन्धाश्मतालतुवरी-कुनटीसुवीरकङ्कुष्ठखेचरकगैरिकनामधेयाः। उक्ता बुधैरुपरसास्तु" (र. चू. अ. ११)। ५ "गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोञ्जनं टङ्कणं राजावर्तकचुम्बकौ च स्फटिका शङ्खः खटी गैरिकम्। कासीसं रसकः कपर्दसिकताबोलाश्च कङ्कुष्ठकं सौराष्ट्री च मता अमी अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः॥ तुल्याः" (आ. प्र. अ. २)। ६ "कम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नरसारकः। कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूरहिङ्गुलौ॥ मृद्दारशृङ्गमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः" (र. चू. अ. ११)। ७ "वज्रं विद्रुममौक्तिके मरकतं वैदूर्यगोमेदके माणिक्यं हरिनीलपुष्पदृषदौ रत्नानि नाम्ना नव" (रसपद्धति पृ. ६२)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपरत्नवर्ग—वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, पेरोजा, लाजवर्द और **स्फटिक—**आदि अन्य मणियोंकी उपरत्नोंमें गणना की गई है ।

खनिज द्रव्योंका ऊपर जो रसशास्त्रोक्त वर्गीकरण दिया है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि**—महारस, उपरस** और **साधारणरस—**इन संज्ञाओं (पारिभाषिक नामों) के विषयमें रसतन्त्रोंमें एकवाक्यता नहीं है, किन्तु बड़ा मतभेद है । **महारस, उपरस** और **साधारणरस—**इन संज्ञाओंसे कोई विशिष्ट-निश्चित अर्थका बोध भी नहीं होता । चरक-सुश्रुत जैसे आर्ष ग्रन्थोंमें रसशास्त्रोक्त प्रायः सब द्रव्योंका उल्लेख मिलने पर भी उनके वर्गवाचक **महारस, उपरस** और **साधारणरस—**इन संज्ञाओंका उल्लेख नहीं मिलता । इन वर्गोंमें खनिज द्रव्योंके साथ **कम्पिल्लक-बोल** जैसे उद्भिज्ज तथा अग्निजार जैसे प्राणिज द्रव्य भी मिला दिये गये हैं, अतः रसशास्त्रमें प्रयुक्त प्रधान द्रव्योंका फिरसे शास्त्रीय पद्धतिसे वर्गीकरण करना चाहिये ।

इस ग्रन्थका अध्यायक्रम ।

रसशास्त्रमें **पारद** प्रधान द्रव्य है । अतः उसका **रसविज्ञानीय** नामक प्रथम अध्यायमें वर्णन कियाँ है । पारदके अन्तर रसशास्त्रमें **गन्धक**की प्रधानता है । अतः उसका **गन्धकविज्ञानीय** नामक द्वितीय अध्यायमें स्वतन्त्र वर्णन दिया है । **लोह-विज्ञानीय** नामक तृतीय अध्यायमें **सुवर्ण, रजत, ताम्र, वङ्ग, नाग, यशद** और **अयस्** (लोहा)—इन सात प्रधान लोहोंका वर्णन किया है । **पित्तल** और **कांस्य** ये ताम्रप्रधान मिश्रलोह होनेसे तथा **माक्षिक (सुवर्णमाक्षिक), तुत्थ** और **जंगार(ल)** ये ताम्रके खनिज या यौगिक होनेसे उनका ताम्रके प्रकरणमें वर्णन किया है । **सिन्दूर, मुरदारसंग** तथा **सफेदा** ये नागसे बनाये जाते हैं और **सौवीराञ्जन (नीलाञ्जन)** नागका खनिज (धातु) है इसलिये इनका नागके प्रकरणमें वर्णन किया है । **पुष्पाञ्जन** यशदसे बनाया जाता है और **खर्पर** यशदका खनिज-धातु है इसलिये इनका यशदके प्रकरणमें वर्णन किया है । **मण्डूर, विमल, कासीस, गैरिक, अभ्रक, अयस्कान्त** और **शिलाजतु** ये लोहेके विकार या धातु हैं (इनसे सत्त्वरूपमें लोहा प्राप्त होता है) इसलिये इनका लोहे (अयस्) के प्रकरणमें वर्णन किया गया है । **मल्लविज्ञानीय** चतुर्थ अध्याय है । इसमें **मल्ल** (संखिया) तथा मल्लप्रधान यौगिक **हरिताल** और **मनःशिला**—इनका वर्णन किया है । पाँचवाँ **सुधाविज्ञानीय** अध्याय है । इसमें **सुधा (चूना)** और सुधाप्रधान **खटिका,**

---

१ "वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च चन्द्रकान्तो नृपोपलः । पेरोजकं च स्फटिकं क्षुद्ररत्नगणो ह्ययम् ॥" (र. त. २३ त.) । २ इस ग्रन्थमें पारदके आठ ही संस्कार लिखे गये हैं । शेष संस्कारोंका प्रचार इस समय वैद्योंमें विरल है । विना स्वयं अनुभव किये इनका इस ग्रन्थमें लिखना मैंने उचित नहीं समझा । इन संस्कारोंका पारिभाषिक अर्थ **द्रव्यगुणविज्ञान उत्तरार्धके प्रथम परिभाषाखण्ड** अ. ४ में देखें ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गोदंती और **सफेद सुरमा**—इनका वर्णन दिया है। छठा **सिकताविज्ञानीय** अध्याय है। इसमें **सिकता** और सिकताप्रधान यौगिक **दुग्धपाषाण (संगे-जराहत), कौशेयाश्म, जहरमोहरा** और **हजुल्‌यहुद**—इनका वर्णन किया गया है। आठवाँ **लवण-क्षारविज्ञानीयाध्याय** है। इस अध्यायमें इस समय वैद्योंमें प्रचलित **लवणों** और **क्षारों**का वर्णन किया गया है। आठवाँ **रत्न-विज्ञानीयाध्याय** है। इस अध्यायमें रसशास्त्रोक्त **रत्न** और **उपरत्न** तथा यूनानी वैद्यकमें प्रचलित **संगे यशब, अकीक** और **कहरुबा**—इन तीन उपरत्नोंका वर्णन किया है। नववाँ **रसयोगविज्ञानीयाध्याय** है। इस अध्यायमें वैद्योंके नित्यके व्यवहारमें उपयुक्त ६६ रसयोग लिखे हैं। अन्तमें ९ परिशिष्ट दिये गये हैं। प्रथम परिशिष्टमें **भस्म बनाने और पुट देनेके विषयमें आवश्यक सूचनाएँ** लिखी हैं। द्वितीय और तृतीय परिशिष्टमें **चपल** और **शिलाजतु** का वर्णन जो मूलमें देना रह गया था वह दिया गया है। चतुर्थ परिशिष्टमें **माक्षीक** और **विमल** पर विशेष विचार दिये गये हैं। पञ्चम परिशिष्टमें **रसाञ्जन**के विषयमें जो इस समय वैद्योंमें मतभेद प्रचलित है उसपर मैंने अपने विचार लिखे हैं। छठे परिशिष्टमें ठीक शुद्ध न किये हुए और ठीक भस्म न बने हुए लोह और धातुओंके जो दोष रसग्रन्थोंमें वर्णित है, उनका विवरण किया गया है। सातवें परिशिष्टमें रसशास्त्रमें जिन-जिन धातुओंके **सत्त्वपातन**का विधान मिला, उनका संग्रह करके लिखा है। सामान्यतः वैद्योंमें इस समय सत्त्वपातनकी प्रक्रियाका प्रचार नहीं सा है। धातुओंके सत्त्वोंका उपयोग विशेषतः पारदके जारण आदि संस्कारोंमें होता है। आठवें परिशिष्टमें रसयोगोंके बनानेमें उपयोगमें आनेवाले वत्सनाभ आदि कुछ उद्भिज्ज द्रव्योंकी शोधनविधि लिखी है। नववें परिशिष्टमें रसशास्त्रोक्त जिन-जिन द्रव्योंका **चरक—सुश्रुत**में उल्लेख मिलता है उनकी संक्षिप्त स्थलनिर्देशके साथ सूची दी है।

प्रत्येक द्रव्यका वर्णन करते समय उस द्रव्यके प्रधान संस्कृत नाम, उत्तर भारतकी प्रधान भाषा—हिंदी, बंगाली, मराठी और गुजरातीके नाम, यूनानी वैद्यकमें प्रचलित अरबी-फारसी नाम तथा अंग्रेजी नाम दिये हैं। पीछे उस द्रव्यका संक्षिप्त परिचय, गुण, सामान्य और विशेष शोधनविधि तथा मारणविधि लिखी है। इस प्रकार इस ग्रन्थको पाठ्यग्रन्थतया उपयुक्त बनानेका यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थके निर्माणमें नीचे लिखे हुए ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है।

			संकेत चिह्न
रसहृदयतन्त्र—आयुर्वेदीयग्रन्थमालामें		मुद्रित	र. हृ. तं.
रसप्रकाशसुधाकर	,,	,,	र. प्र. सु.
रसपद्धति सटीक	,,	,,	र. प.
रससार	,,	,,	र. सा.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

		संकेत चिंह
आयुर्वेदप्रकाश—आयुर्वेदीयग्रन्थमालामें मुद्रित		आ. प्र.
लोहसर्वस्व ,, ,,		
रसेन्द्रचूडामणि सोमदेवविरचित		र. चू.
भैषज्यरत्नावली		भै. र.
रसेन्द्रसारसंग्रह सटीक वैद्य पं. **श्री घनानन्दजी पन्त** विरचित व्याख्यासमेत		र. सा.
रसतरङ्गिणी स्व. वा. कविराज **श्री नरेन्द्रनाथजी मित्र** विरचित		र. तं.
रसरत्नसमुच्चय आयुर्वेदाचार्य श्री. **दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी** विरचित व्याख्यासमेत		र. र. स.
परिभाषाखण्ड		
भारतीयरसशास्त्र स्व. वा. डा. **वामन गणेश देसाई** विरचित		
चरक		च.
सुश्रुत		सु.
अष्टाङ्गसंग्रह		अ. सं.
यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान वैद्य-हकीम **श्रीदलजीतसिंहजी** विरचित		
रत्नप्रदीप—श्रीयुत **महादेव लक्ष्मण खांबेटे** (जलगाम-पूर्वखानदेश) विरचित		
योगरत्नाकर निर्णयसागर प्रेस वंबई द्वारा प्रकाशित		यो. र.

इस ग्रन्थके प्रूफ देखनेमें मेरे प्रिय शिष्य **वैद्य पं. रणजितरायजी आयुर्वेदालङ्कारने** बड़ी सहायता की है। इसलिये मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

काशीके सुप्रसिद्ध ग्रन्थप्रकाशक और पुस्तकविक्रेता **श्री मोतीलाल बनारसीदास** ने कागज और छपाईकी मँहगाइके समयमें अपना प्रेस होते हुए भी मेरे आग्रहसे वंबईके सुप्रसिद्ध **निर्णयसागर प्रेस**में इस ग्रन्थको छपवाकर प्रसिद्ध किया, इसलिये मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

इस ग्रन्थके तैयार करने और छपानेमें बने इतना यत्न किया गया है। तथापि भ्रम-प्रमादादिवश अनेक त्रुटियाँ रहना संभव है। यदि विद्वान् वैद्य इन त्रुटियोंको पत्रद्वारा सूचित करेंगे तो अगले संस्करणमें उनको सुधार लिया जायगा।

डॉ. विगास स्ट्रीट
वंबई नं. २
वि. सं. २००८

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसामृतान्तर्गतविषयाणां वर्णानुक्रमणिका ।

	पृष्ठम्
अकीकगुणाः	८२
अकीकनामानि	८२
अग्निकुमाररसः	८९
अग्नितुण्डीवटी	८९
अजीर्णारिरसः	९०
अञ्जनसत्त्वपातनम्	१४४
अतिसारहरीवटी	९०
अभ्रकनामानि	५३
अभ्रकभस्मगुणाः	५४
अभ्रकमारणम्	५४
अभ्रकवर्णनम्	५३
अभ्रकसत्त्वपातनम्	१४१
अयस्कान्तभस्मगुणाः	५५
अयस्कान्तनामानि	५५
अयस्कृतिः	४६
अशुद्धखर्परदोषाः	१४०
अशुद्धगन्धकदोषाः	१३९
अशुद्धटङ्कणदोषाः	१४०
अशुद्धतालकदोषाः	१३९
अशुद्धतुत्थदोषाः	१४०
अशुद्धमनःशिलादोषाः	१४०
अशुद्धवज्रदोषाः	१४०
अशुद्धशिलाजतुदोषाः	१४०
अशुद्धस्यामृतस्य च अयसः दोषाः	१३९
,, नागस्य ,,	१३८
,, माक्षिकस्य ,,	१४०
,, यशदस्य ,,	१३८
,, रजतस्य ,,	१३८
,, वङ्गस्य ,,	१३८

	पृष्ठम्
अशुद्धस्यामृतस्य च सुवर्णस्य दोषाः	१३८
अशुद्धहिङ्गुलदोषाः	१३९
अशुद्धाभ्रकदोषाः	१३९
अश्वकञ्चुकीरसः	९१
अष्टरससंस्काराः	२
अहिफेनशुद्धिः	१४६
आरोग्यवर्धनी वटिका	९१
उत्थापनम् (रससंस्कारः)	३
औद्भिदलवणम्	६९
औद्भिदलवणगुणाः	७०
कज्जली	६
कस्तूरीभैरवरसः	९२
कहरुबा (तृणकान्तमणिः)	८६
कांस्यगुणाः	२६
कांस्यनामानि	२६
कांस्यस्य शोधनमारणे	२६
कान्तपाषाणमारणम्	५५
कान्तपाषाणशोधनम्	५५
कामदुघारसः	९३
कामलाहररसः	९३
कालारिरसः	९३
काशीशगुणाः	५०
काशीश-गोदन्तीभस्म	६३
काशीशद्रवः	५०
काशीशनामानि	४९
काशीशमारणम्	५०
काशीशशोधनम्	५०
काशीशसत्त्वपातनम्	१४४
कासकर्तरीवटिका	९४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	पृष्ठम्
कृपीलुशोधनम्	१४७
कृमिकुठाररसः	९४
कौशेयाश्मा	६५
खटिकागुणाः	६२
खटिकादिचूर्णम्	६२
खटिकानामानि	६१
खर्पर (रसक) सत्त्वपातनम्	१४४
गन्धकगुणाः	१४
गन्धकनामानि	१४
गन्धकरसायनम्	१५
गन्धकविज्ञानीयाध्यायो द्वितीयः	१४
गन्धकशुद्धिः	१५
गिरिसिन्दूरम्	१३
गिले अरमनी	५२
गिले मक्तूम	५२
गुञ्जाशुद्धिः	१४७
गैरिकगुणाः	५१
गैरिकनामानि	५१
गैरिकभेदाः	५१
गैरिकशुद्धिः	५२
गोदन्तीनामानि	६२
गोदन्तीभस्म	६२
गोमेदगुणाः	७७
गोमेदनामानि	७७
गौरीपाषाणगुणाः	५६
गौरीपाषाणनामानि	५६
गौरीपाषाणशुद्धिः	५६
गौरीपाषाणसत्त्वपातनम्	१४३
चतुर्भुजरसः	९५
चतुर्मुखरसः	९५
चन्दनादिलौहम्	९६
चन्द्रकलारसः	९७

	पृष्ठम्
चन्द्रकलावटी	३७
चन्द्रप्रभावटी	९८
चन्द्रामृतरसः	९९
चपलवर्णनम्	१२७
चपलसत्त्वपातनम्	१४३
चरकसुश्रुतयोरुक्तानां रसशास्त्रोक्त-प्रधानद्रव्याणां स्थलनिर्देशपूर्वकं नामानि	१४८
चूर्णोदकम्	६१
जंगाल-जंगार	३२
जयपालशोधनम्	१४६
जवाहरमोहरा	८८
ज्वरसंहाररसः	९९
टङ्कणगुणाः	७३
टङ्कणनामानि	७२
ताम्रगुणाः	२२
ताम्रदोषाः	२४
ताम्रपर्पटी	१००
ताम्रभस्मनोऽमृतीकरणम्	२४
ताम्रमारणम्	२३
ताम्रस्य विशेषशुद्धिः	२३
तार्क्ष्यम् (मरकतम्)	७८
तार्क्ष्यगुणाः	७८
तालकसत्त्वपातनम्	५८
तालसिन्दूरम्	५८
तिक्ताद्यं लौहम्	१०१
तुत्थगुणाः	३०
तुत्थद्रवः	३१
तुत्थनामानि	३०
तुत्थमलहरः	३१
तुत्थशोधनम्	३०
तुवरीसत्त्वपातनम्	१४३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	पृष्ठम्
त्रिनेत्ररसः	१०१
त्रिभुवनकीर्तिरसः	१०२
दरदवटी	१३
दीपनम् (रससंस्कारः)	५
दुग्धपाषाणगुणाः	६४
दुग्धपाषाणनामानि	६४
धत्तूरबीजशोधनम्	१४६
नवायसचूर्णम्	१०२
नागनामानि	३५
नागपाषाण (जहरमोहरा)	६५
नागभस्मगुणाः	३७
नागमारणम्	३६
नागवल्लभरसः	१०२
नागस्य विशेषशोधनम्	३६
नियमनम् (रससंस्कारः)	५
नीलकण्ठरसः	३१
नीलगुणाः	७६
नीलनामानि	७६
नृपतिवल्लभरसः	१०३
पञ्चामृतपर्पटी	१०३
पञ्चामृतलोहगुग्गुलुः	१०४
पातनम् (रससंस्कारः)	४
पापड़खार (पर्पटक्षारः)	७४
पित्तलनामानि	२५
पित्तलरसायनम्	२६
पित्तान्तकरसः	१०५
पिरोजागुणाः	८४
पिरोजानामानि	८४
पीयूषवल्लीरसः	१०५
पुटपक्वविषमज्वरान्तकरसः	१०६
पुनर्नवामण्डूरम्	१०७
पुष्परागगुणाः	७७

	पृष्ठम्
पुष्परागनामानि	७६
पुष्पाञ्जनगुणाः	४१
पुष्पाञ्जननामानि	४१
प्रवालपञ्चामृतरसः	१०७
फेनाश्मद्रवः	५७
बालार्करसः	१०८
बोधनं (रससंस्कारः)	४
भस्म बनाने और पुट देनेके विषयमें आवश्यक सूचनाएँ	१२६
भल्लातकशुद्धिः	१४७
भागोत्तररसः	१०८
भूनाग-मयूरपक्षसत्त्वपातनम्	१४४
मकरध्वजरसः	१०
मण्डूरनामानि	४७
मण्डूरभस्मगुणाः	४८
मण्डूरमारणम्	४७
मधुमेहविनाशिनी वटिका	१०९
मनःशिलागुणाः	६०
मनःशिलानामानि	५९
मनःशिलाशोधनम्	६०
मनःशिलासत्त्वपातनम्	१४३
मर्दनं (रससंस्कारः)	३
मल्लवटी	५७
मल्लविज्ञानीयाध्यायश्चतुर्थः	५६
मल्लसिन्दूररसः	११
महागन्धकयोगः	१०९
महावातराजरसः	११०
महाशङ्खवटी	११०
माक्षिक और विमल	१३३
माक्षिकगुणाः	२८
माक्षिकनामानि	२७
माक्षिकवर्णनम्	२७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	पृष्ठम्
माक्षिकमारणम्	२९
माक्षिकशोधनम्	२९
माक्षिकसत्त्वपातनम्	१४२
माणिक्यगुणाः	७६
माणिक्यनामानि	७५
मुक्तापञ्चामृतरसः	१११
मूर्च्छनं (रससंस्कारः)	३
मृगाङ्को रसः	१११
मृद्दारशृङ्गगुणाः	३८
मृद्दारशृङ्गवर्णनम्	३७
यवक्षारगुणाः	७१
यवक्षारनामानि	७१
यशदगुणाः	४०
यशदनामानि	४०
यशदमारणम्	४०
यशदशोधनम्	४०
यष्ट्यादिलौहम्	११२
योगराजः	११२
योगराजगुग्गुलुः	११३
रक्तपित्तकुलकण्डनरसः	११४
रक्तपित्तहररसः	११५
रजतगुणाः	२१
रजतमारणम्	२१
रजतशोधनम्	२१
रत्नविज्ञानीयाध्यायोऽष्टमः	७५
रत्नानां शोधनम्	७९
रत्नानां मारणविधिः	७९
रत्नोंकी भस्म बनानेके विषयमें हकीमोंका मत	८७
रसक (खर्पर) गुणाः ✓	४३
रसकनामानि	४१
रसकभेदाः	४२
रसकर्पूरः	११
रसकशोधनम्	४३
रसकसत्त्वपातनम्	१४५
रसदोषाः	२
रसनामानि	१
रसपर्पटी	७
रसमाणिक्यम्	५९
रसयोगविज्ञानीयाध्यायो नवमः	८९
रसविज्ञानीयाध्यायः प्रथमः	१
रसराजरसः	११५
रससंस्काराः	२
रसादिचूर्णम्	११६
रसादिप्रलेपः	११६
रसादिवटी	११६
रसाञ्जन	१३५
राजावर्तगुणाः	८०
राजावर्तनामानि	८०
राजावर्तमारणविधिः	८०
राजावर्तशोधनम्	८०
राजावर्तसत्त्वपातनम्	१४१
रीतिकागुणाः	२५
रीतिकामारणम्	२५
रीतिकाया विशेषशोधनम्	२५
रोमकलवणगुणाः	६७
रोमकलवणनामानि	६७
रोहीतकलौहम्	११७
रौप्यनामानि	२०
लक्ष्मीविलासरसः	११७
लवणक्षारविज्ञानीयाध्यायः सप्तमः	६६
लवणसामान्यगुणाः	७०
लोहनामानि	४३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	पृष्ठम्
लोहमेदाः	४४
लोहमारणम्	४५-४६
लोहविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः	१६
लोहस्य विशेषशोधनम्	४५
लोहासवः	११८
वङ्गगुणाः	३३
वङ्गनामानि	३२
वङ्गभेदाः	३३
वङ्गमारणम्	३४
वङ्गस्य विशेषशोधनम्	३४
वज्रखण्डानां चूर्णीकरणम्	७८
वज्रनामानि	७८
वज्रमारणम्	७९
वत्सनाभ-शृङ्गिकशोधनम्	१४५
वसन्तकुसुमाकररसः	११९
वसन्तमालतीरसः	११९
वातकुलान्तकरसः	१२०
वातचिन्तामणिरसः	१२१
विजयाशुद्धिः	१४७
विडलवणं	६८
विडलवणगुणाः	६९
विमलगुणाः	४८
विमलमारणम्	४९
विमलशोधनम्	४९
विमलसत्त्वपातनम्	१४२
विमलाया लक्षणं मेदाश्च	४८
वैक्रान्तगुणाः	८६
वैक्रान्तनामानि	८४
वैक्रान्तलक्षणं मेदाश्च	८५
वैक्रान्तस्य शोधनमारणे	८६
वैक्रान्तसत्त्वपातनम्	१४५

	पृष्ठम्
वैदूर्यगुणाः	७८
वैदूर्यनामानि	७७
शिरःशूलाद्रिवज्ररसः	१२१
शिलाजतुगुणाः	१३०
शिलाजतुनामानि	१२९
शिलाजत्वनुपानानि	१३१
शिलाजतुसत्त्वपातनम्	१४२
शिलाजीतका शोधन	१३१
शिलासिन्दूरम्	६०
शुद्धरसगुणाः	१
शूलवज्रिणीवटिका	१२२
श्रेष्ठसीसकलक्षणम्	३६
संगे यशब	८१
सप्तामृतलौहम्	१२२
सफेदा	३८
सस्यकसत्त्वपातनम्	१४३
सर्वतोभद्ररसः	१२३
सर्वधातुसत्त्वपातनार्थ सामान्यविधिः	१४५
सामुद्रलवणगुणाः	६७
सिकतागुणाः	६३
सिकतानामानि	६३
सिकताप्रधानो योगः	६४
सिकताविज्ञानीयाध्यायः षष्ठः	६३
सिन्दूरगुणाः	३७
सिन्दूरनामानि	३७
सुधानामानि	६०
सुधाविज्ञानीयाध्यायः पञ्चमः	६०
सुधोदकम्	६१
सुर्मए सफेद	६३
सुवर्णगुणाः	१६
सुवर्णनामानि	१६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	पृष्ठम्
सुवर्णमारणम्	१९
सुवर्णशुद्धिविचारः	१७
सुवर्णशोधनम्	१८
सूतशेखररसः	१२४
सूर्यकान्तगुणाः	८३
सूर्यकान्तनामानि	८३
सैन्धवगुणाः	६६
सैन्धवनामानि	६६
सोमयोगः	१२४
सौरक्षारगुणाः	७५
सौरक्षारनामानि	७४
सौवर्चलगुणाः	६९
सौवर्चलनामानि	६९
स्फटिक(मणि)गुणाः	८३
स्फटिक(मणि)नामानि	८२
स्फटिका(तुवरी)गुणाः	७४
स्फटिकानामानि	७३
स्वेदनं (रससंस्कारः)	२
स्वयमग्निलोहभस्म	४५
स्वर्जिकाक्षारगुणाः	७२
स्वर्जिकाक्षारनामानि	७२
स्वर्णपर्पटी	१२४
स्वर्णवङ्गम्	३५
हज्रुल् यहुद	६५–६६
हरितालनामानि	५७
हरितालशोधनम्	५८
हरितालसत्त्वपातनम्	१४२
हिङ्गुलगुणाः	१२
हिङ्गुलनामानि	१२
हिङ्गुलशोधनम्	१३
हिङ्गुलसत्त्वपातनम्	१४३
हिङ्गुलाद्रसाकर्षणविधिः	५
हेमगर्भपोट्टलीरसः	१२५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसामृतम् ।

रसविज्ञानीयो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

मङ्गलाचरणम् ।

नमस्कृत्य शिवं भक्त्या रसागममहोदधिम् ।
निर्मीयते विनिर्मथ्य यादवेन रसामृतम् ॥ १ ॥

परमेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर, रसशास्त्ररूप समुद्रका मन्थन करके यादवशर्मा आचार्यने यह **रसामृत** नामक ग्रन्थ निर्माण किया है ।

रसनामानि ।

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदश्चपलः शिवः ।

रस, रसेन्द्र (रसराज), सूत, पारद, चपल और शिव (शिवबीज) ये संस्कृत भाषामें पारदके प्रधान नाम हैं ।

अन्य भाषाके नाम—(हिं., बं., म.) पारा; (गु.) पारो; (अ.) जीवक, ऐनुल हयात; (फा.) सीमाब, जीवः; (ले.) हाइड्रार्जिरम् (Hydrargyrum); (अं.) मर्क्युरी (Mercury), क्विक् सिल्वर् (Quick silver) ।

वर्णन—पारद एक प्रसिद्ध धातु (Metal) है जो द्रव, चञ्चल तथा चाँदीके समान श्वेतवर्ण और चमकदार होता है । पारा जलसे १३॥ गुना भारी होता है । पारेको खूब ठंढा किया जावे तो ३९ सेन्टिग्रेड तापक्रम पर वह जम जाता है और गरम करने पर ३६० सेन्टिग्रेड तापक्रम पर बाष्पीभूत होकर उड़ने लगता है । शुद्ध पारदमें किसी प्रकारका स्वाद और गन्ध नहीं होता । पारा लोहेको छोड़कर अन्य धातुओंको लग जाता है—उनसे मिल जाता है । अतः पारदको रखना, धोना, मर्दन करना आदि क्रिया काच, मिट्टी, पत्थर, लोहा या एनामल किये हुए पात्रमें करनी चाहिये; ताँबा, चाँदी, पीतल, एल्युमिनम आदि धातुओंके पात्रमें नहीं करनी चाहिये ।

शुद्धरसगुणाः ।

पारदः षड्रसः शुद्धो योगवाही सरो गुरुः ॥ २ ॥
त्रिदोषघ्नः परं वृष्यो बल्यः स्निग्धो रसायनः ।
शोधनो रोपणश्चैव कृमिघ्नः सर्वरोगजित् ॥ ३ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शुद्ध पारद छहों रसोंसे युक्त, योगवाही, सारक, गुरु, तीनों दोषोंको हरनेवाला, वाजीकर, बलकारक, स्निग्ध, रसायन, व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला, कृमिहर (कीटाणुनाशक) तथा सर्व रोगोंको दूर करनेवाला है ।

रसदोषाः ।

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः ।
रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ॥ ४ ॥
यौगिका नागवङ्गादिलोहसंयोगजाः स्मृताः ।
तेषां तु परिहाराय संस्काराष्टकमीरितम् ॥ ५ ॥
रसागमेषु तत् कृत्वा रसं योगेषु योजयेत् ।

पारदमें **विष, अग्नि** और **मल** ये तीन नैसर्गिक तथा चौथा नाग (सीसा)-वङ्ग (राँगा-कलई) आदि अन्य धातुओंके संयोगसे होनेवाला **यौगिक** दोष होता है । विषदोषसे मरण, वह्निदोषसे सन्ताप, मलदोषसे मूर्च्छा तथा यौगिक दोषसे तत्तद्धातुके दोषानुरूप दोष (लक्षण) होते हैं । उनकी निवृत्तिके लिये शास्त्रकारोंने पारदके आठ संस्कार लिखे हैं । उन आठ संस्कारोंसे शुद्ध (संस्कृत) किये हुए पारदका रसयोगोंके बनानेमें (खानेके काममें) प्रयोग करना चाहिये ।

अष्टौ रससंस्काराः ।

स्वेदनं मर्दनं चैव मूर्च्छनोत्थापने तथा ॥ ६ ॥
पातनं बोधनं चैव नियामनमतः परम् ।
दीपनं चेति संस्काराः सूतस्याष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥
(र. सा. सं.; अ. १)

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन और दीपन ये आठ पारदके संस्कार[1] हैं ।

स्वेदनम् ।

आसुरिपट्टुकटुकत्रयचित्रार्द्रकमूलकैः कलांशैश्च ।
सूतस्य काञ्जिकेन त्रिदिनं मृदुवह्निना स्वेदः ॥ ८ ॥
(र. हृ. तं. अ. २)

एक मिट्टीकी हाँडीमें काँजी तथा पारदसे षोडशांश राई, सैन्धव, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चित्रकके मूल या ताजे पत्र, अदरख और मूली–इनका कल्क डालकर उसमें

१ स्वेदनादि आठ संस्कारोंकी व्याख्या द्रव्यगुणविज्ञान-परिभाषाखण्डके चतुर्थ अध्यायमें देखें ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पारदको दोलायन्त्रमें तीन दिन मन्दाग्निपर पकावे। इसको **स्वेदन** संस्कार कहते हैं। स्वेदनसे पारदके मल शिथिल होते हैं।

वक्तव्य—दोलायन्त्रका लक्षण **द्रव्यगुणविज्ञान-परिभाषाखण्ड** के पाँचवें अध्यायमें देखें। स्वेदन संस्कारमें काँजी और कल्कद्रव्य प्रति दिन बदल कर नया देना चाहिये। काँजी कम होने पर और काँजी देते रहना चाहिये। पारेकी पोटली चौगुने वस्त्रमें अच्छा भोजपत्र रख, उसमें पारा रख, दृढ सूतसे बाँधकर बनानी चाहिये।

मर्दनम्।

गुडदग्धोर्णालवणैर्मन्दिरधूमेष्टकासुरीसहितैः।
रसषोडशांशमानैः सकाञ्जिकैर्मर्दनं त्रिदिनम् ॥ ९ ॥

(र. हृ. तं. अ. २)

एक पत्थर या लोहेके खरलमें पारद तथा गुड़, ऊनकी मसी, सैन्धवलवण, गृहधूम, पुरानी ईंटका चूर्ण और राईका चूर्ण–ये प्रत्येक द्रव्य पारदसे सोलहवाँ भाग तथा मर्दन करने योग्य काँजी मिलाकर तीन दिन मर्दन करे। इसको **मर्दन** संस्कार कहते हैं। इससे पारदका बाह्य मल नष्ट होता है।

मूर्च्छनम्।

गृहकन्या हरति मलं, त्रिफलाऽग्निं, चित्रकश्च विषम्।
तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान् संमूर्च्छयेत् सप्त ॥ १० ॥

(र. हृ. तं. अ. २)

पारदके मलदोषको ग्वारपाठा, अग्निदोषको त्रिफला और विषदोषको चित्रक दूर करता है; इसलिये पारदसे षोडशांश ग्वारपाठेका गूदा तथा त्रिफला और चित्रकमूलका चूर्ण—इनके साथ पारदको एक दिन मर्दन करे। इसको **मूर्च्छन** संस्कार कहते हैं। इस प्रकार सात वार मूर्च्छन संस्कार करनेसे पारदके मल, वह्नि और विष ये तीन दोष नष्ट होते हैं।

उत्थापनम्।

स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत्।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥ ११ ॥

(र. चू. अ. ४)

---

१ पारदके संस्कारोंमें जहाँ द्रव्योंका प्रमाण न लिखा हो वहाँ प्रत्येक द्रव्य पारदसे षोडशांश लेना चाहिये—"रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात् पृथक् पृथक्। द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमि॰ बुधैः॥" (आ. प्र. अ. १)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूर्च्छनके बाद पारदको उसमें मिले हुए अन्य द्रव्योंसे पृथक् कर लेना आवश्यक होता है । इसलिये प्रथम इसमें गरम जल डाल, हिला करके ऊपरका जल निथार लेवे । ऐसा दो–चार बार करनेसे पारा भारी होनेसे नीचे रह जाता है और अन्य द्रव्य जलके साथ अलग होकर निकल जाते हैं । यदि कुछ अन्य द्रव्य पारदमें रह जावें तो उसको नीमूके रसमें घोट, कड़ी धूपमें सुखाकर चूर्णरूप होने पर बार-बार फूँक मारकर उड़ा देवे और पारेको कपड़ेमें दबाकर अलग कर लेवे । इसपर भी यदि पारदमें कुछ अन्य द्रव्य रह जावें तो उसको डमरुयन्त्रमें ऊर्ध्वपातन करके निकाल लेवे । इस प्रकार पारदको फिर अपने स्वरूपमें लानेकी क्रियाको **उत्थापन** कहते हैं ।

पातनम् ।

कृत्वा तु शुल्बपिष्टिं निपात्यते नागवङ्गशङ्कातः ।
तस्मिन् दोषान् मुक्त्वा निपतति शुद्धस्तथा सूतः ॥ १२ ॥

(र. हृ. त. अ. २)

तीन भाग पारदमें एक[1] भाग ताँबेका चूर्ण मिला, नीमूके रसमें मर्दन करके पिष्टि बना लेवे । नीमूका रस सूखनेपर उसको **विद्याधरयन्त्र**[2]में ऊर्ध्वपातन कर लेवे या **तिर्यक्पातनयन्त्र**से तिर्यक् पातन कर लेवे । इस प्रकार ताम्रचूर्णके साथ पिष्टि बनाकर **पातन** संस्कार करनेसे पारेमें मिले हुए नाग-वंग आदि अन्य धातु (लोह) ताम्रमें रह जाते हैं और पारद यौगिकदोषरहित सर्वथा शुद्ध हो जाता है ।

बोधनम् ।

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिराप्यायनी कुम्भे याऽसौ बोधनमुच्यते ॥ १३ ॥

(र. चू. अ. ४)

मर्दन, मूर्च्छन और पातन संस्कारसे पारद मन्दवीर्य (क्षीणशक्तिवाला) हो जाता है । उसमें फिर शक्ति उत्पन्न करनेके लिये उसको मिट्टीके घड़ेमें दश पल सैंधव लवण और तीन प्रस्थ जलमें[3] डाल, घड़ेका मुँह बन्द करके तीन दिन निवातस्थानमें रखा जाता है, इसको **बोधन** (या **रोधन**) संस्कार कहते हैं ।

---

१ "भागास्त्रयो रसस्यार्कचूर्णस्यैकोऽथ निम्बुकैः । एतत् संमर्दयेत्तावद्यावदायाति पिण्डताम् ॥" (आ. प्र. अ. १) ।

२ विद्याधरयन्त्र और तिर्यक्पातन यन्त्रका विधान परिभाषाखण्डके चतुर्थ अध्यायमें देखें ।

३ "सिन्धूद्भवं दशपलं जलप्रस्थत्रयं तथा । धारयेद्घटमध्ये च सूतकं दोषवर्जितम् ॥" (र. प्र. सु. अ. १) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नियमनम्।

इति लब्धवीर्यः सम्यक् चपलोऽसौ नियम्यते तदनु।
फणिलशुनाम्बुजमार्कवकर्कोटीचिञ्चिकास्वेदात्॥ १४॥
(र. हृ. अ. २)

बोधन संस्कारसे प्राप्तवीर्य पारदको उसके चपलत्वकी निवृत्तिके लिये नागरपान, लहसुन, सैन्धव, भंगरा, बांझककोड़ा और इमली—इन प्रत्येकके षोडशांश कल्क और काँजीमें एक दिन दोलायन्त्रमें स्वेदन करना चाहिये। इसको **नियमन** संस्कार कहते हैं।

दीपनम्।

भूखगटङ्कणमरिचैर्लवणासुरिशिग्रुकाञ्जिकैस्त्रिदिनम्।
स्वेदेन दीपितोऽसौ ग्रासार्थी जायते सूतः॥ १५॥
(र. हृ. अ. २)

फिटकिरी, कसीस, सुहागा, काली मिर्च, सैन्धव, राई और सहिंजनेकी छाल-इनके कल्क और काँजीके साथ पारदको तीन दिन दोलायन्त्रमें स्वेदन करनेसे **दीपन** संस्कार होता है।

वक्तव्य—दीपन, मुखकरण और **बुभुक्षा**—ये तीनों पर्याय (समानार्थ-वाचक) नाम हैं। दीपन संस्कारसे पारद बुभुक्षित होता है। जैसे बुभुक्षित (भूखा) प्राणी खानेके लिये लोलुप (लालसायुक्त) होता है और मुँहमें रखा हुआ ग्रास-अन्न शीघ्र खा लेता है, इसी प्रकार बुभुक्षित (दीपन संस्कार किया हुआ) पारद ग्रास-लोलुप (पारदमें दिये हुए स्वर्णादि ग्रासको शीघ्र ग्रहण करनेवाला) होता है। ऊपर लिखे आठ संस्कार किये हुए पारदका रसयोगोंके निर्माणमें प्रयोग करना चाहिये। यदि इन संस्कारोंके करनेका अवकाश न हो तो **हिङ्गुलाकृष्ट** (हिङ्गुलसे निकाले हुए) पारदका रसयोगोंके बनानेमें उपयोग करना चाहिये।

हिङ्गुलाद्रसाकर्षणविधिः।

अथवा दरदाकृष्टं स्विन्नं लवणाम्बुभिस्तु दोलायाम्।
रसमादाय यथेच्छं कर्तव्यस्तेन भेषजो योगः॥ १६॥
निम्बूरसेन संपिष्टात् प्रहरं दरदाद्दृढम्।
तिर्यक्पातनयन्त्रेण संग्राह्यो निर्मलो रसः॥ १७॥

हिङ्गुलको नीमूके रसमें एक प्रहर खूब मर्दन कर, उसकी छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखाकर तिर्यक्पातन यन्त्रसे पारदको पृथक् कर, उसको एक मिट्टीके घड़ेमें दोलायन्त्रमें एक दिन स्वेदन करके रसयोगोंके बनानेमें उसका प्रयोग करे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य-विलायतसे ७५ रतल (पौंड) पारा भरकर जो लोहेकी बोतल आती है उसके मुँहमें पेचदार टेढ़ी लोहेकी नली (bent pipe) बैठानेसे **तिर्यक्पातन यन्त्र** बनता है। प्रथम लोहेकी बोतलमें हिङ्गुलकी टिकिया डाल, बोतलके मुँहमें पेचदार लोहेकी नली बैठा, सन्धिस्थान पर कपड़मिट्टी कर, यन्त्रको सारी बोतल अन्दर रह जावे इतनी बड़ी अंगीठी पर रख, यन्त्रकी नलीके दूसरे मुँहको आधी पानीसे भरी हुई काचकी बोतलमें ४-५ इंच पानीमें डूबी रहे ऐसे रख कर कोकँकी या लकड़ीके कोयलोंकी तेज आँच देवे। जब सारा पारा शीशीमें आ जावे और नलीके मुँहसे पारा आना बन्द हो जाय तब यन्त्रको नीचे उतार कर काचकी शीशीमें आये हुए तथा नलीमें लगे हुए पारेको सावधानीसे निकाल लेवे। इस पारद पर बोधन, नियमन और दीपन संस्कार करके इसका उपयोग करे तो विशेष गुणदायक होता है।

श्रीयुत **डॉ. कार्तिकचन्द्र बसु** अपने **भारतीयभैषज्यतत्त्व** नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि-हिङ्गुल या पारेको समभाग चूनेके साथ मर्दन कर, उस मिश्रणको लोहेकी बोतलमें ⅓ भर, बोतलका शेष भाग चूनेसे भर कर ऊपर लिखी हुई विधिसे तिर्यक्पातन करनेसे विशुद्ध पारद प्राप्त होता है।

रसप्रधानाः केचन योगाः ।

कज्जली ।

योगोक्तमानगन्धेन निर्द्रवो मर्दितो रसः ।
निश्चन्द्रः कज्जलाभासः कज्जलीत्यभिधीयते ॥ १८ ॥

पत्थर या लोहेके खरलमें जो योग बनाना हो उस योगमें लिखे हुए मानके अनुसार पारद और गन्धक डाल कर विना किसी द्रवके मिलाये जबतक पारदकी चन्द्रिका (चमक) न दिखे तबतक मर्दन करनेसे काजलके जैसे वर्णका जो पारद-गन्धकका मिश्रण बनता है उसको **कज्जली** कहते हैं।

वक्तव्य—कज्जली बनाते समय उसमें थोड़े जलके छींटे दे कर घोटनेसे मिश्रण ठीक बनता है। कज्जलीमें पारदके कण बिलकुल दीखें नहीं इतना घोटना चाहिये। कज्जलीमें यदि पारदके कण छुटे-अमिश्रित होंगे तो उसको नीमूके रसके साथ सोने पर रगड़नेसे सोने पर चाँदी जैसे दाग पड़ेंगे। केवल कज्जलीके प्रयोगके लिये कज्जली बनानी हो या योगमें पारद-गन्धकका प्रमाण न लिखा हो तहाँ पारद और गन्धक समभाग लेने चाहिये।

---

१ कोक या लकड़ीके कोयले लोहेकी बोतलके नीचे-बाजू सब तरफ अग्नि लगे इस प्रकार डालने चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसपर्पटी ।

जयैरण्डभृङ्गराजकाकमाचीरसैः क्रमात् ।
रसं संशोध्य यत्नेन ततस्तु शोधयेद् बलिम् ॥ १९ ॥
गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
सप्तधा वा त्रिधा वाऽपि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णितम् ॥ २० ॥
घृतालिप्ते लौहपात्रे दत्त्वा वह्नौ प्रतापयेत् ।
द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ॥ २१ ॥
एवं शुद्धं रसं गन्धं योजयेत् पर्पटीरसे ।
रसगन्धौ समौ कृत्वा दृढे खल्वे विमर्दयेत् ॥ २२ ॥
नष्टसूतं यदा चूर्णं भवेत् कज्जलसन्निभम् ।
घृतालिप्ते लोहपात्रे तदा तं स्थापयेद् बुधः ॥ २३ ॥
तं पात्रं स्थापयेदन्ये वालुकास्तीर्णपात्रके ।
निर्धूमे बदराङ्गारे द्रवीकुर्यात् प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
महिषीमलविन्यस्ते तत्र तं कदलीदले ।
निक्षिप्य तदुपर्यन्यत् पत्रं दत्त्वा प्रपीडयेत् ॥ २५ ॥
शीतलत्वं गते पत्रात् समुद्धृत्य विचूर्णयेत् ।
एवं सिद्धा भवेद् व्याधिघातिनी रसपर्पटी ॥ २६ ॥
विधिरेष तु विज्ञेयः सर्वासु पर्पटीष्वपि ।
रक्तिकासंमितां प्रातर्भृष्टजीरकसंयुताम् ॥ २७ ॥
गुञ्जार्धभृष्टहिङ्ग्वाढ्यां भक्षयेद्रसपर्पटीम् ।
रोगानुरूपभैषज्यैरपि तां योजयेद्बुधः ॥ २८ ॥
अनु पेयं पयस्तक्रं दाडिमादिरसोऽपि वा ।
प्रत्यहं वर्धयेत्तस्या ह्येकैकां रक्तिकां भिषक् ॥ २९ ॥
नाधिकां दशगुञ्जातो भक्षयेत्तां कदाचन ।
आरोग्यदर्शनं यावद् भक्षयेद्दशरक्तिकाम् ॥ ३० ॥
आरोग्यदर्शनादूर्ध्वं तां तथैवापकर्षयेत् ।
क्रम एष तु विज्ञेयः सर्वासु पर्पटीष्वपि ॥ ३१ ॥
जीर्णज्वरं च ग्रहणीं तथाऽतीसारमेव च ।
पाण्डुरोगं वह्निमान्द्यं यकृत्प्लीहजलोदरान् ॥ ३२ ॥
एवमादीन् गदान् हन्ति सेविता रसपर्पटी ।

हिङ्गुलसे निकाले हुए पारेको क्रमसे जैत, एरण्ड और मकोयके स्वरसमें १-१ दिन मर्दन करके गरम जलसे धो लेवे। गन्धकका मोटा चूर्ण कर, उसको सात या तीन दिन भंगरेके स्वरसकी भावना दे, सुखाकर भीतर घीसे पोती हुई लोहेकी छोटी कड़ाहीमें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अग्निपर गलाकर अन्दर आधे भँगरेके स्वरस भरे हुए और मुँहके ऊपर कपड़ा बाँधे हुए पात्रमें धीरेसे डाल देवे। बाद उस पात्रसे गन्धकको निकाल और गरम जलसे धोकर सुखा लेवे। इस प्रकारसे शुद्ध किये हुए पारद और गन्धकका पर्पटी बनानेके लिए उपयोग करे। शुद्ध पारद और गन्धक समभाग लेकर उसको अच्छे मजबूत खरलमें मर्दन करे। मर्दन करते समय बीच-बीचमें उसमें जलके छींटे देवे। जब उसमें पारदके कण न दिखें और चूर्ण आँखमें डालनेके सुरमे जैसा सूक्ष्म हो जाय, तब उसको भीतर घीसे पोती हुई छोटी लोहेकी कड़ाहीमें डाल, अग्निपर एक लोहेका तवा रख, उसपर एक अंगुल मोटा बालू (सूक्ष्म रेती) का स्तर विछा कर, उसपर उस कड़ाहीको रखे। जब कज्जली गरम होने लगे तब उसको बीच-बीचमें लोहेके छुरेसे हिलाता रहे। जब सारी कज्जली अच्छी तरह द्रव हो जाय तब उसको जमीनपर गोवर विछा, उसके ऊपर केलेका अखण्ड पत्ता रख कर उसपर डाल दे और तुरन्त ही उस पर केलेका दूसरा पत्ता रख कर उस पर दूसरा गोवर ढाल कर दबा देवे। पर्पटी ठंढी हो जानेपर शीशीमें भरकर रख लेवे। सव प्रकारकी पर्पटियाँ इसी विधिसे बनानी चाहिये। सेवन करते समय पर्पटीको खूब महीन पीसकर उपयोगमें लेना चाहिये। **मात्रा**—एक रत्तीसे प्रारम्भ कर और प्रतिदिन एक-एक रत्तीकी मात्रा बढ़ा कर दस रत्तीतक रोग तथा रोगीका बलादि देख कर देवे। पीछे रोग अच्छा होनेतक वही मात्रा देता रहे। जब रोग-मुक्त हो जाय तब प्रतिदिन एक-एक रत्तीकी मात्रा घटाकर औषध छुड़ा देवे। मैंने एक दिनमें एक बारमें १० रत्ती तककी मात्रा न देकर दिनमें दो-तीन बारमें १ से ५ रत्ती तककी मात्रा देकर प्रयोग कराया है। इससे अच्छा लाभ होता देखा गया है। सामान्यतः पर्पटीका प्रयोग ४० दिन तक कराया जाता है। **अनुपान**—सेंके हुए जीरेका चूर्ण १॥-३ माशा और घीमें सेंकी हुई हींग आधी रत्तीके साथ मिलाकर देवे और ऊपरसे दूध, छाछ या दाड़िम, संतरा, मोसंबी, मीठा नीबू आदि फलोंका रस देवे। **पथ्य**—केवल दूध या केवल छाछ रोगीकी प्रकृति आदि देखकर देवे। एक दिनमें १-२ घण्टेके अन्तर से दूध, छाछ और फलोंका रस तीनों दे सकते हैं। जल अकेला जहाँतक बने न दिया जाय। **उपयोग**—सब प्रकारके पचनक्रिया (जठराग्नि) के विकारोंमें रसपर्पटी उत्तम औषध है। ग्रहणीरोग, जीर्ण-अतिसार, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोगमें इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है। **वक्तव्य**—अन्न, जल और लवण बन्द करके केवल दूध, छाछ और फलोंके रसपर पर्पटीका प्रयोग करानेसे ही उचित लाभ होता है। जबतक पर्पटीका प्रयोग चले, रोगीको पूर्ण विश्रान्ति लेनी चाहिये; अर्थात् बिछौने पर लेटे ही रहना चाहिये। पर्पटीका प्रयोग बन्द करनेके बाद भी रोगी ३-४ मास तक आधा लघु अन्न और आधा दूध-छाछ-फलका सेवन करे।

रससिन्दूरम्।

पलाष्टकं शुद्धरसं तदर्धं शुद्धगन्धकम् ॥ ३३ ॥
कर्षैकं नरसारस्य स्फटिकायाश्च मर्दयेत्।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सप्तमृद्वस्त्रलिप्तायां काचकूप्यां क्षिपेच्च तत् ॥ ३४ ॥
सच्छिद्रे मृत्तिकाभाण्डे काचकूपीं न्यसेच्च ताम्।
कूपिकाकण्ठमानेन पूरयेदिष्टवालुकाः ॥ ३५ ॥
क्रमवृद्धाग्निना सम्यक् पचेद्यामाष्टकं भिषक्।
पाके रुद्धं मुखं कूप्या गन्धकेन प्रजायते ॥ ३६ ॥
शलाकामायसीं तप्तां दत्त्वा गन्धं विशोधयेत्।
जीर्णे गन्धे मुखं रुद्ध्वा कूप्या यामद्वयं पचेत् ॥ ३७ ॥
स्वाङ्गशीते ततो यन्त्रे कूपीं भित्त्वा समुद्धरेत्।
रसं सिन्दूरनामानं कूपीकण्ठगतं भिषक् ॥ ३८ ॥
योगवाही परं वृष्यो बल्यश्चापि रसायनः।
निजानुपानैर्योज्यश्च सकलेष्वामयेष्वपि ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारद आठ पल (३२ तोला), शुद्ध गन्धक चार पल (१६ तोला), नौसादर एक तोला और फिटकिरी एक तोला—इनकी कज्जली बना, सात कपड़मिट्टी लगी हुई काचकी शीशीमें कज्जली डाल, उस शीशीको तलमें आधा इंच चौड़ा गोल छेद किये हुए मिट्टीके मजबूत घड़े (हाँडी-नाँद)में छेदके ऊपर रख, काचकूपीके चारों ओर गलेतक वालू-रेती भर, उसे चूल्हेपर चढ़ाकर क्रमसे मन्द, मध्य और तीक्ष्ण अग्निपर पकावे। प्रथम छः घंटा मन्द आँच देवे। पीछे आँच मध्यम करे (थोड़ी-थोड़ी बढ़ावे)। जब गन्धक उड़ने लगे (गन्धकका धुँआ ऊपर आने लगे) तब लकड़ीका हत्था लगी हुई लोहेकी शलाकाका सिरा अग्निमें खूब गरम कर कूपीके अन्दर चलाकर कूपीके मुखमें लगे हुए गन्धकको जलाता रहे। जब सब गन्धक जल जावे (शलाकाको गन्धक लगना बन्द हो जाय) और ऊपरसे देखनेसे कूपीका तलभाग रक्तवर्ण दिखने लगे तब खड़िया मिट्टी या मुलतानी मिट्टीकी डाट कूपीके मुँहमें लगा, उसको शहद या गुड़ मिलाये हुए चूनेसे बन्दकरके छः घंटा तेज आँच देवे। पीछे चूल्हेमें नई लकड़ी देना बन्द करके यन्त्रको स्वाङ्गशीतल (अपने आप ठंढा) होने देवे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब कूपीको बाहर निकाल, ऊपरकी कपड़मिट्टी चाकूसे खुरचके दूर कर, शीशीके मध्य भागपर मिट्टीके तेलमें भिगोई हुई सुतली लपेटकर दियासलाईसे जलावे। जब सुतली सब जलने आवे तब ऊपर पानीके छींटे देनेसे शीशी तड़क कर दो टुकड़े हो जावेगी। पीछे शीशीके मुँहमें जमे हुए रससिन्दूरको सावधानीसे ले, तीन दिन खरलमें घोट कर शीशीमें भर लेवे। **मात्रा** १-२ रत्ती। **अनुपान**—शहद या रोगोक्त। **गुण**—रससिन्दूर बलकारक, वाजीकर, योगवाही और रसायन है। अनुपानविशेषसे सर्व रोगोंमें इसका उपयोग किया जाता है।

---

१ इस प्रकार बनाये हुए यन्त्रको वालुकायन्त्र कहते हैं। वालुकायन्त्रका वर्णन परिभाषा-खण्डके पाँचवे अध्यायमें देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य—विलायतसे ब्रान्डी आदि मद्य भर कर जो बड़ी लंबी और नीचेसे समतल शीशी आती है वह रससिन्दूर आदि सिन्दूरकल्प बनानेके लिये काममें लेनी चाहिये। काचकूपी पर कपड़मिट्टी चढ़ानेकी विधि **परिभाषाखण्ड**के पाँचवें अध्यायमें देखें। हाँडी या नाँद मिट्टीकी लेनेकी अपेक्षया लोहेकी बनवा लेना अच्छा है। उसमें टूटनेका भय नहीं रहता। स्वर्णसिन्दूर (मकरध्वज-चन्द्रोदय), मल्लसिन्दूर, तालसिन्दूर आदि सब प्रकारके सिन्दूरकल्प रससिन्दूरमें लिखी हुई विधिसे बनाये जाते हैं।

मकरध्वजरसः ।

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रात् पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य ।
न्यग्रोधशुङ्गप्रभवै रसैस्तु दिनं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥ ४० ॥
सत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च ।
पचेत् क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे भवेद्रसो वै मकरध्वजाख्यः ॥४१॥
तलस्थस्वर्णभागः स्यादेकोऽष्टौ मकरध्वजात् ।
तदर्धभागा देयाः स्युर्लवङ्गात् कुङ्कुमात्तथा ॥ ४२ ॥
जातीफलाच्च कर्पूरादेकश्च मृगनाभितः ।
वल्लं वल्लद्वयं वाऽपि ताम्बूलीदलसंयुतम् ॥ ४३ ॥
भक्षयेन्मधुरस्निग्धं कटुकाम्लविवर्जितम् ।
शृतशीतं सितायुक्तं दुग्धं गोधूममाज्यकम् ॥ ४४ ॥
करोत्यग्निबलं पुंसां जराव्याधिविनाशनः ।
मेधायुःकान्तिजननो वृष्यश्च मकरध्वजः ॥ ४५ ॥

३२ तोला शुद्ध पारदको लोहे या पत्थरके खरलमें डाल, उसमें ४ तोले सोनेके वरक एक-एक करके मिलावे। सब वरक अच्छी तरह मिल जाने पर उसमें ६४ तोला शुद्ध गन्धक डाल, प्रथम बड़के कोंपलके रस और पीछे ग्वारपाठेके रसके साथ मर्दन करके कज्जली बनावे। कज्जली सूखने पर उसे सात कपड़मिट्टी की हुई काचकूपीमें भरके रससिन्दूरोक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें क्रमवृद्ध अग्निपर तीन दिन पकावे। स्वाङ्ग-शीतल होनेपर काचकूपीको तोड़कर कूपीके गलेमें लगे हुए मकरध्वज और तलमें रहे हुए स्वर्णको सावधानीसे निकाल लेवे। इस योगको **मकरध्वज, चन्द्रोदय** या **स्वर्ण-सिन्दूर** कहते हैं। तलेमें रहे हुए सुवर्ण और मकरध्वजको साथ एक तीन दिन खरलमें खूब मर्दन करके तत्तद्रोगोक्त अनुपानके साथ प्रयोग करे अथवा तलस्थ सुवर्ण १ भाग, मकरध्वज[1] ८ भाग, लवंगका चूर्ण ४ भाग, जायफलका चूर्ण ४ भाग, केशर ४ भाग—इनको नागरपानके रसमें खूब मर्दन कर, अन्तमें उसमें १ तोला कपूर और १ तोला

---

१ प्रथम तलस्थ सुवर्ण और मकरध्वजको तीन दिन मर्दन करके पीछे उसमें लवंग आदिका चूर्ण मिलाना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्तम कस्तूरी मिला, नागरपानके रसमें मर्दन कर, तीन-तीन रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर लेवे । **मात्रा**–१–२ गोली सवेर-शाम गरम करके ठंढे किये हुए और मिश्री मिलाये हुए गायके दूधके साथ देवे। यह **मकरध्वज रस** जठराग्नि-स्मरणशक्ति-आयुष्य और शरीरकी कान्तिको बढ़ानेवाला, वाजीकर तथा वृद्धावस्था और अनुपानविशेषसे सर्व व्याधियोंको दूर करनेवाला है।

मल्लसिन्दूररसः ।

रसरससविधू नवाक्षौ सार्धेषुचतुःसुवर्णबलिमल्लौ ।
कूप्यां द्व्यहं विपक्वः पवनकफौ हन्ति मल्लसिन्दूरः ॥ ४६ ॥

(सि. मे. म. मा. अ. ९)।

शुद्ध पारद ९ भाग, शास्त्रोक्त विधिसे बनाया हुआ रसकपूर ९ भाग, शुद्ध गन्धक ५॥ भाग और शुद्ध संखिया ४॥ भाग लेवे। प्रथम् पारे-गन्धककी कज्जली कर, उसमें रसकपूर और संखिया मिला, दो दिन ग्वारपाठेके रसमें मर्दन कर, सात कपड़मिट्टी की हुई शीशीमें भर कर रससिन्दूरोक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें दो दिन पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर शीशीको तोड़, शीशीके गलेमें लगे हुए मल्लसिन्दूरको निकाल, तीन दिन पत्थरके खरलमें मर्दन करके शीशीमें भर लेवे। इस योगको **मल्लसिन्दूर** कहते हैं। यदि मल्ल-सिन्दूरमें एक तोले सोनेके वरक मिलाये जावें और तलस्थ सुवर्ण और ऊपरके मल्ल-सिन्दूरको तीन दिन मर्दन करके योग बनाया जावे तो उसको **मल्लचन्द्रोदय** कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—॥ से १ रत्ती शहदमें या सितोपलादि चूर्ण १ माशे और शहदमें मिलाकर देवे। कफरोगोंमें अदरख या पानके रस और शहदमें मिलाकर देवे। सब प्रकारके वात और कफके रोगोंमें विशेषतः अर्दित, पक्षाघात, जीर्ण प्रतिश्याय और कफाधिक कास-श्वासमें इससे अधिक लाभ होता है।

रसकर्पूरम् (रसकर्पूरः) ।

स्फटिकां नरसारं च कासीसं सैन्धवं तथा ।
सोरकं तुत्थकं टङ्कं प्रत्येकं पलमानकम् ॥ ४७ ॥
दत्त्वा कटाहे मन्देऽग्नावयोदर्व्या प्रचालयेत् ।
निर्द्रवे तु समुत्तार्य सर्वतुल्यं तु पारदम् ॥ ४८ ॥
द्विकर्षं शुद्धमल्लं च दत्त्वा सम्यग्विमर्दयेत् ।
विपचेद्वालुकायन्त्रे यामद्वादशमात्रकम् ॥ ४९ ॥
कूपीकण्ठविलग्नः स्याद्रसः कर्पूरसंज्ञकः ।
तं देवकुसुमचन्दनस्वर्णक्षीरीजटायुक्तम् ॥ ५० ॥
खादन् हरति फिरङ्गं व्याधिं सोपद्रवं सपदि ।
जात्या रसं तु सघृतमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ५१ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

फिटकिरी, नौसादर, कसीस, सेंधा नमक, सोरा, तूतिया और सुहागा प्रत्येक ४-४ तोला ले, अलग-अलग चूर्ण कर, लोहेकी कड़ाहीमें डाल कर मन्दाग्नि पर पकावे और लोहेकी कड़छीसे हिलाता रहे। जब सब द्रवरहित हो कर शुष्क हो जाय तब नीचे उतार, खरलमें डाल, उसमें सबके समान शुद्ध पारद तथा दो तोला शुद्ध संखिया मिलाकर एक दिन मर्दन करे। पीछे सात कपड़मिट्टी लगाई हुई काचकूपीमें डालकर प्रथम मन्द और पीछे मध्यम अग्नि पर वालुकायन्त्रमें पकावे। जबतक कूपीके मुखसे सजल बाष्प आता रहे तब तक कूपीका मुख खुला रहने दे। जब सजल बाष्प निकलना बन्द हो जाय तब कूपीके मुखपर खड़िया मिट्टी या मुलतानी मिट्टीकी डाट लगा, ऊपर गुड़मिश्रित चूना लगाकर कूपीके मुखको बन्द करके आठ घंटा कुछ तेज अग्नि देवे। स्वांगशीतल होनेपर कूपीको तोड़कर गलेमें लगे हुए रसकपूरको निकाल लेवे। रसकपूर, लवंग, चन्दन और सत्यानाशीकी जड-इनका सूक्ष्म चूर्ण समभाग ले, पानके रसमें तीन दिन मर्दन कर, १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें रख लेवे। **मात्रा**-१-१ गोली सवेर-शाम ।॰ तोला गोघृत मिलाये हुए १-२ तोला चमेलीकी पत्तीके स्वरस या दूधके अनुपानसे देवे। यह रसकर्पूर उपद्रवसहित फिरंगरोग (आतशक-सिफिलिस Syphillis), नाडीव्रण (नासूर) आदिको नष्ट करता है।

रसधातवः-पारदके खनिज।

हिङ्गुलम्।

हिङ्गूलो हिङ्गुलं चैव हंसपादश्च म्लेच्छकः।

नाम—(सं.) हिङ्गु(ङ्गू)ल, दरद, हंसपाद, म्लेच्छ; (हिं.) हिंगुल, शिंगरफ; (बं., म.) हिंगुल; (गु.) हिंगळो; (अ.) जंजफर शंजर्फ; (फा.) शंगर्फ; (अं.) सिनेबार् (Cinnabar)।

वर्णन-हिङ्गुल पारद और गन्धकका यौगिक है। हिङ्गुल खानोंसे स्वयंभू प्राप्त होता है (खनिज हिङ्गुल) और कृत्रिम बनाया भी जाता है। आजकल बाजारमें जो हिङ्गुल मिलता है वह कृत्रिम है। इस समय सूरत, कलकत्ता आदिमें कृत्रिम हिङ्गुल बनाया जाता है।

हिङ्गुलगुणाः।

हिङ्गुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः॥ ५२॥
सर्वदोषहरो वृष्यो मारणायातिशस्यते।
एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगन्धसमो गुणैः॥ ५३॥

(र. चू. अ. ११)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिङ्गुल वात-पित्त और कफ तीनों दोषों तथा सर्व रोगोंको हरनेवाला, दीपन, वृष्य और रसायन है। हिंगुलसे निकाला हुआ पारद गन्धकजीर्ण पारदके समान गुणवाला होता है। सुवर्ण, लोहा आदिके मारण (भस्म बनाने) के लिये हिंगुल उत्तम है।

हिङ्गुलशोधनम्।

मेषीक्षीरेण दरदं निम्बूनीरेण भावितम्।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ५४ ॥

हिंगुलको एक बार भेड़के दूध और सात बार नीमूके रसकी भावना देकर सुखालेनेसे वह शुद्ध होता है।

हिङ्गुलप्रधान योग–दरदवटी।

यवनेष्टपलाण्डूनां ताम्बूल्यार्द्रकजै रसैः।
दरदं सप्तवाराणि भावयित्वा वटीं चरेत् ॥ ५५ ॥
गुञ्जाद्वयोन्मितां हन्ति रोगान् वातकफोद्भवान्।
सन्धिवातं विशेषेण पुराणं पीनसं तथा ॥ ५६ ॥

शुद्ध हिंगुलको लहसुन, प्याज, अदरक, और नागरपानके स्वरसकी सात-सात भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसको **दरदवटी** कहते हैं। दरदवटी सर्व प्रकारके वात और कफके रोगोंको–विशेष करके सन्धिवात और पुराने प्रतिश्यायको दूर करती है। **मात्रा–**१ गोली; दिनमें २-३ बार दूध या जलसे देवे।

गिरिसिन्दूरम्।

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तःस्थितो रसः।
शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिन्दूरसंज्ञया ॥ ५७ ॥
(र. चू. अ. ११)

महागिरौ शिलान्तःस्थो रक्तवर्णश्च्युतो रसः।
सूर्यतापेन संशुष्को गिरिसिन्दूरसंज्ञकः ॥ ५८ ॥
(र. प्र. सु. अ. ६)

बड़े पर्वतोंके पत्थरोंके बीचमें कभी-कभी सूर्यके तापसे शुष्क थोड़ा सा पारद लाल रंगकी अवस्थामें पाया जाता है; इसको **गिरिसिन्दूर** कहते हैं।

---

१ रसतरङ्गिणीमें इस प्रकार शुद्ध किये हुए हिंगुलको बार-बार जलसे धोकर नीमूकी खटाई निकाल देनेको लिखा है—"निम्बूकस्वरसेनेह हिङ्गुलं सूक्ष्मचूर्णितम्। विभावयेत् सप्तवारं क्षालयेद्बहुशोऽम्भसा॥" (र. तं. त. ९)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य–रसरत्नसमुच्चयकी व्याख्यामें आयुर्वेदाचार्य **श्री दत्तात्रय अनंत कुलकर्णी** लिखते हैं कि–"गिरिसिन्दूरके उपर्युक्त वर्णनसे अनुमान होता है कि यह पारद और ऑक्सिजनका यौगिक है, जो खनिजके रूपमें बहुत अल्पमात्रामें कहीं-कहीं अन्य खनिजों-के साथ या पत्थरोंके बीचमें पाया जाता है" । आजकल यह कृत्रिम रीतिसे बनाया हुआ **रेड् ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी** (Red Oxide of Mercury) के नामसे विलायती दवा बेचनेवालोंके यहाँ और **सिपिचंद**के नामसे देशी दवा बेचने-वालोंके यहाँ मिलता है। सिन्दूर (नागसिन्दूर-रेड् लेड् Red Lead) से इसका भेद बतानेके लिये इसको **गिरि** विशेषण लगाकर इसका रसशास्त्रमें **गिरिसिन्दूर** नाम रखा है। यूनानी और पाश्चात्य चिकित्सामें कई मरहम बनानेमें इसका उपयोग करते हैं। इसका खिलानेके लिये उपयोग नहीं किया जाता।

गन्धकविज्ञानियो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

गन्धकनामानि ।

लेलीतको बलिवसा गन्धाश्मा गन्धको बलिः ।

नाम—(सं.) गन्धक, लेलीतक, बलिवसा, गन्धाश्मा, बलि; (हिं., बं., म., गु.) गन्धक; (अ.) किब्रीत; (फा.) गोगिर्द; (अं.) सल्फर् (Sulphur) ।

वर्णन—गन्धक थोड़ा अमिश्रितावस्थामें (स्वयम्भू) पाया जाता है । परन्तु विशेषतः लोहा–अयस्, सीसा–नाग, पारद, रजत, ताम्र आदि अन्य धातुओंके खनिजोंके साथ मिश्रितावस्थामें पाया जाता है । जंगम वर्गमें अंडेकी जर्दी, रक्त, दूध, पित्त आदिमें तथा उद्भिज्जोंमें राईवर्ग, गाजरवर्ग, प्याज, लहसुन आदिमें भी गन्धक थोड़े अंशमें पाया जाता है। रसशास्त्रमें वर्णभेदसे श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण चार प्रकारके गन्धकका वर्णन मिलता है । औषधके लिये पीतवर्ण आमलसार (आंवलासार–ताजे आंवले जैसा कुछ हरापन लिये हुए पीले रंगका) गन्धक लेनेको लिखा है। गंधकका काठिन्य १॥–२॥ और विशिष्टगुरुत्व २ होता है।

गन्धकगुणाः ।

गन्धको मधुरः पाके कटुरुष्णो रसायनः ॥ १ ॥
पाचनो दीपनो वृष्यः कृमिकुष्ठविनाशनः ।
योगवाही सरः स्निग्धः कफवातरुजापहः ॥ २ ॥

गन्धक कटु, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, सारक, स्निग्ध, पाचन, दीपन, वृष्य, योगवाही तथा कफ, वात, कृमि और कुष्ठ (त्वचाके रोगों) को दूर करनेवाला है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गन्धकशुद्धिः।

गव्ये पयसि गन्धं तु भृङ्गराजरसेऽथवा।
रसपर्पटिकाप्रोक्तविधानेन विशोधयेत्॥ ३॥

गन्धकको रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानके अनुसार गायके दूधमें अथवा भंगरेके स्वरसमें शुद्ध करके उसका आभ्यन्तर (खानेके) योगोंमें उपयोग करना चाहिये।

गन्धकरसायनम्।

शुद्धो बलिर्गोपयसा त्रिवारं ततश्चतुर्जातगुडूचिकाद्भिः।
पथ्याक्षधात्रीफलभृङ्गनीरैर्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण॥ ४॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धकसंज्ञकं स्यात्।
कुष्ठानि सर्वाणि निहन्ति नाडीव्रणं तथा कोष्ठगतांश्च रोगान्॥५॥
मासोन्मिते सेवित एति मर्त्यो वीर्यं च पुष्टिं बलमग्निदीप्तिम्।

आयुर्वेदप्रकाश।

गायके दूधसे तीन बार शुद्ध किये हुए गंधकको पत्थरके खरलमें डाल कर दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर–इन प्रत्येकके कपड़छान चूर्णको रातमें द्विगुण जलमें भिगो, सबेरमें हाथसे मसलकर कपड़ेसे छाने हुए जल(हिम)से, ताजी गिलोयके स्वरस, हर्रे और बहेड़ेके क्वाथ तथा आँवला, भङ्गरा और अदरख–इनके स्वरससे ८–८ दिन मर्दन करे। अर्थात् प्रत्येकके जल, क्वाथ या स्वरसकी ८–८ दिन भावना देवे। कुल ८० भावना देवे। प्रत्येक भावनामें ३–६ घण्टा मर्दन करके छायामें सुखानेके बाद दूसरी भावना देवे। अन्तमें सुखा, उसमें समानभाग मिश्रीका चूर्ण मिलाकर शीशीमें भर लेवे। **मात्रा और अनुपान**—४—८ रत्ती सबेर-शाम जल, दूध, शहद, मञ्जिष्ठादि क्वाथ, महातिक्त घृतके कल्कद्रव्योंका क्वाथ अथवा खदिरारिष्टके अनुपानसे देवे। **उपयोग**—इसके सेवनसे सव प्रकारके कुष्ठ, नाड़ीव्रण (नासूर-भगन्दर) और शूल-अग्निमान्द्य आदि पेटकी वीमारियाँ दूर होती हैं। एक मास इसके सेवन करनेसे वीर्य, बल तथा शरीरकी पुष्टि प्राप्त होती है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोहविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

सुवर्णनामानि ।

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् ।
तपनीयं शातकुम्भं जातरूपं च काञ्चनम् ॥
चामीकरं वह्निबीजं रुक्मं जाम्बूनदं तथा ॥ १ ॥

नाम—(सं.) स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, शातकुम्भ, जातरूप, काञ्चन, चामीकर, वह्निबीज, रुक्म, जाम्बूनद; (हिं.) सोना; (म.) सोनें; (गु.) सोनुं; (अ.) जहब, इक्यान; (फा.) तिला, जर; (ले.) ओरम् (Aurum); (अं.) गोल्ड (Gold)।

वर्णन—सुवर्ण एक प्रसिद्ध पीतवर्ण धातु है । सुवर्णका विशिष्ट गुरुत्व १९.४, द्रवणाङ्क १०६४ और काठिन्य २॥ होता है । सुवर्ण अन्य धातुओंकी अपेक्षया अधिक प्रसरणशील है अर्थात् इसके अधिक सूक्ष्म पत्र-वरक बनाये जा सकते हैं और अधिक लंबा तार खींचा जा सकता है । सोनेको खुली हवामें रखनेसे उसपर जंग चढ़ता नहीं (अक्षय) अर्थात् ऑक्सिजनसे सोनेका संयोग होता नहीं । १ भाग लवणाम्ल (हायड्रोक्लोरिक् एसिड्) और $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{4}$ भाग सोरकाम्ल (नाइट्रिक् एसिड्)के मिश्रण (एकोवा रेजिया)में सोना घुलता है । भस्म बनानेके लिये शराफोंके यहां जो नम्बरी (१०० टचका) सोना मिलता है उसके कण्टकवेधी पत्र बनाकर उसका, या रासायनिक विधिसे शुद्ध किये हुए सोनेसे प्राप्त सूक्ष्म चूर्णका, या सोनेके वरकका उपयोग करना चाहिये ।

स्वर्णगुणाः ।

शीतं कषायं मधुरं विषघ्नं वर्ण्यं च मेधास्मृतिवर्धनं च ।
रसायनीयं लघु रुक्ममुक्तं ××× ॥ २ ॥ (र. वै. सू. भा. अ. ३)

स्निग्धं मेध्यं विषगरहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यं
यक्ष्मोन्मादप्रशमनपरं देहरोगप्रमाथि ।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं
रुच्यं दीप्तिप्रशमितजरं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ ३ ॥ (र. चू. अ. १४)

---

१ सोना, चाँदी, ताँबा, नाग, वंग आदिके लिये हिन्दी भाषामें **धातु** शब्दका प्रयोग होता है, परन्तु संस्कृत भाषामें प्रधानतः इनके लिये **लोह** शब्दका प्रयोग होता है और लोहेके लिये **अयस्** शब्दका प्रयोग होता है । संस्कृत भाषामें हिङ्गुल, माक्षिक, गैरिक, सौवीराञ्जन आदि जिन खनिज द्रव्योंसे पारद, ताम्र, अयस्, नाग आदि लोह (मेटल्स्) प्राप्त होता है उनके लिये मुख्यतया **धातु** शब्दका प्रयोग होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुवर्ण—मधुर, कषाय, मधुरविपाक, शीतवीर्य, स्निग्ध, लघु, वर्ण्य, रसायन, रुचिकर, दीपन, बृंहण, उत्तम वाजीकर, मेधा और स्मृतिको बढ़ानेवाला तथा राजयक्ष्मा, उन्माद, वात-पित्त और कफके रोग, विष और जरावस्थाको दूर करनेवाला है। सुवर्णभस्म रसायन है। अपक्व सुवर्ण विषनाशक, धातुक्षय और यक्ष्मावालेको बृंहण करनेवाला, कृमिहर, शरीरकी कान्तिको बढ़ानेवाला और ज्वरवालोंके लिये हितकर है। अपक्व सुवर्णका वरक या सूक्ष्म चूर्णके रूपमें प्रयोग होता है।

यूनानी मत—सोना अनुष्णाशीत (मोतदिल), बल्य, मनको प्रसन्न करनेवाला, वाजीकर, शमन तथा हृदय-यकृत् और मस्तिष्कको बल देनेवाला है। हृदयदौर्बल्य, हृदयकी धड़कन, मद, उन्माद, शुक्रप्रमेह, नपुंसकता, वीर्यका पतलापन, उरःक्षत और राजयक्ष्मामें सोना लाभकारी है।

स्वर्णादिलोहानां सामान्यशोधनम् ।

सुवर्णरूप्यताम्रायःपत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ।
कृत्वा कण्टकवेधीनि दृष्ट्वा वह्निसमानि च ॥ ४ ॥
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे गवां जले ।
काञ्जिके च कुलत्थानां कषाये सप्तधा पृथक् ॥ ५ ॥
एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः संप्रजायते ।
नागवङ्गौ प्रतप्तौ च गलितौ तु निषेचयेत् ॥ ६ ॥
सच्छिद्रशैलपिहिते हण्डिकास्थे द्रवे शनैः । (आ. प्र. अ. ११)

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र और लोहा इनके कण्टकवेधी पत्रे बना, उनको अग्निमें अग्निके समान रक्तवर्ण हों इतना तपा-तपाकर क्रमसे तैल, तक्र-छाछ, गोमूत्र, काँजी और कुलथीका क्वाथ–इनमें सात-सात बार बुझानेसे उनकी शुद्धि होती है (कांस्य, पित्तल और वर्तलोह इनकी शुद्धि भी इसी प्रकार करनी चाहिये)। नाग, वंग और यशदको लोहेकी कड़ाहीमें गला, एक दृढ़ लोहपात्रमें ऊपर लिखे हुए तैलादि द्रव पदार्थ भर, उसके ऊपर दूसरा मध्यमें छेदवाला दृढ़ और वजनदार पात्र (चक्कीका ऊपरका भाग) ढककर उसमें सात–सात बार गेरने (ढालने)से उनकी शुद्धि होती है। यह शोधनविधि सब धातुओंके लिये सामान्य है। इसके करनेके बाद प्रत्येक धातुके लिये जो विशेष शोधनविधि लिखी है वह भी करनी चाहिये।

सुवर्णशुद्धिविचारः ।

स्वर्णं रूप्यादिसंयोगान्मिश्रलोहं प्रजायते ॥ ७ ॥

---

१ "न सज्जते हेमपाङ्गे विषं पद्मदलेऽम्बुवत् । हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति ॥" (च. चि. अ. २३)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वर्णकार्यं न तेन स्यात्तस्माच्छुद्धिर्विधीयते ।
शोध्यं न केवलं स्वर्णं, लोहान्यन्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥
(र. चू. अ. १४)

न तु शुद्धस्य हेम्नश्च शोधनं कारयेद्भिषक् ।
अन्येषामेव लोहानां शोधनं कारयेद्भिषक् ॥ ९ ॥
(र. प्र. सु. अ. ४)

चाँदी-ताँबा आदि अन्य धातुसे मिले हुए (अशुद्ध) सोनेसे सोनेका कार्य (गुण-कर्म) नहीं होता है, इसलिये अशुद्ध (अन्य धातुसे मिश्रित) सोनेका शोधन करना चाहिये । शुद्ध (अन्य धातुसे अमिश्रित) सोनेकी अन्य धातुओंके लिये जो सामान्य शोधनविधि कही गई है उसके करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

सुवर्णशोधनम् ।

सूचीवेध्यानि पत्राणि सुवर्णस्य समाहरेत् ।
कर्तर्या कर्तयेच्चाथ कणान् सूक्ष्मांस्तु कारयेत् ॥ १० ॥
मृल्लिप्ते काचपात्रे च न्यसेत् स्वर्णकणांस्ततः ।
त्रिपादिकायां विन्यस्य सुरादीपाग्निना पचेत् ॥ ११ ॥
लवणद्रावकं तत्र निक्षिपेत्तु शनैः शनैः ।
सोरकद्रावकं चाथ पूर्वद्रावस्य पादिकम् ॥ १२ ॥
विधिज्ञो निक्षिपेद्यावद् द्रवतां याति काञ्चनम् ।
किञ्चित्कालं पचेच्चाथ द्रावाधिक्यनिवृत्तये ॥ १३ ॥
सजलं चणकाम्लं च तावत्तत्र विनिक्षिपेत् ।
यावत् खलु सुवर्णस्य चणकाम्लस्य योगतः ॥ १४ ॥
अतिसूक्ष्मकणं चूर्णं पात्राधः पतितं भवेत् ।
विनश्यत्यम्लता यावत्तावत् प्रक्षालयेज्जलैः ॥ १५ ॥
संशोष्य चाथ मतिमान् विशुद्धं स्वर्णमाहरेत् ।
(र. त. त. १५)

सोनेके सूचीवेध्य (सूईसे बींधे जा सकें ऐसे) पत्रोंको कैंचीसे काटकर उसके सूक्ष्म कण करे । पीछे एक काचकी अग्निसह (आतशी) शीशीपर मुलतानी मिट्टीका लेप कर, उसके सूखनेपर शीशीमें सुवर्णकण डाल, उसपर लवणद्रावक (नमकका तेजाब-एसिड हाइड्रोक्लोरिक) एक भाग तथा सोरकद्रावक (सोरेका तेजाब-एसिड नाइट्रिक) उससे चौथाई भाग डाल, एक लोहेकी तिपाईपर रखकर नीचे स्पिरिट लेम्पका अग्नि करे । जब सब सोना एसिडमें घुल जाय तब उसमें सोना सूक्ष्म चूर्णके रूपमें नीचे बैठ जाय इतना जलमें मिलाया हुआ चणकाम्ल (ऑक्झेलिक एसिड) डाल, हिलाकर नीचे उतार ले । जब ठँढा हो जाय तब जलसे बार-बार धोकर एसिडकी अम्लता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निकाल कर उसे सुखा लेवे। इस विधिसे सुवर्ण अन्य धातुओंसे मुक्त तथा अतिसूक्ष्म चूर्णके रूपमें प्राप्त होता है। इस चूर्णका भस्म आदि बनानेमें प्रयोग किया जाता है।[1]

सुवर्णमारणम्।

शुद्धस्वर्णभवं चूर्णं तत्समं श्वेतमल्लकम्॥ १६॥
काञ्चनारद्रवैर्मर्द्यं तुलसीस्वरसैस्तथा।
विधाय चक्रिकां शुष्कां ततो लघुपुटे पचेत्॥ १७॥
द्वितीयादिपुटे देयं मल्लं पादमितं बुधैः।
अरुणाभं भवेद्भस्म हेम्नस्तु दशभिः पुटैः॥ १८॥

पूर्वोक्त विधिसे बनाया हुआ सोनेका चूर्ण अथवा चन्द्रोदय बनाते समय शीशीके तलेमें रहा हुआ सुवर्णका चूर्ण तथा शुद्ध संखिया (सोमल) समभाग ले, उसको लोहेकी खरलमें कचनारकी छाल और तुलसीके स्वरसमें सात-सात दिन मर्दन कर, पतली टिकिया बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख, सन्धिस्थान पर कपड़मिट्टी करके लघु (पाँच कंडोंका) पुट देवे। उत्तरोत्तर पुटमें अग्निकी मात्रा थोड़ी–थोड़ी बढ़ावे। दूसरे पुटसे संखिया सोनेसे चतुर्थांश प्रमाणमें डाले। ऐसे दश पुट देनेसे अरुणवर्णकी स्वर्णभस्म बनती है। **मात्रा** $\frac{1}{8}$ रत्तीसे $\frac{1}{4}$ रत्ती। **अनुपान**—मधु या रोगानुरूप।

सुवर्णमारणस्य द्वितीयः प्रकारः।

लोहपर्पटिकाबद्धं मृतं सूतं समांशकम्।
विद्रुते हेम्नि निक्षिप्तं स्वर्णं भूतिप्रभं भवेत्॥ १९॥
तद्भस्म पूरतोयेन दरदेन समन्वितम्।
मर्दयेद्दिनमेकं तु संपुटे धारयेत्ततः॥ २०॥
पुटितं दशवारेण स्वर्णं सिन्दूरसन्निभम्।
जायते नात्र संदेहो सर्वरोगेषु योजयेत्॥ २१॥
(र. प्र. सु. अ. ४)

---

१ एक अच्छी दृढ मूषामें एक भाग सुवर्ण और पाँच भाग चाँदी दोनोंको एकत्र गलावे। जब दोनों द्रवरूप हो जाँय तब एक लोहपात्रमें जल भर, उसको जोरसे हिलाकर उसमें उस द्रवको डाल देनेसे छोटे-छोटे रवे बन जाँयगे। उनको जलसे निकाल, कोरे करके एक आतशी शीशीको लोहेकी तिपाई पर रख कर उसमें डाले और नीचे स्पिरिट लेम्पका अग्नि देवे। पीछे उसमें सोर-काम्ल (नाइट्रिक एसिड्) थोड़ा–थोड़ा करके डाले। जब सोरकाम्ल हरे रंगका हो जाय तब उसको दूसरे काचपात्रमें डाले। इस प्रकार जबतक सोरकाम्लमें हरा रंग आवे तबतक सोरकाम्ल बदलते रहना चाहिये। जब सोरकाम्लमें हरा रंग बिल्कुल न आवे तब समझना चाहिये कि अब सुवर्ण सर्वथा शुद्ध हो गया है। तब शीशीको नीचे उतार कर सुवर्णको परिस्रुत जलसे बार-बार धोकर साफ (अम्लतारहित) करके सुखा लेवे। सोरकाम्ल जो काचपात्रमें इकट्ठा किया गया था उसमें थोड़ा लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) मिलानेसे उसमें घुली हुई चाँदी नीचे बैठ जायगी इस प्रक्रियासे सोना और चाँदी दोनों विशुद्ध और सूक्ष्म चूर्णके रूपमें पृथक्-पृथक् उपलब्ध होंगे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक मूसमें सोनेको गला, उसमें समभाग लोहपर्पटी मिला कर नीचे उतार लेवे। सोना चूर्ण जैसा बन जायगा। पीछे उसमें समभाग शुद्ध हिंगुल मिला, एक दिन बिजोरेके रसमें मर्दन कर, टिकिया बना, शरावसंपुटमें बंद करके लघुपुट देवे। प्रत्येक पुटमें समभाग हिंगुल मिलावे। ऐसे दश पुटमें सोनेकी रक्तवर्णकी भस्म बनेगी। **मात्रा**—$\frac{१}{८}$ से $\frac{१}{४}$ रत्ती। **अनुपान**—मधु या रोगानुरूप।

सुवर्णमारणस्य तृतीयः प्रकारः।

स्वर्णतुल्यं रसं दत्त्वा खल्वे संमर्दयेद्दृढम्।
निम्बुद्रवेण संमर्द्य बहुशः क्षालयेद्भिषक्॥ २२॥
कुनटीं रससिन्दूरं स्वर्णतुल्यं विनिक्षिपेत्।
सुवर्णपादिकं चैव मृतं कनकमाक्षिकम्॥ २३॥
स्वर्णक्षीरीरसैः पिष्ट्वा चक्रिकाः कारयेद्भिषक्।
दद्याल्लघुपुटं वैद्यो यावन्निश्चन्द्रिकं भवेत्॥ २४॥

शुद्ध सुवर्णचूर्ण या सोनेके वरक और शुद्ध पारद समभाग ले, खरलमें मिलाकर एक दिन नीमूके रसमें मर्दन करे। पीछे उसको जलसे बार-बार धो, उसमें सोने जितना शुद्ध मैनसिलका चूर्ण तथा रससिन्दूर और सुवर्णसे चतुर्थांश सुवर्णमाक्षिककी भस्म मिला, सत्यानाशीके स्वरसमें मर्दन कर, टिकिया बना, सुखा, शराव संपुटमें बंद करके हलका पुट देवे। ऐसे दश पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म बनती है।

रजतम्।

रौप्यनामानि।

रौप्यं तु रजतं तारं चन्द्राह्वं कलधौतकम्।

नाम—(सं.) रौप्य, रजत, तार, चन्द्र, कलधौत; (हिं.) चाँदी, रूपा; (बं.) रुपा; (म.) चांदी, रुपें; (गु.) रूपुं, चांदी; (अ.) नुक़रा; (फा.) सीम; (ले.) अर्जेन्टम् (Argentum); (अं.) सिल्वर् (Silver)।

वर्णन—शुद्ध चाँदी श्वेतवर्ण और चमकदार होती है। चाँदीका वि. गु. १०.५ है। ७६० शतांश उष्णतामें चाँदीका द्रव होता है। चाँदी उत्तम उष्णतावाहक और विद्युद्वाहक है। चाँदी उत्तम प्रसरणशील है। इसके अति सूक्ष्म $\frac{१}{१००००}$ इंच मोटाईके वरक बन सकते हैं और सूक्ष्म तार खींचे जा सकते हैं। चाँदी हवामें खुली पड़ी रहनेपर भी उसपर जंग नहीं लगता (अक्षय)। सोरकाम्ल (नाइट्रिक एसिड) में चाँदी घुल जाती है। भस्म बनानेके लिये शराफोंके यहाँ शुद्ध नंबरी (१०० टचकी) चाँदी मिलती है। उसके कण्टकवेधी पत्र बनाकर उनको काममें लेना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रजतगुणाः।

रूप्यं शीतं कषायाम्लं विपाके मधुरं सरम्॥ २५॥
वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्।
वृष्यं बलप्रदं रुच्यं भ्रमोन्मादविनाशनम्॥ २६॥

चाँदी रसमें कषाय और अम्ल, मधुरविपाक, शीतवीर्य, स्निग्ध, सारक, वयःस्थापन, बलप्रद, रुचिकर, लेखन तथा वात, पित्त, भ्रम और उन्मादको दूर करनेवाली है।

यूनानीमत—चाँदी पहले दर्जेमें शीत और रूक्ष, बल्य, वाजीकर तथा मस्तिष्क, हृदय और आमाशयको बल देनेवाली है। हृत्स्पन्दन, भ्रम, मद, उन्माद, शीघ्रपतन, शुक्रतारल्य और स्वप्नदोषमें इसका प्रयोग करते हैं।

रजतशोधनम्।

तैलतक्रादिशुद्धस्य रजतस्य विशेषतः।
शोधनं मुनिभिः प्रोक्तं यथावत्तन्निगद्यते॥ २७॥
पत्रीकृतं तु रजतं प्रतप्तं जातवेदसि।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वारत्रयं शुचि॥ २८॥
तप्तं वाऽथ त्रिधा क्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे।

तैल-तक्र आदिमें शुद्ध किये हुए चाँदीके पत्रोंको अग्निमें तपा-तपाकर तीन वार अगस्त्यपत्रके स्वरसमें अथवा मालाकंगनीके तेलमें बुझानेसे चाँदीका विशेष शोधन होता है।

रजतमारणम्।

कण्टवेध्ये तारपत्रे लिप्त्वा द्विगुणहिङ्गुलम्॥ २९॥
पातयन्त्रे रसो ग्राह्यो चूर्णाभं रजतं भवेत्।
तच्चूर्णं कनकक्षीरीरसैर्मर्द्यं दिनावधि॥ ३०॥
शतपत्रीपुष्परसैर्मर्दयेद्वा दिनावधि।
कृत्वा तु चक्रिकां शुष्कां दद्याल्लघुपुटं भिषक्॥ ३१॥
एकादशपुटैरेवं तारभस्म प्रजायते।

शुद्ध चाँदीके कण्टकवेधी पत्रोंपर नीमूके रसमें पीसे हुए द्विगुण हिंगुलका लेप दे, सुखाकर विद्याधरयन्त्र[1]में पारदका ऊर्ध्वपातन करे। नीचेके पात्रमें चाँदीका चूर्ण मिलेगा। उस चूर्णमें फिर द्विगुण हिङ्गुल मिला, नीमूके रसमें मर्दन कर, सुखा कर उसी प्रकार ऊर्ध्वपातन करे। फिर उस चूर्णको सत्यानाशीके स्वरसमें अथवा गुलाबके फूलोंके स्वरसमें एक दिन मर्दन कर, टिकिया बना, सुखाकर हलका पुट देवे। ऐसे ग्यारह पुट देनेसे रौप्यभस्म तैयार होगी। **मात्रा**—½ से १ रत्ती। **अनुपान**—मधु या रोगानुरूप।

---

१ विद्याधरयन्त्रका वर्णन परिभाषाखण्ड अ. ४ में देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रजतमारणस्यान्यः प्रकारः ।

विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् ॥ ३२ ॥
तालं गन्धं समं शुद्धं तन्मर्द्यं निम्बुकद्रवैः ।
गोलकीकृत्य संशुष्कं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ ३३ ॥
भवेत् सप्तपुटैर्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ।

शुद्ध चाँदीके पत्रोंको कैंचीसे काटकर उसके सूक्ष्म कण बना, उसमें समभाग पारद मिलाकर पिष्ठी तैयार करे। पीछे उसमें समभाग शुद्ध हरताल और गन्धकका चूर्ण मिला, एक दिन नीमूके रसमें मर्दन कर, टिकिया बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख, संधिस्थान-पर कपड़मिट्टी देकर लघुपुटमें पकावे। ऐसे सात पुटमें चाँदीकी भस्म होगी। दूसरे आदि पुटमें पारद न देकर केवल हरताल और गंधक ही देवे।

ताम्रम् ।

ताम्रनामानि ।

ताम्रं म्लेच्छमुखं शुल्वं रविसंज्ञमुदुम्बरम् ॥ ३४ ॥

नाम—(सं.) ताम्र, शुल्व, म्लेच्छमुख, सूर्यसंज्ञ[1], उदुम्बर; (हिं.) ताँबा; (बं.) तामा; (म.) तांबें; (गु.) त्रांबुं तांबुं; (अ.) नुहास; (फा.) मिस; (ले.) क्युप्रम् (Cuprum); (अं.) कॉपर् (Copper)।

वर्णन—यह प्रसिद्ध रक्तवर्ण और चमकीली धातु है। इसका वि. गु. ८ है। १०८० शतांश उष्णतामान पर ताँबा पिघलता है। ताप और विद्युत्की वाहकतामें चाँदीके बाद ताम्रका नम्बर आता है। ताँबेके बहुत सूक्ष्म वरक (पत्र) बनाये जा सकते और सूक्ष्म तार खींचा जा सकता है। विजलीके वायर-तारका ताँबा शुद्ध (अन्य धातुसे अमिश्रित) होता है। उसका या तुत्थसे[2] निकाले हुए ताम्रका भस्म बनानेमें है उपयोग करना चाहिये।

ताम्रगुणाः ।

ताम्रं कषायं मधुरं लेखनं शीतलं सरम् ॥ ३५ ॥
(सू. अ. ४६)।

ताम्रं तिक्तकषायकं च मधुरं पाके च वीर्योष्णकं ॥
साम्लं पित्तकफापहं जठररुक्कुष्ठामजन्त्वन्तकृत् ।

---

१ संस्कृत भाषामें सूर्यके जितने पर्याय-नाम हैं वे सब ताम्रके लिये भी प्रयुक्त होते हैं।

२ आध सेर रीठेको दश सेर जलमें पका, आधा जल रह जाने पर उसको कपड़े से छान, लोहेकी कड़ाहीमें डाल, उसमें एक सेर तुत्थका चूर्ण मिलाकर दो दिन रहने दे, तीसरे दिन जल को निथार कर फेंक दे और कड़ाहीमें जमे हुए ताम्र चूर्णको दो-तीन बार जलसे धोकर सुखा ले।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऊर्ध्वाधःपरिशोधनं विषहरं स्थौल्यापहं क्षुत्करं।
दुर्नामक्षयपाण्डुरोगशमनं नेत्र्यं परं लेखनम् ॥ ३६ ॥ (र.चू.अ. १४)

ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च।
पित्तापहं श्लेष्महरं च सोष्णं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च ॥ ३७ ॥
पाण्डूदरार्शोगरकुष्ठकासश्वासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम्।
शोफं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत् ॥ ३८ ॥
(आ. प्र. अ. ११)

ताम्र तिक्त, कषाय, कटु, मधुर, मधुरविपाक, उष्ण[१]वीर्य, सारक, लघु, लेखन, रोपण, नेत्रके लिये हितकर, दीपन, ऊर्ध्वाधःशोधन तथा पित्त, कफ, विष, उदर, आम, कृमि, स्थूलता, अर्श, क्षय, पाण्डुरोग, कुष्ठ, कास, श्वास, पीनस, अम्लपित्त, शोथ, शूल तथा यकृत्-प्लीहा और ग्रहणीके रोगोंका नाश करनेवाला है।

ताम्रस्य विशेषशुद्धिः।

पटुना रविदुग्धेन ताम्रपत्राणि लेपयेत्।
अग्नौ संताप्य निर्गुण्डीरसे सिञ्चेत्तु सप्तधा ॥ ३९ ॥
गोमूत्रे वा पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना।

तैल-तक्र आदिसे शुद्ध किये हुए ताम्रपत्र पर अर्कदुग्धमें घोटे हुए सैन्धवलवणका लेप कर, अग्निमें तपा-तपा कर संभालूकी पत्तीके स्वरसमें सात वार बुझानेसे अथवा गोमूत्रमें एक प्रहर पकानेसे ताम्रकी विशेष शुद्धि होती है।

ताम्रमारणम्।

जम्बीररससंपिष्टरसगन्धकलेपितम् ॥ ४० ॥
ताम्रपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति भस्मताम्।

ताम्रके समभाग शुद्ध पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसको जम्भीरी या कागजी नीमूके रसमें मर्दन कर, ताम्रपत्र पर उसका लेप चढ़ा, धूपमें सुखा, शरावसंपुटमें रख, संधिस्थान पर कपड़मिट्टी करके आधे गजपुटका अग्नि देवे। फिर संपुटसे निकाल, उसमें अर्धभाग गन्धक मिला, नीमूके रसमें मर्दन कर, टिकिया बना, सुखाकर पूर्वोक्त विधिसे पुट देवे। इसी प्रकार एक पुट और देवे। तृतीय पुटमें अग्नि थोड़ा कम देना चाहिये। इस प्रकार तीन पुट देनेसे कृष्णवर्णकी ताम्रभस्म बनती है।

प्रकारान्तरेण ताम्रमारणम्।

शुद्धं ताम्रभवं चूर्णं समहिङ्गुलमिश्रितम् ॥ ४१ ॥
निम्बूरसेन संपिष्टं कारयेच्चक्रिकाः शुभाः।
शोषयित्वा विधानज्ञो यन्त्रे डमरुके पचेत् ॥ ४२ ॥

---

१ सुश्रुतने ताम्रको शीतवीर्य माना है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ऊर्ध्वपात्रगतः सम्यग्युक्त्या ग्राह्यो रसोत्तमः ।
अधःपात्रगतं ताम्रचूर्णं गन्धकमिश्रितम् ॥ ४३ ॥
जम्बीररससंपिष्टमर्धभाख्ये पुटे पचेत् ।
शुल्बं भस्मीभवत्येवं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ ४४ ॥

समभाग शुद्ध किये हुए ताम्रचूर्ण और हिंगुलको नीमूके रसमें घोट, उसकी छोटी-छोटी टिकियाँ बना, सुखा कर डमरुयन्त्रमें पकावे । ऊपरके पात्रमें लगे हुए पारदको युक्तिसे निकालकर रसयोगोंके बनानेमें उपयोग करे । नीचे रहे हुए ताम्रचूर्णमें समभाग शुद्ध गन्धक मिला, नीमूके रसमें मर्दन कर, टिकिया बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख, संधिस्थानपर कपड़मिट्टी लगाकर अर्धगजपुटका अग्नि देवे । ऐसे दो पुट देनेसे वान्ति-भ्रान्ति आदि दोषरहित ताम्रभस्म तैयार होती है ।

ताम्रभस्मको काचमात्रमें नीमूके रसमें मिला कर एक दिन-रात रहने दे । यदि नीमूके रसमें हरापन आवे तो उसको शुद्ध गन्धकके साथ नीमूके रसमें मर्दनके पहलेसे हलका एक पुट और देवे ।

ताम्रभस्मनोऽमृतीकरणम् ।

अथ संमारितं ताम्रं निम्बुनीरेण मर्दयेत् ।
तद्गोलं शूरणस्यान्ता रुद्ध्वा संलेपयेन्मृदा ॥ ४५ ॥
शुष्कं गजपुटे पाच्यममृतीकरणं भवेत् ।
वान्तिभ्रान्त्यादिदोषांश्च न करोति कदाचन ॥ ४६ ॥

ताम्रभस्मको नीमूके रसमें मर्दन कर, एक गोला बना, सुखा, सूरणके दो समान टुकड़े कर, मध्यमें ताम्रका गोला रह सके इतना भाग निकाल, उसके अन्दर गोलेको रख, ऊपरसे दो अंगुल मोटा मिट्टीका लेप कर, धूपमें सुखाकर गजपुटमें पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर बाहर निकाल, यदि गोलेके बाहरके भागपर कुछ हरापन आया हो तो उसको छुरीसे खुरच, ताम्रभस्मको पीस, काचपात्रमें जबतक जलके रंगमें हरापन आवे तबतक जलसे धो, सुखाकर रख लेवे । इस विधिको **अमृतीकरण** कहते हैं । ताम्रभस्मका अमृतीकरण करनेसे उससे वान्ति-भ्रान्ति आदि दोष नहीं होते । मात्रा ।·—॥· रती ।

ताम्रदोषाः ।

दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छोत्क्लेशो रेको वमिर्भ्रमः ।
असम्यक्शोधिते दोषास्ताम्रेऽसम्यक् च मारिते ॥ ४७ ॥

ठीक शोधन और मारण न किये हुए ताम्रसे दाह, स्वेद, अरुचि, मूर्च्छा, उत्क्लेद (जी मिचलाना), विरेचन, वमन और भ्रम (चक्कर आना) ये दोष होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य—रसशास्त्रमें ताम्रप्रधान **पित्तल-रीति** और **कांस्य**-इन दो मिश्र लोहोंका वर्णन पाया जाता है। अतः ताम्रके प्रकरणमें ही उनका वर्णन किया जाता है। पीतल और कांस्यकी भस्मका अकेला प्रयोग नहीं किया जाता, परन्तु अन्य रसयोगोंमें इनका प्रयोग होता है।

पित्तलं-रीतिः।

पित्तलनामानि।

आरकूटमथारं च पित्तलं रीतिका तथा।

नाम—(सं.) आरकूट, आर, पित्तल, रीतिका, रीति; (हिं.) पीतल; (म., गु.) पितळ; (बं.) पितल; (अं.) ब्रास (Brass)

वक्तव्य—दो भाग अच्छे ताम्र और एक भाग यशदको एकत्र गला लेनेसे **पीतल** नामकी मिश्र धातु बनती है। जो पीतल मुलायम, सुन्दर पीले रंगका, चमकदार, मजबूत, पीटने पर भी न टूटनेवाला और चिकना (मसृणस्पर्श) हो वह अच्छा होता है (गुर्वी मृद्वी च पीताभा साराङ्गी ताडनक्षमा। सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा॥)।

रीतिकागुणाः।

रीतिस्तिक्तरसा रूक्षा शोधनी सास्रपित्तनुत्॥ ४८॥
कृमिकुष्ठहरा सोष्णा पाण्डुघ्नी लेखनी तथा।

पीतल तिक्त, रूक्ष, कुछ उष्णवीर्य, शोधन, लेखन तथा रक्तविकार, पित्त, कृमि, कुष्ठ और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है।

रीतिकाया विशेषशोधनम्।

तप्ता क्षिप्ता च निर्गुण्डीरसे श्यामारजोऽन्विते॥ ४९॥
पञ्चवारेण संशुद्धिं रीतिरायाति निश्चितम्।

तैल-तक्र आदिमें शुद्ध किये हुए पीतलके पत्रोंको अग्निमें तपा-तपा कर हलदीका चूर्ण मिलाये हुए संभालूके स्वरसमें पाँच वार बुझानेसे पीतलकी विशेष शुद्धि होती है।

रीतिमारणम्।

निम्बूरसशिलागन्धलेपिता पुटिता त्रिधा॥ ५०॥
रीतिरायाति भस्मत्वं ताम्रवद्वाऽथ मारयेत्।

समभाग शुद्ध मैनसिल और गन्धकको नीमूके रसमें पीस, उसका पीतलके पत्रोंपर लेप कर, सुखा, शरावसंपुटमें रख, संधिस्थानपर कपड़मिट्टी लगाकर आधे गजपुटमें पकावे। दूसरे पुटमें चतुर्थांश शुद्ध मैनसिल और गन्धकके साथ पीतलको पीस, टिकिया बना, सुखाकर अर्ध गजपुट देवे। ऐसे तीन पुट देनेसे पीतलकी भस्म होती है। अथवा ताम्रभस्म बनानेकी विधिसे पीतलकी भस्म बनावे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पित्तलरसायनम् ।

मृतारकूटं कान्तं च व्योमसत्त्वं च मारितम् ॥ ५१ ॥
समांशं बाकुचीबीजव्योषजन्तुघ्नमुस्तकम् ।
ब्रह्मबीजाजमोदाग्निभल्लाततिलसंयुतम् ॥ ५२ ॥
सेवितं निष्कमात्रं हि जन्तुघ्नं कुष्ठनाशनम् ।
विशेषाच्छ्वेतकुष्ठघ्नं दीपनं पाचनं हितम् ॥ ५३ ॥
(र. चू. अ. १४)

पीतलभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकसत्त्वभस्म तथा बावची, सोंठ, काली मिर्चे, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, पलासके बीज, अजमोद, चित्रक, भिलावा और तिल इनका कपड़छान चूर्ण सब समभाग ले, एक दिन एकत्र मर्दन करके शीशीमें भर लेवे। यह **पित्तलरसायन** दीपन, पाचन और कृमि तथा कुष्ठका विशेष करके सफेद कोढ़का नाश करनेवाला है।

कांस्यम् ।

कांस्यनामानि ।

अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागं कुटिलं युतम् ।
एकत्र द्रावितं तत् स्यात् कांस्यं घोषं च कंसकम् ॥ ५४ ॥

आठ भाग ताम्र और दो भाग वंग (रांगे) को एकत्र गलानेसे काँसा बनता है।

नाम—(सं.) कांस्य, घोष, कंसक; (हिं., बं.) काँसा (म.) कांसें; (गु.) कांसुं; (अं.) बेल् मेटल् (Bell metal)।

कांस्यगुणाः ।

कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम् ।
कृमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं भाजने हितम् ॥ ५५ ॥ (र. चू. अ. १४)

काँसा तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, लेखन, दृष्टि(नेत्र)को प्रसन्न (स्वच्छ) करनेवाला तथा वात, पित्त, कृमि और कुष्ठको दूर करनेवाला है। कांस्यपात्रमें भोजन करना हितकर—आरोग्यप्रद है।

कांस्यस्य शोधनमारणे ।

तप्तं कांस्यं गवां मूत्रे वापितं परिशुद्ध्यति ।
म्रियते गन्धतालाभ्यां निरुत्थं पञ्चभिः पुटैः ॥ ५६ ॥

तैल-तक्र आदिमें शुद्ध किये हुए काँसेके पत्रोंको अग्निमें तपा-तपाकर सातवार गोमूत्रमें बुझानेसे कांस्यकी विशेष शुद्धि होती है। समभाग शुद्ध गन्धक और हरतालको नीमूके रसमें पीस, उसका कांस्यपत्रपर लेप दे, सुखा, शरावसंपुटमें बन्द कर, सन्धिस्थानपर कपड़मिट्टी करके आधा गजपुटमें पकावे। ऐसे पाँच पुट देनेसे कांस्यकी भस्म बनती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

माक्षी(क्षि)कम्।

माक्षीकनामानि।

माक्षीकं धातुमाक्षीकं तापीजं ताप्यकं तथा।

नाम—(सं.) माक्षी(क्षि)क, धातुमाक्षीक, तापीज, ताप्य, सुवर्णमाक्षीक; (हिं.) सोनामक्खी, सोनामाखी; (बं.) (म.) दगडी सोनामुखी; (गु.) माक्षीक, सोनामखी; (अ.) मारकशीशा; (अं.) चॅल्को-पाइराइट (Chalcopyrite), कॉपर पाइराइट (Copper Pyrite)।

माक्षीकवर्णनम्।

माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः॥ ५७॥
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम्।
तपतीतीरसंभूतं पञ्चवर्णसुवर्णवत्॥ ५८॥
पाषाणबहलः प्रोक्तस्ताराख्योऽसौ गुणाल्पकः।
(र. चू. अ. १०)।

माक्षीको द्विरिहाहिमः कनकरुग्दुर्वर्णवर्णोऽपरः।
कांस्यश्रीकमुशन्ति केचन परं सर्वेऽपि पूर्वेत्विषः॥ ५९॥
निष्कोणा गुरवः किरन्ति निभृतं घृष्टाः करे कालिमां॥ ६०॥
(र. प. श्लो. ४९,५०)।

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः।
ताप्यां किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः॥ ६१॥
(अ. सं. उ. अ. ४९)

भङ्गे सुवर्णसंकाशो मनाकृष्णच्छविर्बहिः।
कषे कनकवद्धृष्टो माक्षिकः श्रेष्ठ उच्यते॥ ६२॥

सुवर्णमाक्षीक (सोनामाखी) और **रौप्यमाक्षीक** (रूपामक्खी) भेदसे माक्षिक दो प्रकारका होता है। कई रसाचार्य इसका **कांस्यमाक्षिक** नामका तीसरा भेद भी बताते हैं। ये तीनों भेद अपने अपने रंग परसे पहचाने जाते हैं। अर्थात् सुवर्णमाक्षीक सोनेके जैसे रंगका, रौप्यमाक्षीक चाँदीके जैसे रंगका और कांस्यमाक्षीक काँसेके जैसे रंगका होता है। माक्षीक कोण (और धार तथा फलक) रहित, अनियत आकारका, भारी (विमलकी अपेक्षया) तथा हाथसे खूब रगड़ने पर हाथमें कालापन लानेवाला होता है (**रसपद्धति**)। सुवर्णमाक्षीक नववर्ण सोनेके जैसे रंगका

१ "सुवर्णवर्णसदृशं नववर्णसुवर्णवत्।" (र. प्र. सु. अ. ५)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और रौप्यमाक्षीक पञ्चवर्ण[1] सुवर्णके समान रंगका होता है और वह सुवर्णमाक्षिकसे अल्पगुणवाला होता है (**रसेन्द्रचूडामणि**)। सुवर्णमाक्षिक रसमें मधुर और रौप्यमाक्षिक कुछ अम्लरसवाला होता है। माक्षीक तापी नदी, किरात, चीन और यवन देशमें उत्पन्न होता है (**अष्टाङ्गसंग्रह**)। जो माक्षीक बाहरसे कुछ काला और तोड़ने पर भीतरसे सुनहरे रंगका दिखे तथा कसौटी पर घिसनेसे जिसका सोने जैसा रंग (कस) उतरे वह माक्षिक श्रेष्ठ होता है।

वक्तव्य—सुवर्णमाक्षीक (कॉपर पायराइट) ताँबेका मुख्य खनिज-धातु है। उत्तम सुवर्णमाक्षीकसे ⅓ ताँवा प्राप्त होता है। **रसार्णव** (पटल ७, श्लो. १०)में लिखा है कि-माक्षिकसे ताम्रके सदृश मृदु सत्त्व (लोह-मेटल) निकलता है—"मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु।" । माक्षीक ताम्र, लोहा और गन्धका यौगिक (गन्धताम्रायस्) है। **सुश्रुतने** मधुमेहचिकित्सा (चि. अ. १३)में माक्षीक खानेको देनेके लिये लिखा है—"एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम्। मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम्। पिबन् हन्ति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान्।।" । **वृद्धवाग्भटने अष्टाङ्गसंग्रह** उत्तरस्थान अध्याय ४९ में माक्षीकके कई खानेके योग लिखे हैं। आजकल वैद्यलोग **माक्षीक** नामसे जिस द्रव्यका प्रयोग करते हैं वह प्रायः विमल होता है। माक्षीक कोण-धार तथा फलक-पहल रहित और विमल कोण-धार और फलकवाला होता है। यह दोनोंमें बड़ा भारी दृश्य अन्तर है। विमलका वर्णन आगे लोहके प्रकरणमें देखें। माक्षीक ताम्रका खनिज होनेसे ताम्रके प्रकरणमें उसका वर्णन किया है।

माक्षीकगुणाः।

भवेद्धि मृतमाक्षीकं सर्वव्याधिविनाशनम्।
क्षयं पाण्डुं च कुष्ठानि ग्रहणीं गुदजा रुजः॥ ६३॥
मन्दाग्निं कामलां शोषं स्वरभङ्गमरोचकम्।
(र. चू. अ. १०)

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्रिमिकुष्ठनुत्॥ ६४॥
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम्।
(रसार्णव म. ७)

मधुरः काञ्चनाभासः साम्लो रजतसन्निभः॥ ६५॥
किञ्चित् कषाय उभयः शीतः पाके कटुर्लघुः।
(अ. सं. उ. स्था. अ. ४९)।

---

१ 'जैसे आजकल यूरोपमें विशुद्ध सुवर्णके २४ कॅरेट् (carat) तथा भारतवर्षमें १०० टच-नंबर मानते हैं, वैसे प्राचीन समयमें भारतवर्षमें विशुद्ध सुवर्णके षोडश वर्ण माने जाते थे। उससे जितने वर्ण हीन हों उतने अंक वर्णके पीछे लगाकर व्यवहार होता था; जैसे यहां **'पञ्चवर्ण** सुवर्ण जैसा' इस शब्दका व्यवहार किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥ ६६ ॥
चक्षुष्यं वस्तिहृत्कण्ठपाण्डुमेहविषोदरम् ।
अर्शः शोफमनिद्रां च त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ६७ ॥
(आ. प्र. अ. १२)

सुवर्णमाक्षीक मधुर, तिक्त, कुछ कषाय, विपाकमें कटु, लघु, शीतवीर्य, वाजीकर, रसायन, बलकारक, योगवाही तथा कफ, पित्त, क्षय, पाण्डुरोग, कृमि, कुष्ठ, ग्रहणी, अर्श, मन्दाग्नि, कामला, राजयक्ष्मा, स्वरभंग, अरुचि, वस्ति-हृदय और कण्ठके रोग, विष, शोथ, उदरवृद्धि, अनिद्रा तथा अनुपानविशेषसे तीनों दोषों और सर्वरोगोंको दूर करनेवाला है ।

माक्षिकशोधनम् ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च ।
मातुलुङ्गद्रवैर्वाऽथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ ६८ ॥
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत् सर्वं सुलोहितम् ।
जलैः प्रक्षालयेत् पश्चाच्छुद्धं भवति माक्षिकम् ॥ ६९ ॥

माक्षिकका चूर्ण तीन भाग और सैन्धव लवणका चूर्ण एक भाग दोनोंको लोहेकी कड़ाहीमें डाल, उसमें बिजोरे या नीमूका रस मिलाकर अग्निपर लोहेकी करछीसे हिलाता हुआ सब चूर्ण अग्निवर्ण हो जाय इतना पकावे । ठंडा होनेपर बार-बार जलसे धोकर सैन्धवका अंश सब निकाल देवे । इस विधिसे माक्षीक शुद्ध होता है ।

माक्षिकमारणम् ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
कुमारीस्वरसेनैव ततः कार्याऽस्य चक्रिका ॥ ७० ॥
शरावसंपुटे रुद्ध्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
एवं दशपुटैः पक्वं भस्म माक्षिकजं भवेत् ॥ ७१ ॥
द्वितीयादिपुटे वह्निं क्रमादल्पं प्रदापयेत् ।

तीन भाग शुद्ध माक्षिक और एक भाग शुद्ध गन्धकको ग्वारपाठेके रसमें मर्दनकर, उसकी टिकियाँ बना, छायामें सुखा, दो मिट्टीके तवोंके बीचमें रख, सन्धिस्थानपर कपड़मिट्टी करके गजपुटका अग्नि देवे । द्वितीय आदि पुटोंमें अग्निका प्रमाण क्रमशः घटाता जावे । इस प्रकार दश पुट देनेसे सुवर्णमाक्षिककी भस्म होती है । **मात्रा**—१-२ रत्ती । **अनुपान**-मधु या घृत ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तुत्थम् ।

तुत्थनामानि ।

तुत्थं स्यादमृतासङ्गं शिखिग्रीवं च सस्यकम् ॥ ७२ ॥

नाम—(सं.) तुत्थ, अमृतासङ्ग, शिखिग्रीव (मयूरग्रीव), सस्यक; (हिं.) नीलाथोथा, तूतिया; (बं.) तुँते, तुँतिया; (म.) मोरचूत; (गु.) मोरथुथु (थो.); (अ.) तूतियाए अख्जर; (ले.) कुप्राई सल्फस् (Cupri Sulphas; (अ.) कॉपर् सल्फेट् (Copper Sulphate), ब्लु विट्रिऑल् (Blue Vitriol) ।

वर्णन—यह नीलवर्ण और पासेदार (पहलदार-स्फटिकाकार) ताम्रका उपधातु है जो क्वचित् स्वयंभूरूपमें पाया जाता है । आजकल यह ताम्र और गन्धकाम्ल (सल्फ्युरिक एसिड) के योगसे बनाया हुआ (कृत्रिम) बाजारमें मिलता है । इसमें ताम्र १ भाग, गन्धकाम्ल १ भाग और जल ५ भाग होता है । तुत्थको मिट्टीके तवेपर रख कर अग्निपर तपानेसे श्वेत वर्णका चूर्ण बन जाता है । तुत्थको कड़ी धूपमें खुला रख छोड़नेपर भी उसका श्वेत वर्णका चूर्ण बन जाता है । ढाई गुने ठंढे जलमें तुत्थ घुल जाता है । विलायती दवा बेचनेवालोंके यहाँ **कॉपर सल्फेट** के नामसे अच्छा तुत्थ मिलता है । बाजारी अस्वच्छ तुत्थको गरम किये हुए परिस्रुत जलमें घोल, फिल्टर पेपरसे छान कर काचपात्रमें सुखा लेनेसे स्वच्छ तुत्थ प्राप्त होता है ।

तुत्थगुणाः ।

तुत्थं तु कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।
लेखनं भेदनं चोष्णं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ७३ ॥
विषार्शःकुष्ठकण्डूतिश्वित्रकृमिव्रणापहम् ।

तुत्थ कटु, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, वमन करानेवाला, क्षारकर्मकर, लेखन (व्रणमांस-लेखन, भेदन, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, विष, अर्श, कुष्ठ, कण्डू, श्वित्र, कृमि और व्रणका नाश करनेवाला है ।

तुत्थशोधनम् ।

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठावराक्वाथेन भावितम् ॥ ७४ ॥
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति तुत्थकम् ।
अथवा त्रिफलाक्वाथे भावितं परिशोषितम् ॥ ७५ ॥
विमर्द्य क्षौद्रसर्पिर्भ्यां ततो लघुपुटे पचेत् ।
त्रिधैवं पुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ७६ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नीले थोथेको समभाग लाल चन्दन, मजीठ और त्रिफलाके क्वाथकी सात भावनायें देकर सुखा लेनेसे वह शुद्ध होता है। अथवा त्रिफलाके क्वाथकी तीन भावनायें दे, सुखा, समभाग मधु और घृतके साथ मर्दन करके लघुपुट देवे। ऐसे तीन पुट देनेसे तुत्थ वान्ति-भ्रान्तिरहित शुद्ध होता है।

नीलकण्ठरसः ।

शुद्धतुत्थं पलमितं पथ्याचूर्णं पलाष्टकम् ।
खल्वे निम्बूकनीरेण पेषयेद्दिनसप्तकम् ॥ ७७ ॥
वटिकाः कारयेद्वैद्यो गुञ्जाद्वितयसंमिताः ।
एकैकां वटिकां नित्यं सायं प्रातस्तु शीलयेत् ॥ ७८ ॥
गोपीहिमानुपानेन नीलकण्ठाभिधो रसः ।
विनिहन्ति त्रिसप्ताहात् फिरङ्गमतिदारुणम् ॥ ७९ ॥
शालिगोधूममुद्गाज्यं पथ्यमत्र प्रकीर्तितम् ।

शुद्ध तुत्थ १ पल और जौहर्डका चूर्ण ८ पल दोनोंको एकत्र कर, पत्थरके खरलमें नीमूके रसकी सात भावना दे, २-२ रत्तीकी गोलियाँ वनाकर सुखा लेवे। इनमेंसे एक-एक गोली सवेर-शाम अनन्तमूलके हिमके अनुपानके साथ खानेसे उपद्रवयुक्त फिरंग रोग दूर होता है। इसके सेवनके समय रोगीको चावल, गेहूंकी रोटी या दलिया, मूंगकी दाल, घृत और दूधके पथ्यपर रहना चाहिये।

तुत्थद्रवः ।

द्विगुञ्जं निर्मलं तुत्थं पञ्चतोलकसंमिते ॥ ८० ॥
तरुणीपुष्पसंभूते ह्यर्कं विद्राव्य रक्षयेत् ।
तुत्थद्रवोऽयं विख्यातो व्रणशोधनरोपणः ॥ ८१ ॥

दो रत्ती साफ किये हुए तुत्थको दो तोले अच्छे अर्कगुलाव (या परिस्रुत जल) में घोल, कपड़ेसे छानकर काचके डाटवाली शीशीमें भरकर रख छोड़े। यह तुत्थद्रव व्रणपर लगानेसे व्रणका शोधन और रोपण करता है। नेत्रको पहिले त्रिफलाके हिमसे धो कर इसकी एक बूंद नेत्रमें डालनेसे आँखके पोथकी, प्रक्लिन्नवर्त्म आदि रोग अच्छे होते हैं।

तुत्थमलहरः ।

दशकर्षे सिक्थतैले तुत्थं विंशतिगुञ्जकम् ।
संमिश्रितं प्रलेपेन पामां हन्ति चिरोत्थिताम् ॥ ८२ ॥

दश तोले सिक्थतैलमें वीस रत्ती नीलाथोथा मिला, ३ घंटा मर्दन करके काचपात्रमें भर ले। इसके लगानेसे चिरकालकी पामा नष्ट होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य—एक भाग अच्छा मोम और पाँच भाग तिल या नारियलका तेल दोनोंको कलईदार वरतनमें मन्द अग्निपर गलाकर और कपड़ेसे छानकर काचपात्रमें भर लेवे। इसको **सिक्थतैल** कहते हैं। इसका व्रण, हाथ-पाँवका फटना आदिमें लगानेके लिये तथा दूसरे मलहमोंके वनानेमें उपयोग होता है।

वक्तव्य—तुत्थ ताम्रसे वनता है, इसलिये उसका ताम्रके प्रकरणमें वर्णन किया गया है।

जंगार।

नाम—(सं.) नीलकल्क[1]; **(हिं.) जंगार, जंगाल; (अं.) जंजार; (फा.) जंगार।**

वर्णन—यह बाजारमें पन्सारियोंके यहां **जंगार** या **जंगाल** नामसे मिलता है। ताँबेके पात्रमें दही या सिरका रख छोड़नेसे सूखनेपर हरे रंगका जो पदार्थ प्राप्त होता है उसको **जंगार** कहते हैं।

गुण-कर्म यूनानी मत—जंगार चौथे दर्जेमें गरम और खुश्क, आग्नेय, व्रणकारक, व्रणलेखन और अवसादक (उभरे हुए या अधिक मांसको खा जानेवाला) है। दुष्ट व्रणोंके शोधन और रोपणके लिये जंगारको मरहमोंमें (सिक्थतैलमें) मिलाकर लगाते हैं। सिराजाल, फूला आदि नेत्ररोगोंमें अन्य औषधोंके साथ मिलाकर इसका अंजन किया जाता है। इसका आन्तरिक उपयोग नहीं किया जाता।

वक्तव्य—जंगार ताम्रसे वनता है, इसलिये इसका ताम्रके प्रकरणमें वर्णन किया गया है।

यूनानी वैद्यकमें जंगार दो प्रकारका माना गया है (१) कृत्रिम, जिसका वर्णन ऊपर लिखा गया है; (२) खनिज, इसको **'जंगारमादनी' या 'दह्ने फिरंग'** कहते हैं। यह रसशास्त्रका **सस्यक** हो सकता है। दहने फिरंगको जौहरी लोग उपरत्न मानते हैं (देखें **रत्नप्रदीप** भा. १ पृ. ६६१)।

वङ्गम्।

वङ्गनामानि

वङ्गं रङ्गं पिच्चटं च त्रपु पर्यायवाचकम् ॥ ८३ ॥

नाम—(सं.) वङ्ग, रङ्ग, पिच्चट, त्रपु; **(हिं.)** राँगा; **(बं.)** राङ्ग, **(म.)** कथील; **(गु.)** कलई; **(अ.)** रसास, कस्दीर; **(फा.)** अरजीर; **(ले.) स्टेनम्** (Stannum); **(अं.) टिन** (Tin)।

---

१ "ताम्रपात्रस्थमम्लं वै सैन्धवेन समन्वितम्। क्षीरेण सहितं वाऽपि पिहितं त्रिदिनावधि॥ जातं तुत्थसमं **नीलं कल्कं** तत् प्रोच्यते बुधैः॥" (र. प्र. सु. अ. १)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—वंग (राँगा) श्वेतवर्णकी चमकीली प्रसिद्ध धातु है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७.३ और द्रवणाङ्क २३२ डिग्री सेन्टिग्रेड होता है। शुद्ध वंगकी चमक खुली हवामें वंगके पड़े रहने पर भी खराब नहीं होती है। वंगके ऊपर साधारण जल-वायु तथा उद्भिज्ज अम्लोंका कुछ भी प्रभाव नहीं होता है। इस लिये लोहा, ताँवा, पीतल आदि धातुओं पर वंगकी कलई की जाती है। बाजारके राँगेमें व्यापारी लोग अपने फायदेके लिये सीसा (नाग) मिला देते हैं। "कभी-कभी वंगके साथ अल्पमात्रामें लोहा, ताँवा, संखिया आदि अन्य धातुका मिश्रण होता है। उसको अलग करनेके लिये एक काचके प्याले (गिलास) में वंगके टुकड़े डाल, उसमें शुद्ध लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) मिलाकर उसका गाढ़ा द्रव बनावे। वंग सब एसिडमें मिल जाने पर धीरे धीरे ऊपरसे पानी डालता रहे और प्यालेमें एक वंगकी शलाका डाल रखे। ऐसा करनेसे एसिड पानीमें घुलकर निकल जाता है और प्यालेमें वंगकी शलाकाके चारों ओर शुद्ध वंगके स्फटिक (Crystal) जम जाते हैं। यह वंग अति शुद्ध होता है" (**बा. प्र. मोडककृत निरिन्द्रिय रसायनशास्त्र**)।

वङ्गभेदाः।

खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते।
खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं, मिश्रकं न हितं मतम्॥ ८४॥
धवलं च मृदु स्निग्धं द्रुतद्रावं सगौरवम्।
निःशब्दं खुरवङ्गं स्यान्मिश्रकं श्यामशुभ्रकम्॥ ८५॥
(र. चू. अ. १४)

खुरक (अन्य धातुसे अमिश्रित) और मिश्रक (अन्य धातुसे मिश्रित) भेदसे वंग दो प्रकारका मिलता है। खुरवंग ही शास्त्रोक्त गुणकारक होता है। मिश्रक वंग अहित-कारक है, अतः उसका औषध बनानेके लिये प्रयोग नहीं करना चाहिये। खुरवंग श्वेतवर्ण, मृदु, स्निग्ध, अग्निपर शीघ्र पिघलनेवाला, वजनमें भारी और शब्दरहित होता है। मिश्रक वंग श्यामता लिये श्वेत वर्णका होता है।

वङ्गगुणाः।

वङ्गं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलं
सौन्दर्यैकविवर्धनं व्रणहरं नीरोगताकारकम्।
धातुस्थौल्यकरं क्षयिक्षयहरं सर्वप्रमेहापहं
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत् स्वप्ने हि शुक्रक्षयः॥ ८६॥

वङ्गभस्म दीपन, पाचन, रुचिकर, बुद्धिवर्धक, शीतवीर्य, शरीरके सौन्दर्यको बढ़ाने-वाली, व्रणहर, आरोग्यकर, वीर्यवर्धक, क्षयहर तथा स्वप्नमें होनेवाले शुक्रपातको रोकने-वाली है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वङ्गस्य विशेषशोधनम् ।

द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
विशुध्यति त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ ८७ ॥

(र. चू. अ. १४)

तैल-तक्र आदिमें शुद्ध किये हुए वंगको लोहपात्रमें अग्निपर गला कर हल्दीका चूर्ण मिलाये हुए संभालूकी पत्तीके स्वरसमें तीन बार बुझानेसे वंगकी विशेष शुद्धि होती है।

वङ्गमारणम् ।

शुद्धं वङ्गं क्षिपेल्लौहे कटाहे सुदृढे भिषक् ।
तदधो ज्वालयेदग्निं द्रुते वङ्गे क्षिपेत् पुनः ॥ ८८ ॥
आपामार्गं चतुर्थांशं चूर्णं संचालयेदिदम् ।
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या यावद्भस्म प्रजायते ॥ ८९ ॥
चूर्णप्रक्षेपणं कार्यं स्वल्पं स्वल्पं मुहुर्मुहुः ।
ततः शरावपिहितं स्थापयेत्तत्र तद्भिषक् ॥ ९० ॥
रजः सर्वं ततोऽधस्तात् कुर्यादग्निं तु तीव्रकम् ।
यावदङ्गारवर्णं तद्रजः समुपजायते ॥ ९१ ॥
स्वाङ्गशीते ततो ग्राह्यं मारणाय रजः शुभम् ।
कुक्कुटाण्डकपालानां मुक्ताशुक्त्यास्तथैव च ॥ ९२ ॥
चूर्णं पलाशपुष्पाणां वटाश्वत्थत्वचां तथा ।
एषामेकैकयोगेन वङ्गचूर्णं प्रकारयेत् ॥ ९३ ॥
स्वरसेन कुमार्यास्तु वर्याः क्षीरसरेण वा ।
विमर्द्य चक्रिकाः कृत्वा ह्यर्धेभाख्ये पुटे पचेत् ॥ ९४ ॥
एवं सप्तपुटैर्वङ्गं मृतं भवति निश्चितम् ।

शुद्ध वंगको सुदृढ और साफ की हुई लोहेकी कड़ाहीमें डाल, कड़ाहीको चूल्हेपर चढ़ा, जब वंग द्रव होजाय तब उसमें अपामार्ग(चिड़चिडे)के पंचांग, कुक्कुटाण्डकपाल (मुर्गेके अंडेके छिलके), मोतीकी सीप, ढाकके पुष्प अथवा वड़ और पीपलकी छाल—इनमेंसे किसी एकका चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर चौड़ी दर्वी(करछी)से जवतक संपूर्ण वंगका चूर्ण न हो जाय तब तक हिलाता रहे। समग्र बंगका चूर्ण हो जानेपर उसको कड़ाहीके मध्यमें इकठ्ठा कर, मिट्टीके सकोरेसे ढककर नीचे सब चूर्ण अंगारवर्ण हो जाय इतना तीव्र अग्नि देवे। स्वांगशीतल होनेपर चूर्णको कपड़ेसे छान, खरलमें डाल, ग्वारपाठेके रस, ताजी सतावरके स्वरस या दूधकी मलाईमें मर्दनकर, टिकियाँ बना, सुखा, शरावसंपुटमें रखकर आधे गजपुटका अग्नि देवे। ऐसे सात पुट देनेसे वंगकी श्वेतवर्णकी भस्म होती है। **मात्रा**—१-२ रत्ती। अनुपान मधु, दूधकी मलाई या ताजा मक्खन।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वर्णवङ्गम् ।

रुद्रभागसितं वङ्गं दर्व्यां दत्त्वाऽनले न्यसेत् ॥ ९५ ॥
विद्रुते तु तदर्धं हि सूतं तत्र विनिक्षिपेत् ।
शीघ्रं निक्षिप्य खल्वेऽथ निम्बूनीरेण पेषयेत् ॥ ९६ ॥
दत्त्वाऽथ सैन्धवं किञ्चिद् बहुशः क्षालयेत्ततः ।
नरसारं गन्धकं च रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥
संपेष्य चातियत्नेन श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ।
पाचयेत् सिकतायन्त्रे चतुर्याममतन्द्रितः ॥ ९८ ॥
निर्धूमे जायमाने च काचकूपीमुखे भिषक् ।
संदंशेन गृहीत्वा च कूपीं भूमौ तु विन्यसेत् ॥ ९९ ॥
काचकूपीं विभिद्याथ कूपिकातलसंस्थितम् ।
स्वर्णवङ्गं स्वर्णवर्णं भिषग्यत्नात् समाहरेत् ॥ १०० ॥
जीर्णकासे तथा श्वासे प्रमेहे च प्रयोजयेत् ।

लोहेकी करछीमें १२ तोले शुद्ध वंगको अग्निपर गला, उसमें ६ तोला शुद्ध पारद लोहेकी शलाकासे मिलाकर तुर्त नीचे उतार लेवे। ठंढा होनेपर खरलमें डाल, उसमें थोड़ा सैंधवलवण और नीवूका रस डालकर मर्दन करे। पीछे उसको जबतक पानीमें कालापन आना वंद न हो जाय तवतक जलसे धोता रहे। पीछे उसमें ६ तोला शुद्ध गन्धक और ६ तोला नौशादर (तथा ६ माशा कलमी सोरा) मिला कर श्लक्ष्ण कज्जली बनावे। उस कज्जलीको सात कपड़मिट्टी की हुई काचकूपीमें भर कर वालुकायन्त्रमें चार प्रहर पकावे। पकते समय कूपीके मुखमें गन्धक और नौशादर आवेगा, उसको अग्नितप्त लोहशलाकासे जलाता रहे। जब कूपीके मुखसे धुआँ आना वन्द हो जाय तव कूपीको गलेमें संडसीसे पकड़ कर भूमिपर रख दे। कूपी ठंढी (स्वाङ्गशीतल) होनेपर उसको तोड़कर स्वर्णवर्ण स्वर्णवंगको सावधानीसे निकाल ले। **मात्रा**–१-२ रत्ती। **अनुपान**–मधु। प्रमेह, पुरानी खाँसी और श्वासमें इसका प्रयोग करे।

नागः ।

नागनामानि ।

नागं सीसं च योगेष्टं वप्रं च नागनामकम् ॥ १०१ ॥

नाम–(सं.) नाग, सीसक, योगेष्ट, वप्र, नागनामक[१]; (हिं.) सीसा; (बं.) सीसे; (गु.) सीसुं; (म.) शिसें; (अ.) आनुक, रसाउल अस्वदः (फा.) उस्रुब, सुर्ब; (ले.) प्लम्बम् (Plumbum); (अं.) लेड् (Lead)।

१ संस्कृत भाषामें नाग याने सर्प और हाथीके जितने नाम हैं, उन सवका सीसेके लिये भी प्रयोग होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—सीसा प्रसिद्ध धातु है, जो श्यामता लिये हुए श्वेतवर्णकी और भारी होती है। सीसेका विशिष्ट गुरुत्व ११.३ और द्रवणाङ्क ३२६ डिग्री सेन्टीग्रेड (शतांश) होता है ।

श्रेष्ठसीसकलक्षणम् ।

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णसमुज्ज्वलम् ।
पूतिगन्धं बहिःकृष्णं श्रेष्ठं सीसं प्रकीर्तितम् ॥ १०२ ॥

(र. चू. अ. १४)

जो नाग़ अग्निपर शीघ्र पिघल जाय, वजनमें भारी (वंगकी अपेया वजनदार) हो, वाहरसे श्यामवर्ण और काटनेपर भीतरसे श्यामता लिये हुए श्वेत वर्णका तथा दुर्गन्धवाला हो वह श्रेष्ठ होता है ।

नागस्य विशेषशोधनम् ।

हरिद्राचूर्णसंयुक्ते रसे निर्गुण्डिकोद्भवे ।
द्रुतं निर्वापयेन्नागं त्रिवारं शुद्धिमृच्छति ॥ १०३ ॥

तैल-तक्र आदिमें शुद्ध किये हुए सीसेको अग्निपर गलाकर हल्दीका चूर्ण मिलाये हुए संभालूकी पत्तीके स्वरसमें तीन वार वुझानेसे नागकी विशेष शुद्धि होती है।

नागमारणम् ।

वह्नौ तु विद्रुते नागे पादांशं सूतकं क्षिपेत् ।
ततस्तु खाखसं चूर्णं दत्त्वा दर्व्या प्रचालयेत् ॥ १०४ ॥
चूर्णीभूतशिलां तुल्यां दत्त्वाऽऽटरूषपत्रजे ।
स्वरसे मर्दयेत् सम्यक् ततो लघुपुटे पचेत् ॥ १०५ ॥
द्वितीयादिपुटे दद्याच्छिलां पादांशिकां बुधः ।
एवं सप्तपुटैर्नागो भस्मीभवति निश्चितम् ॥ १०६ ॥

लोहेकी कड़ाहीमें अग्निपर गलाये हुए नागमें चतुर्थांश शुद्ध पारद मिला, उसमें थोड़ा थोड़ा अफीमके पोस्त(डोडे)का चूर्ण डालकर जवतक सब नाग चूर्णरूप न हो जाय तवतक लोहेकी करछीसे हिलाता रहे। जब सब सीसेका चूर्ण हो जाय तव चूर्णको कड़ाहीके बीच एकत्र कर, ऊपर मिट्टीका शराव ढक कर भस्म अंगारवर्ण हो इतनी आँच देवे। स्वांगशीतल होनेपर कपड़ेसे छान, उसमें समभाग शुद्ध मनःशिला डाल, अडूसेकी पत्तीके स्वरसमें मर्दन करके लघु (१०-२० कंडेके) पुटमें पकावे। दूसरे आदि पुटोंमें चतुर्थांश मैनसिल मिलावे और उत्तरोत्तर अग्निका प्रमाण थोड़ा-थोड़ा बढ़ावे। ऐसे सात पुट देनेसे नागभस्म तैयार होती है। **मात्रा**-॥-१ रत्ती। **अनुपान**-मधु।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नागभस्मगुणाः ।

मृतं सीसं तु मधुरं गुरु स्निग्धं च लेखनम् ।
उष्णं सरं तथा वृष्यं दीपनं वातनाशनम् ॥ १०७ ॥
असृग्दरं तथा मेहमर्शांसि विनिहन्ति वै ।

नागभस्म मधुर, गुरु, स्निग्ध, लेखन, उष्णवीर्य, सर, वाजीकर, दीपन तथा वातरोग, रक्तप्रदर, प्रमेह और अर्शको दूर करनेवाली है ।

सिन्दूरम् ।

सिन्दूरनामानि ।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भं च नागजम् ॥ १०८ ॥

नाम—(सं.) सिन्दूर, नागगर्भ, रक्तरेणु, नागज; (हिं.) सिन्दूर; (म.) शेंदूर; (गु.) सिंदूर; (अ.) इस्रिंज, उस्रज; (फा.) सिरिंज, सुरंज; (ले.) प्लम्बाई ऑक्साइडम् रुब्रम् (Plumbi Oxidum Rubrum), रेड् ऑक्साइड् ऑफ् लेड् (Red Oxide of lead), रेड् लेड् (Red lead) ।

वर्णन—सिन्दूर नागसे बनाया जाता है । सीसेको मूषामें या लोहेकी कड़ाहीमें डाल कर खुली हवामें गरम करनेसे सीसेका वायुमण्डलस्थित ऑक्सिजनसे संयोग होकर उसपर रक्तवर्णका चूर्ण जमने लगता है, उसको सावधानीसे ऊपरसे लेते रहते हैं, यही **सिन्दूर** है । प्रारम्भका और अन्तका अंश छोड़ देते हैं, क्योंकि उसमें कुछ अन्य धातुका अंश भी मिला रहता है । पीछे उसको जलसे धोकर सुखा लेते हैं । जो सिन्दूर रक्तवर्ण, भारी और मैदे जैसा चिकना हो वह उत्तम होता है ।

सिन्दूरगुणाः ।

सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम् ।
भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ १०९ ॥

सिन्दूर उष्णवीर्य, व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला, भग्नका सन्धान करनेवाला तथा विसर्प, कुष्ठ, कण्डू और विषका नाश करनेवाला है । सिन्दूरका बाह्य प्रयोगके लिये विविध प्रकारके मरहम बनानेमें उपयोग होता है । सिन्दूर खानेको नहीं दिया जाता ।

मृद्दारशृङ्गम् ।

सदलं पीतवर्णं च भवेद्गुर्जरमण्डले ।
अर्बुदस्य गिरेः पार्श्वे स्मृतं मृद्दारशृङ्गकम् ॥ ११० ॥

गुजरातमें अर्बुदाचल(आबू) के पार्श्व प्रदेशमें पीतवर्ण और सदल **मृद्दारशृङ्ग** उत्पन्न होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम-(सं.) मृद्दारशृङ्ग; (हिं.) मुरदासंग, मुरदारसंखग; (बं.) मुद्राशंख; (म.) मुर्दाडशिंग; (गु.) बोदार; (अ.) मुरदासंज; (फा.) मुरदासंग, मुर्दारसंग; (ले.) प्लम्बाई ऑक्साइडम् (Plumbi Oxidum); (अं.) लेड् ऑक्साइड् (Lead Oxide), लिथार्ज (Litharge) ।

वर्णन—यह सीसे और ऑक्सिजनका यौगिक है। आजकल बाजारमें कृत्रिम रीतिसे बनाया हुआ मुरदारसंग मिलता है।

मृद्दारशृङ्गगुणाः ।

कृमिघ्नं रेचनं चैव व्रणशोधनरोपणम् ।
मृद्दारशृङ्गकं प्रोक्तं लेखनं केशरञ्जनम् ॥ १११ ॥
नागसत्त्वं लिङ्गदोषहरं श्लेष्मविकारनुत् ।
रसबन्धकरं सम्यक् श्मश्रुरञ्जनकृत् परम् ॥ ११२ ॥
(र. प्र. सु. अ. ६) ।

मुरदारसंग कृमिघ्न, रेचन, व्रणका शोधन-लेखन और रोपण करनेवाला, बालोंको काला रंग देनेवाला तथा लिङ्गदोष (उपदंश) और कफका नाश करनेवाला है।

मुरदारसंगका शोधन-मुरदारसंगका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण और सैन्धव या सामुद्र लवण एक काचपात्रमें डाल कर उसपर चार अंगुल ऊपर रहे इतना पानी डाल कर रख छोड़े। दिनमें एक वार लकड़ीसे खूब हिला दे। सप्ताहमें एक वार सैन्धव लवण और पानी बदल दे। इस प्रकार चालीस दिन लवणजलमें रखनेके बाद शुद्ध जलसे सात वार धो, सुखा कर शीशीमें भर लेवे। अथवा ऊनी कपड़ेमें बाँध कर दोलायन्त्रकी विधिसे वाकलाके दानोंके साथ जलमें वाकलाके दाने गलनेतक पकावे। इस प्रकार मुरदारसंगका चूर्ण श्वेतवर्ण न हो जाय तबतक करे। **यूनानी वैद्य** इस प्रकार शुद्ध किये हुए मुरदारसंगका विरेचन और पेटके कृमि मारनेके लिये प्रयोग करते हैं।

सफेदा ।

नाम—(हिं., म.) सफेदा; (गु.) सफेदो; (अ.) इस्फेदाज; (फा.) इस्फेदाब; (अं.) लेड् कार्बोनेट् (Lead Carbonate), व्हाइट् लेड् (White Lead) ।

वर्णन—यह सफेद रंगका, नरम और भारी चूर्णके रूपमें कृत्रिम विधिसे वनाया हुआ बाजारमें मिलता है।

गुण-कर्म—सफेदा उपशोषण, दाहप्रशमन, रक्तस्तम्भन और व्रणरोपण है। इसका बाहर लगानेके काममें प्रयोग होता है। यह खानेको नहीं दिया जाता।

सौवीराञ्जनम् ।

सौवीरं नीलवर्णं तु स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सौवीराञ्जन नीलवर्ण (काले रंगका), स्निग्ध और स्रोतोञ्जनसे अति गुरु होता है।

नाम—(सं.) सौवीराञ्जन, नीलाञ्जन; **(हिं.)** सुरमा, काला सुरमा; **(अ.)** इस्मद, इस्मिद, कोहल; **(फा.)** सुरमा, संगे सुरमा; **(अ.)** सल्फाइड्ज ऑफ् लेड्ज (Sulphide of Lead), गॅलेना (Galena)।

वर्णन—यह सीसेका प्रधान खनिज है जो सीसा और गन्धकके योगसे बनता है। इसका काठिन्य २॥ और विशिष्ट गुरुत्व ७.६ होता है।

सौवीराञ्जनगुणाः।

सौवीरं तु गुरु स्निग्धं नेत्र्यं दोषत्रयापहम् ॥ ११३ ॥
रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम्।

(र. चू. अ. १७)

सौवीराञ्जन गुरु, स्निग्ध, नेत्रके लिये हितकर, रसायन, सुवर्णको मारनेवाला (सुवर्णकी भस्म बनानेवाला) और अन्य लोह(धातु)को मृदु करनेवाला है।

---

१ **नीलाञ्जनका** उल्लेख **चरक, सुश्रुत, रसार्णव** आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें देखनेमें नहीं आता। इन ग्रन्थोंमें **सौवीराञ्जन** और **स्रोतोञ्जन** दोका ही उल्लेख मिलता है। **चरकने** (चि. अ. ७ में) किलासहर लेपमें 'गोपित्तमञ्जने द्वे' ऐसा दो अञ्जनोंका उल्लेख किया है, जिनमें एक **सौवीराञ्जन** और दूसरा स्रोतोञ्जन है। चरकने छर्दिचिकित्सामें अन्य औषधोंके साथ स्रोतोञ्जनको खानेको देनेके लिये लिखा है—"स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जाचूर्णानि लिह्यान्मधुनाऽभयां च ॥" (च. चि. अ. २०)। **धन्वन्तरीय निघण्टुमें** अञ्जनका **वर्णन** इस प्रकार लिखा है—"अञ्जनं मेचकं कृष्णं सौवीरं च सुवीरजम्। कापोतं यामुनेयं च स्रोतोजं सारितं तथा ॥" (ध. नि. चन्दनादि वर्ग)। इसमें सौवीराञ्जनका वर्ण काला (मेचक-कृष्ण) और स्रोतोञ्जनका वर्ण कापोत (कबूतरके जैसा) बताया गया है। सौवीराञ्जन(लेड्ज सल्फाइड्ज-गॅलेना)का वर्ण काला और स्रोतोञ्जन-(ॲन्टिमनी सल्फाइड्ज)का वर्ण कपोतसदृश (ग्रे Grey) होता है। रसार्णवमें स्रोतोञ्जनका लक्षण "वल्मीकशिखराकारं भिन्नं नीलोत्पलद्युति। घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं सुरवन्दिते ॥" (रसार्णव, पटल ७) इस प्रकार लिखा है। इसमें "घृष्टं तु गैरिकच्छायं-कसौटीपर घिसनेसे जिसका गेरूके जैसा रंग आवे" यह लक्षण लेड्ज सल्फाइड्ज और ॲन्टिमनी सल्फाइड्ज दोनोंमें नहीं मिलता। किन्तु हकीम लोग **सुर्मे इस्पहानी** नामक द्रव्यका अञ्जनके लिये प्रयोग करते हैं उसमें पाया जाता है। परन्तु इसका आजकल वैद्योंमें व्यवहार नहीं है। सुर्मे इस्पहानी लोहेका खनिज है। बाजारमें इस समय **काले सुरमेके** नामसे विशेषतः गॅलेना और कहीं-कहीं ॲन्टिमनी सल्फाइड्ज मिलता है। नेत्राञ्जनके लिये दोनोंका उपयोग किया जाता है। स्रोतोञ्जनके प्रायः लम्बे रेखामय गट्ठे होते हैं; क्वचित् दानेदार गट्ठे भी मिलते हैं। सौवीराञ्जनके गट्ठे दलयुक्त विदारणवाले, चमकीले और पहलदार होते हैं। सुर्मे इस्पहानीके टुकड़े दानेदार और सख्त होते हैं तथा कसौटीपर घिसनेसे उसकी लाल रंगकी रेखा उठती है। मुझे मालूम होता है कि चरक—सुश्रुतके समयमें गॅलेना और ॲन्टिमनी सल्फाइड्ज दो ही प्रचलित थे। पीछे जब सुरमा इस्पहानी मालूम हुआ तबसे गॅलेनाको **नीलाञ्जन**, ॲन्टिमनी सल्फाइड्जको **सौवीराञ्जन** और सुरमे इस्पहानीको **स्रोतोञ्जन** मानने लगे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सौवीराञ्जनशोधनम् ।

सौवीरं चूर्णयित्वा तु जम्बीररसभावितम् ॥ ११४ ॥
दिनैकमातपे शुष्कं क्षालितं शुद्धिमृच्छति ।

सौवीराञ्जनके चूर्णको एक दिन जम्बीरी नीमूके रसमें मर्दन कर, जलसे धोकर सुखा लेनेसे वह शुद्ध होता है । सौवीराञ्जनका उपयोग नेत्रमें लगानेके लिये किया जाता है, खानेके लिये नहीं किया जाता । सिंदूर, मुरदासंग और सौवीराञ्जन ये तीनों नागके यौगिक होनेसे उनका नागके प्रकरणमें वर्णन किया गया है ।

यशदम् ।

यशदं रीतिहेतुश्च तथा खर्परसत्त्वकम् ॥ ११५ ॥

नाम—(सं.) यशद, रीतिहेतु, खर्परसत्त्व (रसकसत्त्व); (हिं.) जस्त, जस्ता; (बं.) दस्ता; (म.) जस्त; (गु.) जसद; (अ.) शबः, खारसीन; (फा.) जसद; (ले.) झिंकम् (Zincum); (अं.) झिंक् (Zinc)।

वर्णन—प्राचीन रसग्रन्थोंमें यशदका वर्णन रसकसत्त्व या खर्परसत्त्वके नामसे मिलता है । **यशद** नामसे इसका वर्णन भावप्रकाश और आयुर्वेद प्रकाशमें सर्व प्रथम मिलता है "जसदं र(व)ङ्गसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम्" (आ. प्र. अ. ११)। यशदका विशिष्ट गुरुत्व ७ है । ४१० शतांश तापमान पर इसका द्रव होता है ।

यशदगुणाः ।

यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ ११६ ॥

यशद कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, नेत्रके लिये परम हितकर तथा कफ, पित्त, प्रमेह, पाण्डुरोग और श्वासका नाश करनेवाला है ।

यशदशोधनम् ।

यशदं द्रावितं यत्नाद्गवां दुग्धे निषेचयेत् ।
त्रिसप्तवारं यत्नेन शुद्धिमायात्यनुत्तमाम् ॥ ११७ ॥

यशदको कड़ाहीमें गलाकर २१ वार गायके दूधमें बुझानेसे यशद शुद्ध होता है ।

यशदमारणम् ।

प्रतप्ते यशदे वह्नौ भङ्गापोस्तोद्भवं रजः ।
दत्त्वा प्रचालयेद्दर्व्या यावच्चूर्णत्वमाप्नुयात् ॥ ११८ ॥
वस्त्रपूतं तु तच्चूर्णं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृत्वा तु चक्रिकाः शुष्कास्ततो गजपुटे पचेत् ॥ ११९ ॥
एवं सप्तपुटैः सम्यग्यशदं मृतिमाप्नुयात् ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोहेकी कड़ाहीमें शुद्ध यशद डाल, जब यशद खूब गरम हो तब उसमें भाँग और अफीमके पोस्तका चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालता जावे और लोहेकी करछीसे हिलाता रहे। जब सब यशदका चूर्ण हो जाय तब उसको कड़ाहीके मध्यमें एकत्र कर, ऊपर शरावसे ढक कर नीचे सब चूर्ण अंगारवर्ण हो जाय इतना गरम करके स्वाङ्गशीतल होने दे। पीछे उसको कपड़ेसे छान, कुमारीस्वरसमें एक दिन मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख कर गजपुटमें पकावे। ऐसे सातपुट देनेसे यशदकी भस्म बनेगी। **मात्रा**-१-२ रत्ती। **अनुपान**-मधु, मक्खन, दूधकी मलाई या रोगानुरूप।

पुष्पाञ्जनम्।

पुष्पाञ्जननामानि।

पुष्पाञ्जनं च रीतिजं रीतिपुष्पं तथैव च ॥ १२० ॥

नाम-(सं.) पुष्पाञ्जन, रीतिज, रीतिपुष्प; (हिं.) जस्तेका फूल; (गु.) जसदना फूल कांसांजन; (मा.) जसदकी मली; (फा.) सफेदए काश्गरी; (अं.) ऑक्साइड् ऑफ् झिंक् (Oxide of zinc)।

वर्णन—पुष्पाञ्जन क्वचित् खनिजरूपमें प्राप्त होता है। जयपुर (राजस्थान) में यह कृत्रिम रीतिसे बनाया जाता है। लोहेकी कड़ाहीमें जस्ता डाल कर नीचे तीव्र अग्नि देनेसे जस्तेकी खील (लावा) बनती रहती है, उसको **जस्तेके फूल** कहते हैं। यही **पुष्पाञ्जन** है। विदेशी दवा बेचनेवालोंके यहाँ यह **झिंक् ऑक्साइड्** के नामसे मिलता है। पुष्पाञ्जनका **चरक** चि. अ. २६, श्लो. २५२ में उल्लेख मिलता है-"मणयः **पौष्पमञ्जनम्**।"।

पुष्पाञ्जनगुणाः।

पुष्पाञ्जनं सितं स्निग्धं हिमं सर्वाक्षिरोगनुत्।
अतिदुर्धरहिक्काघ्नं विषज्वरक्षयापहम् ॥ १२१ ॥

पुष्पाञ्जन श्वेतवर्ण, स्निग्ध, शीतवीर्य तथा सर्वप्रकारके नेत्रके रोग, प्रबल हिक्का, विष, ज्वर और क्षयको दूर करता है।

रसकः-खर्परः।

रसकनामानि।

रसकः खर्परश्चापि रीतिकृत् ताम्ररञ्जकः।

नाम—(सं.) रसक, खर्पर, रीतिकृत्, ताम्ररञ्जक, खर्परतुत्थ, चोर[१]; (हिं.)

---

१ **रससार** पटल ७ में रसकको **चोर** नाम दिया है (देखें श्लो. १ और १०)। यशदका लोहरूपमें उल्लेख सबसे पहले आयुर्वेदप्रकाशमें मिलता है-"जसदं रङ्गसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम्।" (अ. ११)। **रसकामधेनु** (पृ. २६४) में यशदको खर्परका पर्याय ही लिखा है—"रसके जसदं चौरं शीशकाकारसंज्ञकम्। खर्परं स्यात् खर्परिका किटिभं हेमतारजम् ॥"।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खपरिया; (बं.) खापर; (म.) कलखापरी; (गु.) खापरियुं; (अं.) कॅलेमाईन् (Calamine)।

वर्णन—रसक यशदका खनिज-धातु है। इसका सत्त्वपातन करनेसे इससे सत्त्व-रूपमें यशद प्राप्त होता है। **रसेन्द्रचूडामणि** (अ. १०)में लिखा है कि-"वज्राभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत्।" । "तदा सीसोपमं सत्त्वं पतत्येव न संशयः।" (र. प्र. सु. अ. ५)। प्राचीन रसग्रन्थोंमें यशद-जस्तका **रसकसत्त्व**के नामसे वर्णन मिलता है, यशदका स्वतन्त्र लोहके रूपमें वर्णन नहीं मिलता है। **चरकमें रसक** या **खर्पर** शब्दका उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु कुष्ठचिकित्सितोक्त तिक्तालाबुकादि तैलमें **"द्वे तुत्थे"** इस प्रकारका उल्लेख मिलता है। उसकी **चक्रपाणिदत्त**ने "द्वे तुत्थे इति मयूरतुत्थं (नीलाथोथा), खर्परिकातुत्थं (खपरिया-रसक) च" ऐसी व्याख्या की है। **सुश्रुत** उत्तरतन्त्र अ. १८, श्लोक ९५ में **'तुत्थमुत्तमम्'** ऐसा उल्लेख है। इसकी व्याख्यामें **डल्हण**ने लिखा है कि—"तुत्थमुत्तमं मयूरग्रीवाख्यं; केचित् तुत्थं खर्परिकातुत्थम्, उत्तमं मयूरग्रीवाख्यतुत्थमिति व्याख्यानयन्ति॥"। रसपद्धतिमें "द्विस्तुत्थं तु मयूरखर्परभिदा"—**मयूरग्रीव** (नीलाथोथा) और **खर्पर** (खपरिया) भेदसे तुत्थ दो प्रकारका है (श्लो. ५२) ऐसा लिखा है। अर्थात् प्राचीन समयमें **रसक**को तुत्थका भेद माना जाता था। इस समय खपरियेके नामसे वैद्योंमें तीन द्रव्योंका व्यवहार होता है—(१) **संगबसरी**[1]—यह बसरा और ईरानसे आता है। इसके मटियाले रंगके, लम्बगोल और बीचमें पोले टुकड़े बाजारमें मिलते हैं। यूनानी वैद्य नेत्ररोगमें इसका प्रयोग करते हैं; (२) लाल रंगके, लम्बगोल और बीचमें पोले ठीकरीकेसे टुकड़े मिलते हैं; (३) दक्षिण भारतमें **पालतुतं** नामसे पीताभ श्वेत वर्णके पपड़ीसे टुकड़े मिलते हैं। परन्तु ये तीनों पदार्थ नकली-कृत्रिम हैं, यशदके खनिज नहीं हैं। अतः खर्परके अभावमें वसन्तमालती आदि योगोंमें जसदकी भस्म या शुद्ध यशदसे बनाये हुए पुष्पाञ्जनका प्रयोग करना अच्छा है।

रसकभेदाः।

मृत्तिका-गुड-पाषाणभेदतो रसकास्त्रिधा॥ १२२॥
पीतस्तु मृत्तिकाकारो मृत्तिकारसको वरः।
गुडाभो मध्यमो ज्ञेयः पाषाणाभः कनिष्ठकः॥ १२३॥
(रसार्णव पटल. ७)

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः॥ १२४॥
सत्त्वपाते वरः पूर्वो द्वितीयश्चौषधे हितः। (र. चू. अ. १०)

---

१ संगबसरीके विशेष वर्णनके लिये वैद्य दलजीतसिंहजी विरचित **यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान** देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जो रसक पीले रंगका और मिट्टीके जैसा होता है उसको **मृत्तिकारसक** कहते हैं, वह श्रेष्ठ है; जो गुड़के जैसे रंगका होता है उसको **गुडाभ रसक** कहते हैं, वह मध्यम है और जो पत्थरके जैसा होता है उसको **पाषाणाभ रसक**[१] कहते हैं, वह कनिष्ठ है **(रसार्णव)**। रसक **दर्दुर** और **कारवेल्लक** भेदसे दो प्रकारका होता है। जिसके दल अलग किये जा सकें वह **दर्दुर** है, यह सत्त्वपातनके लिये अच्छा है और जिसके दल अलग न हो सकें उसको **कारवेल्लक** कहते हैं, वह औषध बनानेके लिये अच्छा है।

रसकगुणाः।

रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः॥ १२५॥
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरञ्जनः।

(र. चू. अ. १०)।

खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥ १२६॥
लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तनुत्।
विषाश्मकुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम्॥ १२७॥

खर्पर कटु, कषाय, शीतवीर्य, लघु, क्षार, लेखन, भेदन, वमन करानेवाला, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, सर्व प्रकारके प्रमेह, नेत्ररोग, क्षय, विष, अश्मरी, कुष्ठ और कण्डूका नाश करनेवाला है।

रसकशोधनम्।

रसकः परिसंतप्तः सप्तवारं निमज्जितः।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते॥ १२८॥

खर्परको मूषामें खूब तपा, सात वार विजोरेके रसमें बुझा कर ३-४ बार जलसे धो लेनेसे उसकी शुद्धि होती है।

वक्तव्य—खर्पर यशदका खनिज-धातु होनेसे उसका यशदके प्रकरणमें वर्णन किया गया है।

अयः-लोहम्।

लोहनामानि।

लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णमयश्च कृष्णलोहकम्।

नाम—(सं.) लोह, शस्त्र, तीक्ष्ण, अयस्, कृष्णलोह (कृष्णायस्); (हिं.)

---

१ डॉ. **श्री वामन देसाईने** मृत्तिकाभरसको कॅलेमाइन् (Calamine) और झिंक् कार्बोनेट् (Zinc Carbonate); गुडाभ रसकको झिंकाईट्, (Zincite) और झिंक् ऑक्साइड् (Zinc oxide) तथा पाषाणाभरसकको झिंक् ब्लेन्ड (Zinc Blende,) और झिंक् सल्फाइड् (zinc sulphide) नाम दिया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोहा; (बं.) लोहा; (म.) लोखंड; (गु.) लोढुं; (अ.) हदीद; (फा.) आहन; (ले.) फेरम् (Ferrum); (अं.) आयर्न् (Iron)।

लोहभेदाः।

मुण्डं तीक्ष्णं तथा कान्तमिति लोहं त्रिधा स्मृतम् ॥ १२९ ॥
मुण्डात् कटाहपात्रादि जायते, तीक्ष्णलोहतः।
खड्गादिशस्त्रभेदाः स्युः, कान्तलोहं तु दुर्लभम् ॥ १३० ॥
मुण्डात्तीक्ष्णं ततः कान्तं ज्ञेयं तु गुणवत्तरम्।
औषधार्थे ततो योज्यं तीक्ष्णं वा कान्तमुत्तमम् ॥ १३१ ॥

मुण्ड (सामान्य लोह), तीक्ष्ण (खेड़ी-पोलाद) और कान्त (चुम्बक पाषाणसे निकाला हुआ लोहा) भेदसे लोहा तीन प्रकारका होता है। मुण्डलोहसे कड़ाही आदि पात्र तथा तीक्ष्ण लोहसे खड्ग (तलवार)-चाकू-कैंची आदि शस्त्र बनाये जाते हैं। कान्तलोह दुर्लभ है। मुण्डसे तीक्ष्ण और तीक्ष्णसे कान्त अधिक गुणवाला है। अतः औषधके लिये तीक्ष्ण या कान्तलोहका प्रयोग करना चाहिये।

वक्तव्य—कान्तलोह बाजारमें मिलता नहीं, अतः तीक्ष्ण लोह (पोलाद, अं. स्टील) की भस्म बनानेका वैद्योंमें प्रचार है। भस्म बनानेके लिये यदि पुरानी तलवार मिले तो उसका और वह न मिले तो सेफ्टी रेझरकी ब्लेड, घड़ीकी कमान (स्प्रिंग) या रेती (कानस) का उपयोग करना चाहिये। आजकल कारखानों (वर्कशॉपों) में पोलादका मशीनपर छीला हुआ चूरा मिलता है, उसको भी काममें ले सकते हैं।

लोहस्य विशेषशोधनम्।

तैलतक्रादिसंशुद्धं लोहं शोध्यं विशेषतः।
त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम् ॥ १३२ ॥
क्वाथ्यं पादावशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम्।
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ॥ १३३ ॥

लोहके कण्टकवेधी पत्र बना कर प्रथम तैल-तक्र आदिमें सामान्य शोधनविधिसे उसका शोधन करे। पीछे सोलह पल (६४ तोले) त्रिफलाके मोटे चूर्णको सोलह गुणे जलमें पका, चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर उसमें लोहेके पत्रोंको अग्निमें तपा-तपा कर सात बार बुझावे। इस क्रियासे लोहका विशेष शोधन होता है। इस प्रकार शुद्ध किये हुए लोहपत्रोंको मिट्टीके घड़ेमें डाल, उसमें वे सब भीग जायँ इतना गोमूत्र मिला, मिट्टीके सकोरेसे बंद करके धूपमें रख छोड़े। गोमूत्र सूखने पर और गोमूत्र मिलावे। इस प्रकार एक मास गोमूत्र, एक मास त्रिफलाका क्वाथ और एक मास कुमारी-स्वरसके साथ लोहपत्र रखनेसे चूर्ण जैसा हो जाता है। उसको इमाम-दस्तेमें कूट, कपड़ेसे छान कर भस्म बनानेके काममें लेवे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोहमारणम्।

गोमूत्रेण दिनं मर्द्य तीक्ष्णचूर्णं प्रयत्नतः।
विधाय चक्रिकाः शुष्कास्ततो गजपुटे पचेत् ॥ १३४ ॥
दद्यात्त्रीणि पुटान्येवं तथैव त्रिफलाशृतैः।
कुमारीस्वरसैस्तद्वद्वर्षाभूस्वरसेन च ॥ १३५ ॥
त्रयोदशे पुटे दत्त्वा दरदं द्वादशांशतः।
अर्कक्षीरेण संमर्द्य ह्यर्धभाख्ये पुटे पचेत् ॥ १३६ ॥
एवं पुटत्रयं दद्याल्लोहभस्म प्रजायते।

शुद्ध लोहके कपड़छान चूर्णको दिनभर गोमूत्रमें मर्दन कर, टिकियाँ वना, सुखा, शरावसंपुटमें रखकर गजपुटमें पकावे। इस प्रकार तीन बार गोमूत्रमें, तीन बार त्रिफलाके क्वाथमें, तीन बार ग्वारपाठे(कुमारी) के रसमें और तीन बार पुनर्नवाके स्वरसमें मर्दन करके गजपुट देवे। तेरहवे पुटमें वारहवां भाग शुद्ध हिङ्गुल मिला, अर्कक्षीरमें मर्दन करके आधा गजपुटका अग्नि देवे। इस प्रकार दो पुट और देवे। इस प्रकार पन्द्रह पुटमें उत्तम लोहभस्म तैयार होती है।

स्वयमग्निलोहभस्म।

शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः ॥ १३७ ॥
द्वयोः समं सारचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाम्बुना।
यामद्वयं, तस्य गोलं संवेष्ट्यैरण्डजैर्दलैः ॥ १३८ ॥
ततः सूत्रेण संवध्य स्थापयेत्ताम्रभाजने।
तत् पात्रं स्थापयेत्तीव्रे सूर्यतापे ह्यतन्द्रितः ॥ १३९ ॥
यामद्वयात् समुद्धृत्य दत्त्वाऽन्यत्ताम्रपात्रकम्।
संमुद्र्य वदनं तस्य मृदा संशोष्य तत् पुनः ॥ १४० ॥
त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तत उद्धृत्य मर्दयेत्।
रजस्तद्वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत् ॥ १४१ ॥

शुद्ध पारद एक भाग और शुद्ध गन्धक दो भाग ले, उसकी कज्जली वना, उसमें कज्जलीके समभाग शुद्ध लोहका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, कुमारीके रसमें छ घण्टा मर्दन कर, उसका गोला वना, गोलेके ऊपर एरण्डपत्र लगा, सूतसे गोलेको लपेट, ताम्रपात्रमें रख कर तीन घण्टा तेज धूपमें रखे। तीन घण्टेके बाद ताम्रपात्रके ऊपर उतना ही दूसरा ताम्रपात्र रख, दोनोंके सन्धिस्थानपर कपड़मिट्टी करे। कपड़मिट्टी सूखनेपर संपुटको धान्यसे भरी हुई बड़ी कोठीमें तीन दिन-रात रखे रहने दे। चौथे दिन संपुटसे गोलेको बाहर निकाल, एरण्डपत्र दूर कर, खरलमें २-३ दिन मर्दन करके सूक्ष्म रेशमी वस्त्रसे छान कर शीशीमें भर ले। यह भस्म वारितर होती है। इसको **स्वयमग्निलोहभस्म** कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लोहभस्मनोऽन्यः प्रकारः।

सुशुद्धे लोहचूर्णे तु पलपञ्चकसंमिते।
शाणमाणं रसविधुं कर्षैकं शुद्धगन्धकम् ॥ १४२ ॥
दत्त्वा कुमारीस्वरसैर्दिनमेकं विमर्दयेत्।
विधाय चक्रिकाः शुष्का दशप्रस्थवनोत्पलैः ॥ १४३ ॥
पुटेदेवं चतुर्वारं पुटा देयाः प्रयत्नतः।
दरदस्य च मल्लस्य हरितालस्य योगतः ॥ १४४ ॥
चतुर्वारं पुटान् दद्याद्रसतन्त्रविशारदः।
समभागेन्द्रगोपैस्तु मर्दयित्वा दिनावधि ॥ १४५ ॥
ततोऽग्नौ भर्जयेत् किञ्चिद्भस्म वारितरं भवेत्।
गुञ्जामात्रं तु मधुना भस्म दुग्धानुपानतः।
भक्षितं बृंहणं बल्यं परं वाजीकरं भवेत् ॥ १४६ ॥

बीस तोला शुद्ध लोहचूर्णमें एक तोला शुद्ध गन्धक तथा तीन मासा शुद्ध रसकपूर मिला, कुमारीस्वरसमें एक दिन मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख, सन्धिस्थानपर कपड़मिट्टी कर, दश प्रस्थ कंडों(उपलों)की आँचमें पकावे। इस प्रकार चार-चार पुट शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध संखिया और शुद्ध हरतालके योगसे देवे। इस प्रकार कुल सोलह पुट देनेके बाद उसमें समभाग बीरबहूटी मिला, दिनभर खरलमें मर्दन कर, कड़ाहीमें डाल, चूल्हेपर चढ़ा, बीरबहुटी सब जल जावे इतना मन्दाग्निपर पका, खरलमें पीस, कपड़छान करके शीशीमें भर लेवे। **मात्रा**—१ रत्ती मधुके साथ चाट कर ऊपरसे १॥ मासा सालम पंजेका चूर्ण मिलाकर गरम किया हुआ गायका दूध पीवे। यह भस्म बृंहण, बल्य और वाजीकर है।

अयस्कृतिः।

तीक्ष्णलोहपत्राणि तनूनि लवणवर्गप्रदिग्धानि गोमयाग्नितप्तानि त्रिफलाशालसारादिकषायेण निर्वापयेत् षोडशवारान्। ततः खदिराङ्गार-तप्तान्युपशान्ततापानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेद्घनतान्तवपरिस्रावितानि। ततो यथाबलं मात्रां मधुसर्पिर्भ्यां संसृज्योपयुञ्जीत। जीर्णे यथाव्याध्य-नम्लमलवणमाहारं कुर्वीत। एवं तुलामुपयुज्य कुष्ठमेहमेदःश्वयथुपाण्डु-रोगोन्मादापस्मारानपहत्य वर्षशतं जीवति। एवं सर्वलोहेष्वयस्कृतयो व्याख्याताः ॥ १४७ ॥ (सु. चि. अ. १०)

तीक्ष्ण लोहके पतले (कण्टकवेधी) पत्रों पर जलमें पीसे हुए पञ्चलवणोंका लेप कर, उनको उपलों(कंडों)की अग्निमें रक्तवर्ण हो जायँ इतना तपा-तपा कर सोलह

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बार त्रिफला और सालसारादि गणके क्राथमें बुझावे। पीछे खैरके कोयलोंकी आगमें तपा कर उसी प्रकार सोलह बार त्रिफला और सालसारादि गणके क्राथमें बुझावे। बाद पत्रोंको लोहेके इमाम-दस्तेमें कूट, गाढ़े कपड़ेसे छान कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। रोगी और रोगके बलके अनुरूप इसकी मात्रा ले, मधु और घृतमें मिला कर खावे। औषध जीर्ण होने पर अम्ल और लवण रसवाले पदार्थ रहित तत् तत् रोगमें जो हित हो वह आहार खावे। चार सौ तोला इसका उपयोग करनेसे पुरुष कुष्ठ, प्रमेह, मेदोवृद्धि, शोथ, पाण्डुरोग, उन्माद और अपस्मार इन रोगोंसे मुक्त होकर एक सौ बरसकी आयु भोगता है। इस योगको **अयस्कृति** कहते हैं। इस विधिके अनुसार सुवर्ण, रौप्य, ताम्र आदि अन्य धातुओंकी भी अयस्कृति बनाई जाती है।

मण्डूरम्।

मण्डूरनामानि।

लोहकिट्टं तु मण्डूरं लोहसिङ्घाणकं तथा।

नाम—(सं.) लोहकिट्ट (लोहमल), मण्डूर, लोहसिङ्घाणक; (हिं.) मंडूर, लोहकीट, सिंघार; (म., गु.) मंडूर, (अ.) खुब्सुल् हदीद।

वर्णन—प्राचीन समयमें जहाँ लोहेकी खाने थीं और लोहा गलाया जाता था, वहाँ मंडूर-लोहकिट्ट पाया जाता है। जो मंडूर पुराना, छिद्ररहित, भारी, स्निग्ध-चिकना, दृढ-शीघ्र न टुटनेवाला, कुछ रक्तवर्ण और बस्ती-आवादीसे दूर पड़ा हो वह अच्छा होता है। मण्डूरमें कभी कभी लोहके साथ थोड़ा ताम्रका अंश भी पाया जाता है।

मण्डूरमारणम्।

गोमूत्रैस्त्रिफला क्वाथ्या तत्क्वाथे सेचयेच्छनैः॥ १४८॥
लोहकिट्टं सुसंतप्तमेकविंशतिवारकम्।
कन्यारसेन तच्चूर्णं मर्दयित्वा पुटे पचेत्॥ १४९॥
एवं सप्तपुटैर्भस्म मण्डूरस्य प्रजायते।

त्रिफलाके मोटे चूर्णको अठगुने गोमूत्रमें पका, चतुर्थांश गोमूत्र शेष रहनेपर कपड़ेसे छान कर उसमें मंडूर अग्निमें अंगारवर्ण हो इतना तपा कर बुझावे। इस प्रकार इक्कीस (२१) बार बुझा, सूक्ष्म चूर्ण बना, कुमारीस्वरसमें एक दिन मर्दन करके गजपुटमें पकावे। ऐसे सात पुट देनेसे मंडूरकी उत्तम भस्म होती है।

---

१ सालसारादिगणके द्रव्य—साल (सखुआ), अजकर्ण ( ), खैर सफेद खैर, तेंदु, सुपारी, भोजपत्र, काकड़ा, तिनिश (छानन सन्दन), श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, शीशम, शिरीष, असन, धावा, अर्जुन (कौहा), करंज, करंजुआ, अश्वकर्ण, अगरु, और तगरकी लकड़ी (मलयागरु)। इन वृक्षोंका सार (हीर) लेना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मण्डूरभस्मगुणाः ।

मण्डूरं शिशिरं वृष्यं रक्तवृद्धिकरं परम् ॥ १५० ॥
पाण्डुश्वयथुप्लीहघ्नं बालानामतिशस्यते ।

मण्डूरभस्म शीतवीर्य, वृष्य, उत्तम रक्तवृद्धिकर तथा पाण्डुरोग, शोथ और प्लीहाकी वृद्धिको दूर करनेवाली है। बालकोंको लोहभस्मकी अपेक्षया मण्डूरभस्म विशेष अनुकूल होती है ।

विमला[1] ।

विमलाया लक्षणं भेदाश्च ।

तापीजं द्विरुदाहरन्ति विमलामाक्षीकभेदादिह
त्रेधाऽऽद्या तु सुवर्णकांस्यरजतच्छायानुकारादमूः ।
तिस्रोऽप्यस्रयुताश्चतुस्त्रिफलका वृत्ताः स्वनामश्रियः ॥ १५१॥
(रसपद्धतिः श्लो. ४८)

विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते ।
वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः ॥ १५२ ॥
(र. चू. अ. १४)

तापीज–ताप्य **विमल** और **माक्षीक** भेदसे दो प्रकारका होता है। उनमें विमल **हेम(स्वर्ण)विमल, तार(रौप्य)विमल** और **कांस्यविमल** भेदसे तीन प्रकारका होता है। ये अपने-अपने वर्ण-रंगसे पहचाने जाते हैं। अर्थात् स्वर्णविमल सोनेके रंगका, रौप्यविमल रूपे(चांदी)के रंगका और कांस्यविमल काँसेके रंगका होता है। विमल स्निग्ध (स्निग्धस्पर्श-चिकना), वर्तुल (गोलाई लिये), कोणसंयुक्त (कोने और धारदार-प्रायः षट्कोण या द्वादशकोण) तथा फलकयुक्त (पहलदार) होता है।

विमलगुणाः ।

मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः । (र. चू. अ. १०)
विमलं कटु तिक्तोष्णं त्वग्दोषव्रणनाशनम् ॥ १५३ ॥ (रा. नि.)
लीढो व्योषवरान्वितस्तु विमलो युक्तो घृतैः सेवितो
हन्याद्धातुगताञ्ज्वरान् श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः ।
मूलार्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयान् कामलां
सर्वान् पित्तमरुद्भवान् किमपरं योगैरशेषामयान् ॥ १५४ ॥
(र. चू. अ. १०)

---

१ विमलशब्दका पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक तीनोंमें प्रयोग होता है। विमलको अंग्रेजीमें आयर्न् पाइराइट् (Iron pyrite) कहते हैं। यह लोहे और गन्धकका यौगिक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विमल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, वाजीकर, रसायन तथा वात, पित्त, त्वग्दोष (कुष्ठ) और व्रणका नाश करनेवाला है। विमलभस्म त्रिकटु, त्रिफला और घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे धातुगत जीर्णज्वर, शोथ, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि, अर्श, ग्रहणी, दारुण शूल, राजयक्ष्मा, कामला तथा सर्व प्रकारके पित्त और वातके रोगोंको दूर करती है; इतना ही नहीं किन्तु अनुपानभेदसे सर्व रोगोंको दूर करती है।

विमलशोधनम्।

वासावराजलस्विन्नो विमलो विमलो भवेत्।
अथवा माक्षिकप्रोक्तविधिना शुद्ध्यति ध्रुवम्॥

विमलके चूर्णको वासा(अडूसे)के पत्रस्वरस और त्रिफलाके क्वाथके साथ दोलायन्त्रमें एक-एक प्रहर पका कर जलसे धो लेनेसे विमलकी शुद्धि होती है। अथवा माक्षिकके लिये जो शोधनविधि लिखी है उससे विमल शुद्ध होता है।

विमलमारणम्।

एवं शुद्धं तु विमलं दत्तं सुदृढखर्परे॥ १५५॥
एरण्डस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुङ्गरसेन वा।
परिप्लुतं दृढं पक्वं जायते धातुसन्निभम्॥ १५६॥

शुद्ध विमलचूर्णको एक दृढ मिट्टी या लोहेके तवे पर रख, उसमें एरण्ड तैल, गौका घी या बिजोरेका रस मिलाकर, अग्नि पर सब चूर्ण गेरू जैसे रक्तवर्णका हो जाय तबतक भर्जन करनेसे विमलकी भस्म होती है। **मात्रा**-१-२ रत्ती। **अनुपान**-मधु और गायका घी।

वक्तव्य-विमल लोहेका खनिज-धातु होनेसे लोहेके प्रकरणमें विमलका वर्णन किया गया है।

काशीशम्।

काशीशनामानि।

अयोगन्धाम्लसंभूतं काशीशं खेचरं खगम्।

नाम—(सं.) काशीश (कासीस), खेचर, खग; (हिं.) कसीस, हीराकसीस; (बं.) हिराकस; (म.) हिराकस; (गु.) हीराकसी (-शी); (अ) जाजअख्जर; (फा.) जाजसब्ज; (अं.) सल्फेट् ऑफ् आयर्न् (Sulphate of Iron)।

वर्णन—कासीस प्राकृत रूपमें मिलता है और भारतवर्षमें यह प्राचीन कालमें कृत्रिम रूपसे बनाया भी जाता था। आजकल यह बड़े कारखानोंमें लोहा और गन्धकाम्ल (सल्फ्युरिक एसिड) के योगसे बनाया जाता है और बाजारमें यही मिलता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। रसग्रन्थोंमें इसके **वालुकाकासीस** और **पुष्पकासीस** ये दो भेद लिखे हैं। **सुश्रुत** (सू. अ. ३८) में कासीसद्वयका उल्लेख मिलता है–"ऊषकसैन्धवशिलाजतु-**कासीसद्वय**तुत्थकं चेति"। संभव है कि प्राकृत रूपमें मिले हुए धूलीसदृश अशुद्ध कासीसको **वालुकाकाशीश** और कृत्रिमरूपसे बनाये हुए शुद्ध कासीसको अथवा खुली हवामें पड़े रहनेसे श्वेत चूर्णके रूपमें परिणत हुए कासीसको **पुष्पकाशीश** नाम दिया हो। विलायती दवा बेचनेवालोंके यहां **'सल्फेट् ऑफ् आयर्न्'** के नामसे शुद्ध कासीस मिलता है। उसका औषधके लिये प्रयोग करना चाहिये।

काशीशगुणाः।

काशीशमम्लं तुवरमुष्णं च कचरञ्जनम्॥ १५७॥
बल्यं नेत्र्यं विषश्वित्रपाण्डुप्लीहविनाशनम्।

कासीस अम्ल, कषाय, उष्णवीर्य, बलकारक, बालोंको काला करनेवाला, नेत्रके लिये हितकर तथा विष, श्वित्र, पाण्डुरोग और प्लीहाकी वृद्धिको दूर करनेवाला है। कासीस रजःप्रवर्तक–आर्तवजनन है।

काशीशशोधनम्।

काशीशं भृङ्गनीरेण त्रिवारं भावितं शुचि॥ १५८॥

कासीसको भँगरेके स्वरसकी तीन भावना देनेसे वह शुद्ध होता है। खानेके लिये शुद्ध काशीशका उपयोग करना चाहिये। बाह्य प्रयोगके लिये शोधनकी आवश्यकता नहीं है।

काशीशमारणम्।

काशीशं निम्बुनीरेण मर्दयित्वा तु चक्रिकाः।
कार्याः शुष्काः संपुटस्था दशप्रस्थवनोपलैः॥ १५९॥
पुनः पुनः पुटो देयो यावद्भस्म निरम्लकम्।
तथा गैरिकवर्णं च काशीशस्य प्रजायते॥ १६०॥

शुद्ध काशीशको नीमूके रसमें मर्दन कर, उसकी टिकियाँ बना, सुखा, दो मिट्टीके तवोंके बीचमें रख कर दश प्रस्थ कंडोंकी अग्निमें जबतक भस्म अम्लतारहित न हो तबतक पुट देवे। काशीश भस्म स्वर्णगैरिकके समान रक्तवर्णकी होती है। **मात्रा** १-२ रत्ती। **अनुपान**–त्रिफलाचूर्ण और मधु।

काशीशद्रवः।

सार्धद्वितोलकसिते सलिले तु परिस्रुते।
पञ्चगुञ्जोन्मितं शुद्धं काशीशं निक्षिपेद्बुधः॥ १६१॥

---

१ **रसतरङ्गिणी** (अ. २१) में कुछ पीले और श्वेतवर्ण कासीसको **चूर्णकासीस** और स्वच्छ हरे रंगके कासीसको **पुष्पकासीस** नाम दिया है—"चूर्णकासीसकं श्वेतमीषत्पीतं च कीर्तितम्। पुष्पकासीसकं स्वच्छहरिद्वर्णं प्रकीर्तितम्॥" (र. त. अ. २१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विद्रुते जायते शीघ्रं कासीसद्रव उत्तमः।
कासीसद्रवसंसिक्तवसनाच्छादितो भृशम् ॥ १६२ ॥
विसर्पशोथः प्रशमं याति नास्तीह संशयः।
कासीसस्य द्रवो बस्तियोगेन विनियोजितः ॥ १६३ ॥
विनिहन्ति गुदभ्रंशमर्शांसि च विशेषतः।
(र. त. अ. २१)

२॥ तोले परिस्रुत जलमें पाँच रत्ती शुद्ध कासीस मिलानेसे **कासीसद्रव** तैयार होता है। कासीसद्रवमें कपड़ा भिगोकर विसर्पशोथ पर रखनेसे वह अच्छा होता है। पाँच तोला कासीसद्रवको छोटी पिचकारी(Glycerine Syringe)से गुदामें चढ़ानेसे गुदभ्रंश और अर्शमें लाभ होता है।

वक्तव्य-कासीस लोहेसे वनता है, इसलिये लोहेके प्रकरणमें कासीसका वर्णन किया है।

गैरिकम्।

गैरिकनामानि।

गैरिकं रक्तधातुश्च गिरिजं धातुसंज्ञकम् ॥ १६४ ॥

नाम—(सं.) गैरिक, रक्तधातु, गिरिज, धातु; (हिं.) गेरू; (बं.) गिरिमाटी; (म.) गेरू, सोनकाव; (गु.) गेरू, सोनागेरु; (अ.) मग्रः, मग्रत, तीने अहमर; (फा.) गिले सुर्ख; (अं.) ऑक्रे (Ochre)।

गैरिकभेदाः।

पाषाणगैरिकं त्वेकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम्।
पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम् ॥ १६५ ॥
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम्।
(र. चू. अ. ११)

गेरू दो प्रकारका होता है- (१) **पाषाणगैरिक** और (२) **स्वर्णगैरिक**। पाषाणगैरिक स्वर्णगैरिकसे कठिन और ताँबे जैसे फीके लाल रंगका होता है तथा स्वर्णगैरिक स्निग्ध, मसृण (चिकना-मुलायम) और अति (गहरे) लाल रंगका होता है। गेरू लोहा और ऑक्सिजनका यौगिक है।

गैरिकगुणाः।

गैरिकं मधुरं शीतं कषायं व्रणरोपणम् ॥ १६६ ॥
विस्फोटार्शोऽग्निदाहघ्नं कण्डूवीसर्पनाशनम्।
(रा. नि.)

स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत् ॥ १६७ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिक्कावमिविषघ्नं च दाहघ्नं स्वर्णगैरिकम् ।
पाषाणगैरिकं चान्यत् पूर्वस्मादल्पकं गुणैः ॥ १६८ ॥
(र. चू. अ. ११)

स्वर्णगैरिक मधुर, कषाय, स्निग्ध, शीतवीर्य तथा रक्तपित्त, हिक्का, वमन, विष, दाह, विस्फोट, अर्श, अग्निदग्ध, कण्डू और विसर्पका नाश करनेवाला है। पाषाणगैरिक इससे न्यून गुणवाला है।

गैरिकशुद्धिः ।

गैरिकं हि गवां दुग्धैर्भावितं शुद्धिमृच्छति । (र. चू. अ. ११)

गेरूको गायके दूधकी भावना देनेसे वह शुद्ध होता है । शुद्ध गेरूका औषधार्थ प्रयोग होता है। इसकी भस्म नहीं बनाई जाती।

वक्तव्य–गैरिक लोहेका खनिज होनेसे लोहके प्रकरणमें गैरिकका वर्णन किया गया है।

गिले अरमनी ।

नाम—(फा., हिं.) गिले अरमनी; (अ.) तीने अरमनी।

वर्णन–यह एक प्रकारकी मिट्टी है जो ईरान तथा आर्मीनिआसे आती है और रंगमें फीके लाल रंगकी, किंचित् सुगन्धित, स्वादमें फीकी और जीभ पर चिपकनेवाली होती है। हकीम लोग इसका औषधके लिये प्रयोग करते हैं।

गुण-कर्म--गिले अरमनी पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें रूक्ष, संग्राही, रक्तस्तम्भन, हृदयको बल देनेवाली, व्रणशोधन-रोपण और दस्तोंको बंद करनेवाली है। फुप्फुस, आमाशय और अन्त्रके व्रणोंको नष्ट करनेके लिये और शरीरके किसी भी अन्तरवयवसे आनेवाले रक्तको बंद करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। **मात्रा**–१ से ३ माशा।

गिले मख्तूम ।

नाम— (फा.) गिले मख्तूम; (अ.) तीने मख्तूम।

वर्णन–यह एक हलके गुलाबी रंगकी चिकनी मिट्टी है, जिसकी टिकियाँ बनी हुई यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँ मिलती हैं। यह लोह, ऑक्सिजन और केल्सियमूका यौगिक है।

गुण-कर्म–दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष, हृदयको बल देनेवाली, रक्तस्तम्भन, संग्राही, शोथविलयन और अगद-विषनाशक है। उरःक्षत, आमाशय तथा अन्त्रके व्रण और पित्त तथा रक्तज अतिसारमें यह खिलाई जाती है। सद्योव्रण पर छिड़कनेसे रक्तस्राव बंद होता है और व्रण शीघ्र भर आता है। सविष प्राणियोंके दंशस्थानपर इसका लेप करते हैं।

वक्तव्य—गिले अरमनी और गिले मख्तूम ये दोनों गैरिकके भेद होनेसे गैरिकके साथ इनका वर्णन किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अभ्रकम्।

अभ्रकनामानि।

नाम—(सं.) अभ्रक, गगन, व्योम; (हिं.) अभ्रक, अबरक, भोडल; (बं., म., गु.) अभ्रक; (अ.) तलक; (अं.) माईका (Mica)।

अभ्रकवर्णनम्।

पिनाकनागमण्डूकवज्रमित्यभ्रकं मतम् ॥ १६९ ॥
पिनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम्।
नागाभ्रं नागवत् कुर्याद् ध्वनिं पावकसंस्थितम् ॥ १७० ॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मण्डूकं ध्मातं पतति चाभ्रकम्।
वज्राभ्रं वह्निसन्तप्तं विमुक्ताशेषवैकृतम् ॥ १७१ ॥
श्वेतं रक्तं च पीतं च कृष्णमेवं चतुर्विधम्।
चतुर्विधं वरं व्योम यद्यप्युक्तं रसायने ॥ १७२ ॥
तथाऽपि कृष्णवर्णाभ्रं सर्वेभ्यो हि गुणाधिकम्।
स्निग्धं पृथुदलं वह्निसहं स्याद्भारतोऽधिकम् ॥ १७३ ॥
सुखनिर्मोच्यपत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम्।
(र. चू. अ. १०)।

पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्र—इन भेदोंसे अभ्रक चार प्रकारका होता है। जिस अभ्रकको अग्निमें तपाने पर उसके दल-पत्र अपने आप अलग होने लग जायँ उसको **पिनाक,** जो नाग-सर्पके सदृश ध्वनि-आवाज करे वह **नाग,** जो मण्डूक-मेंडक जैसे उछल कर नीचे गिरने लगे उसको **मण्डूक** और जो पूर्वोक्त सब विकृतियोंसे रहित हो, तथा जिसका रंग बदले नहीं उसको **वज्राभ्रक** कहते हैं। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इन वर्ण-रंगके भेदसे अभ्रक चार प्रकारका होता है। यद्यपि ये चारों प्रकारके अभ्रक रस-रसायन योगोंके बनानेमें अच्छे-उपयुक्त हैं, तथापि कृष्ण वर्णका वज्राभ्रक सबसे उत्तम है। जो अभ्रक स्निग्ध-चिकना, बड़े-चौड़े दलवाला, अधिक वजनदार-भारी हो तथा जिसके पत्र सुगमतासे अलग किये जा सकें वह अभ्रक उत्तम है।

अभ्रकशोधनम्।

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम् ॥ १७४ ॥
निर्दोषं जायते नूनं निक्षिप्तं वाऽपि गोजले।
त्रिफलाक्वथिते वाऽपि गवां दुग्धे विशेषतः ॥ १७५ ॥
(र. चू. अ. १०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मार्कवस्य रसेनापि दोषशून्यं प्रजायते ।

अभ्रकको अग्निमें तपा-तपा कर सात बार काँजीमें, गोमूत्रमें, त्रिफलाके क्वाथमें अथवा भँगरेके स्वरसमें बुझानेसे अभ्रक शुद्ध होता है ।

अभ्रकमारणम् ।

सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा पलाण्डुरसमर्दितम् ॥ १७६ ॥
चक्राकारं कृतं शुष्कं पचेदर्धगजाह्वये ।
एवं वासारसेनापि निर्गुण्डीस्वरसेन च ॥ १७७ ॥
आर्द्रकस्वरसेनापि गुडूचीस्वरसेन च ।
अर्कक्षीरेण स्नुह्याश्च कुमारीस्वरसेन च ॥ १७८ ॥
मर्दयित्वा पुटा देया यावन्निश्चन्द्रिकं भवेत् ।

शुद्ध अभ्रकका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण बना, उसको प्याज, अडूसा, संभालू, अदरक, गिलोय और ग्वारपाठा–इनके स्वरस तथा आक और थूहरके क्षीरमें मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, दो मिट्टीके तवोंके बीचमें रख कर आधे गजपुटका अग्नि देवे। प्रत्येकके सात-सात पुट देने चाहिये या भस्म चन्द्रिकारहित न हो तबतक पुट देते रहना चाहिये। भस्म निश्चन्द्र बननेका आधार अग्निपुट और मर्दन दोनों पर है। वनस्पतिका स्वरस या क्षीर देकर ८-१० घंटा अच्छा मर्दन-घुटाई होना चाहिये।

वक्तव्य–ऊपर लिखी हुई वनस्पतियोंके अतिरिक्त उतरण, कुकरोंदा, सहिंजनाकी छाल, पुनर्नवा, ताजी वटजटा, तुलसी-इनके स्वरसके योगसे भी उत्तम अभ्रक भस्म बनती है।

अभ्रकभस्मगुणाः ।

मृतमभ्रं हरेत् कासं श्वासं पाण्डुं क्षयं तथा ॥ १७९ ॥
जीर्णज्वरं प्रमेहांश्च शूलं च परिणामजम् ।
अम्लपित्तं च ग्रहणीं प्रदरं श्वेतसंज्ञकम् ॥ १८० ॥
अपचीं शोथमर्शांसि शीतपित्तं तथा भ्रमम् ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगांस्तु नाशयेत् ॥ १८१ ॥
बल्यं मेध्यं तथा वृष्यं रसायनमनुत्तमम् ।

अभ्रकभस्म बलकारक, बुद्धिवर्धक, वाजीकर, उत्तम रसायन तथा कास, श्वास, पाण्डुरोग (रक्ताल्पता), क्षय, जीर्णज्वर, प्रमेह, परिणामशूल, अम्लपित्त, ग्रहणीरोग, श्वेतप्रदर, अपची, शोथ, अर्श, शीतपित्त तथा भ्रम (चक्कर आना)–इन रोगोंको और अनुपानविशेषसे सर्व रोगोंको नष्ट करनेवाली है।

वक्तव्य–अभ्रकसे सत्त्वरूपमें उत्तम लोह-अयस् प्राप्त होता है, इसलिये लोहेके प्रकरणमें अभ्रकका वर्णन किया गया है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अयस्कान्तः ।

अयस्कान्तनामानि ।

नाम—(सं.) अयस्कान्त, कान्तपाषाण, चुम्बकपाषाण, चुम्बक, लोह-चुम्बक; (हिं.) चुंबक, लोहचुंबक, चुंबक पत्थर; (अ.) मि(म)कनातीस; (अं.) मॅग्नेटाइट् (Magnetite), लोडस्टोन् (Loadstone); मेग्नेटिक आयर्न ओअर (Magnetic Iron Ore)।

वर्णन—यह चुम्बकधर्मयुक्त लोहेका खनिज है। इसमें लोहेके तीन परमाणुओंके साथ ऑक्सिजनके चार परमाणु संयुक्त रहते हैं। चुम्बक पत्थरसे जो लोहा निकाला जाता है उसमें चुंबक गुण नहीं होता। चुंबक पत्थरसे निकाले हुए लोहेको रसशास्त्रमें लोहेकी सब जातियोंमें श्रेष्ठ माना गया है। चुंबक पाषाणके भेद, चुम्बकत्व क्या है? इत्यादि विषयोंका विशेष विवरण आयुर्वेदाचार्य **श्री. दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी** विरचित रसरत्नसमुच्चयकी व्याख्यामें पृ. १०९-११२ पर देखें।

कान्तपाषाणशोधनम् ।

कान्तपाषाणजं चूर्णं निम्बुकद्रवभावितम् ॥ १८२ ॥
क्षालितं बहुशो वारा शुद्धिमायाति निश्चितम् ।

कान्तपाषाणके चूर्णको नीमूके रसकी सात भावना दे, नीमूकी अम्लता नष्ट हो जाय वहाँतक जलसे धो कर सुखा लेनेसे कान्तपाषाणकी शुद्धि होती है।

कान्तपाषाणमारणम् ।

विशुद्धं कान्तपाषाणं गोमूत्रेण विमर्दितम् ॥ १८३ ॥
वराजलेन कन्यायाः स्वरसेन तथैव च ।
अर्धेभाख्ये पुटे पक्वं त्रिवारं मृतिमृच्छति ॥ १८४ ॥

शुद्ध किये हुए कान्तपाषाणको गोमूत्र, त्रिफलाका क्वाथ और ग्वारपाठाका स्वरस इन प्रत्येकमें मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा कर अर्धगजपुट देनेसे उसकी भस्म बनती है। गोमूत्र, त्रिफलाक्वाथ और कुमारीस्वरस प्रत्येकके तीन-तीन पुट देने चाहिये। **मात्रा**-१ से २ रत्ती। **अनुपान**-मधु या रोगानुरूप।

अयस्कान्तभस्मगुणाः ।

अयस्कान्तभवं भस्म शिशिरं बृंहणं तथा ।
रक्तसंजननं बल्यं मेध्यं वृष्यं रसायनम् ॥ १८५ ॥
कासं श्वासं क्षयं पाण्डुं ज्वरं हृद्वेपनं तथा ।
मूर्च्छां मोहं रजोदोषं रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ १८६ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कान्तपाषाणकी भस्म शीतवीर्य, बृंहण, रक्तसंजनन, वल्य, बुद्धिवर्धक, वाजीकर, रसायन तथा कास, श्वास, क्षय, पाण्डुरोग, जीर्णज्वर, हृदयकी धड़कन, मूर्च्छा, मोह, रजोदोष और रक्तपित्तका नाश करनेवाली है ।

वक्तव्य—चुम्बकपाषाण लोहेका खनिज-धातु होनेसे उसका लोहेके प्रकरणमें वर्णन किया गया है ।

मल्लविज्ञानीयाध्यायश्चतुर्थः ।

गौरीपाषाणः ।

गौरीपाषाणनामानि ।

नाम—(सं.) गौरीपाषाण, फेनाश्म, मल्ल; (हिं.) संखिया; (बं.) शङ्ख-विष, शँकोविष; (म.) सोमल, सोमलखार; (गु.) सोमल, शंखियो; (अ.) सम्मुलफ़ार; (फा.) मर्गमूश; (अं.) आर्सेनिक (Arsenic) ।

वर्णन—संखिया स्वयंभू विरल मिलता है । बाजारमें जो सफेद संखिया मिलता है वह कृत्रिम होता है । प्रारम्भमें यह अर्धपारदर्शक काचसदृश होता है; पीछे धीरे-धीरे शंखसदृश श्वेत वर्णका और अपारदर्शक हो जाता है । बाजारमें सफेद और हलका पीला ऐसा दो प्रकारका संखिया मिलता है । **सुश्रुत** (क. स्था. अ. १) में "फेनाश्म हरितालं च द्वे धातुविषे" ऐसा उल्लेख मिलता है। वहाँ **फेनाश्म** (फेनके सदृश श्वेत वर्णका पत्थर) शब्दसे हरितालके साहचर्यसे सुश्रुतको संखिया अभिप्रेत हो ऐसा मालूम होता है ।

गौरीपाषाणशुद्धिः ।

गवां दुग्धेऽथवा त्वाजे कारवेल्लीरसेऽथवा ।
द्वियामं स्वेदितः शुद्धो गौरीपाषाणको भवेत् ॥ १ ॥

गायके दूधमें, बकरीके दूधमें अथवा करेलेके स्वरसमें दोलायन्त्रमें दो प्रहर स्वेदन करनेसे संखिया शुद्ध होता है ।

गौरीपाषाणगुणाः ।

गौरीपाषाणकः शुद्धो मात्रया परिशीलितः ।
कफवातामयहरो बल्यो वृष्यो रसायनः ॥ २ ॥
श्वासं शीतज्वरं पाण्डुं प्लीहवृद्धिं फिरङ्गकम् ।
श्लीपदं सन्धिवातं च तथा कुष्ठानि नाशयेत् ॥ ३ ॥
अम्लं च कटुकं तीक्ष्णं वर्जयेन्मल्लसेवकः ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शुद्ध संखिया योग्य मात्रामें सेवन करनेसे बलकारक, वाजीकर, रसायन तथा श्वास, शीतज्वर, पाण्डुरोग, प्लीहाकी वृद्धि, फिरङ्गरोग, श्लीपद, सन्धिवात और कुष्ठ–इन रोगोंका नाश करनेवाला है। **मात्रा**—शुद्ध संखियेकी एक रत्तीके $\frac{१}{१००}$ भागसे $\frac{१}{५०}$ भाग तक। संखियेकी एक रत्ती मात्रा मारक विष है।

मल्लवटी।

शुद्ध संखिया १ भाग, रससिन्दूर १ भाग और गिलोयका सत्त्व १०० भाग तीनोंको अर्क गुलाबमें पीस, १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना कर छायामें सुखा लेवे। इसमेंसे १–२ गोली सवेर-शाम योग्य अनुपानसे देवे। संखियेका सेवन करते समय अम्ल और कटु रसवाले तथा तीक्ष्ण द्रव्योंका सेवन करना वर्ज्य है। गेहूं, घृत, दूध और चावल पथ्य हैं।

फेनाश्मद्रव।

एक भाग शुद्ध संखिया और एक भाग यवक्षारको एक सौ भाग जलके साथ काच-पात्र (आतिशी शीशी) में सब संखिया जलमें घुल जाय इतना पका, कपड़ेसे छान, शीशीमें भर कर उसमें पाँच भाग विशुद्ध मद्य मिलावे। **मात्रा**—१–५ बिन्दु २ तोला जलमें मिलाकर भोजनके बाद देवे।

इस प्रकार संखियेकी गोलियाँ या द्रव बना कर प्रयोग करनेसे नियत मात्रामें संखियेका प्रयोग किया जा सकता है।

हरितालम्।

हरितालनामानि।

नाम—(सं.) हरिताल, ताल, आल; (हिं.) हरताल; (बं.) हरिताल; (म.) हरताळ; (गु.) हरताल (ळ.); (अ.) जर्नीख अस्फर; (फा.) जर्नीखे जर्द; (अं.) यलो आर्सेनिक (Yellow Arsenic), ओर्पिमेन्ट (Orpiment)।

वर्णन–हरताल संखिया और गंधकका यौगिक है। यह स्वयंभू-खनिज मिलती है और कृत्रिम बनाई भी जाती है। हरतालके दो भेद होते हैं–(१) **पत्रतालक** और (२) **पिण्डतालक**। जो हरताल सोनेके जैसी पीले रंगकी, चमकदार तथा भारी हो और अभ्रककी तरह जिसके पत्र अलग किये जा सकें उसको **पत्रतालक (पत्री हरताल, हरताल तबकी** या **हरताल वर्की)** कहते हैं। इसमें सत्त्व अधिक होता है। औषधके लिये इसीका प्रयोग करना चाहिये। **पिण्डतालक**—छोटे-मोटे पिण्डों–गट्ठोंके रूपमें पाई जाती है। इसमें सत्त्व कम होता है। इसका औषधके लिये उपयोग नहीं करना चाहिये—"हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञकम्। स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं तनुपत्रं च भासुरम्। तत् पत्रतालकं प्रोक्तं बहुसत्त्वं रसायनम्॥ निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु। स्त्रीपुष्पहरणं तत्तु गुणाल्पं पिण्डतालकम्॥" (र. चू. अ. ११)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हरितालशोधनम् ।

तालकं कणशः कृत्वा बद्ध्वा पोट्टलिकां ततः ॥ ४ ॥
दोलायन्त्रेण यामैकं सचूर्णे सलिले पचेत् ॥
यामैकं दोलया तद्वत् कूष्माण्डस्वरसे पुनः ॥ ५ ॥
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रैफले जले ।
दोलायन्त्रे चतुर्यामं पक्वं शुध्यति तालकम् ॥ ६ ॥

हरतालके छोटे–छोटे टुकड़े कर, उसकी कपड़ेमें पोटली बना कर दोलायन्त्रमें एक-एक प्रहर चूना मिलाये हुए जल, पेठे(कुमड़ा)के स्वरस, तिलतैल और त्रिफलाके क्वाथमें क्रमशः पकावे । इस प्रकार चार द्रव पदार्थोंमें एक-एक प्रहर पकानेसे हरताल शुद्ध होती है । शुद्ध हरतालको गरम जलसे खूब धो, धूपमें सुखा, सूक्ष्म चूर्ण करके योगोंमें व्यवहार करे ।

तालकसत्त्वपातनम् ।

तालकं कुलत्थक्वाथटङ्कणमहिषीघृतमधुयुक्तं हण्डिकायां क्षिप्त्वोपरि मल्लं सच्छिद्रं दत्त्वा, सन्धिलेपं कृत्वा, क्रमेण वह्निं यामचतुष्टयं दद्याद्या-वन्नीलपीतो धूमो निर्गच्छति; ततः पाण्डुरे धूमे दृष्टे सत्येकप्रहरमात्रं मल्लं गोमयेनाच्छाद्य तीव्रवह्निं दद्यात्, यामान्ते पाण्डुरे धूमेऽदृष्टे सत्यग्निं पूर्णं कुर्यात्; पश्चाच्छीतां स्थालीमुत्तार्योर्ध्वमल्ललग्नं सत्त्वं गृह्णीयात् (रसपद्धतिव्याख्यायाम्)। ॥ ७ ॥

शुद्ध हरतालको कुलथीके क्वाथ, सुहागा, भैंसके घी और मधुके साथ मर्दन कर, सुखा, मिट्टीकी हाँडीके मध्यमें रख, ऊपर मध्यमें छिद्र किया हुआ मिट्टीका तवा रख, दोनोंकी सन्धिपर सात कपड़मिट्टी लगा, सुखा, चूल्हीपर चढ़ा, नीचे जबतक तवेके मध्यके छिद्रसे नीला-पीला धुआँ निकलता रहे तबतक (लगभग एक प्रहर) क्रमवृद्ध अग्नि देवे । जब श्वेत वर्णका धुआँ निकलने लगे तब छिद्रको गोबरसे ढक कर तीव्र अग्नि दे । एक प्रहरके बाद खोल कर देखे । यदि सफेद धुआँ आना बन्द हुआ हो तो नीचेसे अग्नि हटा ले । यन्त्र स्वांगशीतल होने पर सन्धिको खोल कर तवेमें लगे हुए सत्त्वको खुरच कर निकाल ले । इस विधिमें हरतालके अन्दरका गंधक पीले धुएँके रूपमें उड़ जाता है और सत्त्वके रूपमें विशुद्ध संखिया प्राप्त होता है ।

तालसिन्दूरम् ।

रसभागा रसतः पुनरेकैकस्तालमल्लगन्धकतः ।
कूप्यां द्व्यहं विपक्वः पवनकफौ हन्ति तालसिन्दूरः ॥ ८ ॥
(सि. भे. म. मा, ५ गु.)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शुद्ध पारद छः भाग, शुद्ध हरताल एक भाग और शुद्ध गन्धक एक भाग ले, तीनोंकी कज्जली बनाकर सात कपड़मिट्टी की हुई शीशीमें भरकर रससिन्दूर बनानेकी विधिके अनुसार वालुकायन्त्रमें दो दिन पकानेसे **तालसिन्दूर** तैयार होता है। **मात्रा** ।॥। से १ रत्ती। **अनुपान**—मधु और घृत। तालसिन्दूर सब प्रकारके वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है।

रसमाणिक्यम्।

माषद्वयोन्मितं तालं न्यसेन्मध्येऽभ्रपत्रयोः।
अङ्गाराग्नौ निधायाथ वङ्कनालेन धुक्षयेत्॥ ९॥
माणिक्याभं भवेद्यावत् पचेत्तावत् प्रयत्नतः।
अङ्गारानपसार्याथ रसमाणिक्यमुद्धरेत्॥ १०॥
(र. त. अ. १३)

कासं श्वासं ज्वरं जीर्णं फिरङ्गमतिदारुणम्।
वातरक्तं च कुष्ठानि तथा नाडीव्रणं हरेत्॥ ११॥

दो-तीन मासे शुद्ध हरतालके छोटे-छोटे टुकड़े कर, उनको पतले सफेद अभ्रकके पत्र पर बिछा, ऊपर दूसरा अभ्रकका टुकड़ा सावधानीसे रख कर निर्धूम कोयलोंकी आँच पर रख, वङ्कनाल[1]से फूँक कर अग्नि तेज करे। जब अभ्रकके बीचका ताल पिघल कर माणिक्यके समान रक्तवर्ण हो जाय तब चिमटेसे पकड़ कर उठा लेवे। स्वाङ्गशीतल होने पर पीस, कपड़छान करके शीशीमें भर ले। **मात्रा** ।॥। से १ रत्ती। **अनुपान**—मधु और घृत। रसमाणिक्य कफवातजन्य कास, तमकश्वास, जीर्णज्वर, फिरङ्गरोग, वातरक्त, कुष्ठ और नाड़ीव्रणको दूर करता है।

मनःशिला।

मनःशिलानामानि।

नाम—(सं.) मनःशिला, शिला, नैपाली, कुनटी; (हिं.) मैनसिल; (बं.) (मनछाल); (म.) मनशीळ; (गु.) मनशिल; (फा.) झर्नीख सुर्ख; (अं.) रिअलगार (Realgar)।

वर्णन—मैनसिल भी संखिया और गन्धकका यौगिक है। इसकी रचनामें संखियेके दो अणु और गन्धकके दो अणु होते हैं। मैनसिल खनिज मिलती है और कृत्रिम बनाई भी जाती है। जो मैनसिल अकृत्रिम, नारंगीके रंगकी, भारी और शीघ्र चूर्ण हो जाय ऐसी हो वह श्रेष्ठ होती है।

---

१ वङ्कनालका लक्षण **परिभाषाखण्ड** अ. ४ में देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मनःशिलाशोधनम् ।

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।
शृङ्गवेररसैर्वाऽपि मातुलुङ्गरसेन वा ॥ १२ ॥
भृङ्गराजरसैर्वाऽपि विशुध्यति मनःशिला ।

अगथिया, अदरख, बिजौरा अथवा भँगरेके स्वरसकी सात भावना देकर जलसे धो लेनेसे मैनसिल शुद्ध होती है। इस प्रकार शुद्ध की हुई मैनसिलका उपयोग किया जाता है। मैनसिलकी भस्म नहीं बनाई जाती।

शुद्धमनःशिलागुणाः ।

मनःशिला कटुस्तिक्ता ह्युष्णवीर्या रसायनी ॥ १३ ॥
हन्ति कासं ज्वरं श्वासं कण्डूं पाण्डुं तथैव च ।

शुद्ध मैनसिल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रसायन तथा खाँसी, ज्वर, श्वास, कण्डू और पाण्डुरोगका नाश करनेवाली है।

मनःशिलाप्रधानो योगः—शिलासिन्दूरम् ।

शिलारसेन्द्रगन्धानां प्रत्येकं तु पलद्वयम् ॥ १४ ॥
मर्दयित्वा कुमार्यद्भिः कुर्यात् कज्जलिकां शुभाम् ।
विपचेद्वालुकायन्त्रे यामषोडशकं भिषक् ।
शिलासिन्दूरसंज्ञः स्यात् कफवातगदापहः ॥ १५ ॥

शुद्ध मैनसिल, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ८–८ तोला ले, प्रथम कुमारीस्वरसके योगसे पारद–गन्धककी कज्जली बना, उसमें मैनसिल मिलाकर एक दिन कुमारीस्वरसमें मर्दन करे। कज्जली सूखनेपर सात कपड़-मिट्टी की हुई शीशीमें भरकर रससिन्दूरमें लिखी हुई विधिके अनुसार दो दिन वालुकायन्त्रमें पकावे। स्वाङ्गशीतल होनेपर शीशीके गलेमें लगे हुए रसको ले, अति सूक्ष्म चूर्ण बनाकर शीशीमें भर ले। इसको **शिलासिन्दूर** कहते हैं। अनुपानविशेषसे यह सर्व प्रकारके कफ और वातके रोगोंको दूर करता है। **मात्रा** ·॥· से १ रत्ती। **अनुपान**—मधु और घृत।

सुधाविज्ञानीयाऽध्यायः पञ्चमः ।

सुधा ।

नाम—(सं.) सुधा, चूर्ण; (हिं.) चूना; (बं.) चूण; (म.) चुना, कळीचा चुना; (गु.) चूनो, कळी चूनो; (अ.) किल्स, नूरा; (फा.) क्षाहक; (अं.) केल्सिअम् (Calcium), लाइम् (Lime)।

वर्णन—चूनेके पत्थर(सुधाश्मा) को भट्ठीमें पका कर चूना बनाया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चूनेके कल्प।

चूर्णोदकम्।

रक्तिद्वयोन्मितं चूर्णं पञ्चतोलकसंमिते।
जले परिस्रुते क्षिप्त्वा त्रियामं स्थापयेद्बुधः॥ १॥
ततः सारकपत्रेण सारयेत् काचभाजने।
चूर्णोदकमिति ख्यातं तथैव च सुधोदकम्॥ २॥
चूर्णोदकं दृढहरित्काचकूप्यां निधापयेत्।
चूर्णोदकमतीसारमम्लपित्तं तथा क्रमीन्॥ ३॥
शूलं च ग्रहणीं हन्ति विशेषाद्दुग्धपाचनम्। (र. त. अ. ११)

एक काचकी बोतलमें पाँच तोला परिस्रुत जल और दो रत्ती विना बुझाया हुआ चूना मिला, खूब हिला कर तीन प्रहर रहने दे। तीन प्रहरके बाद ऊपरके जलको हरे रंगकी काचकी शीशीमें सारकपत्र (फिल्टर् पेपर्) से छान, काचका डाट लगा कर रख छोड़े। इसको **चूर्णोदक** या **सुधोदक** (अं. लाइम् वॉटर Lime water) कहते हैं। चूर्णोदक दूधके साथ मिला कर देनेसे दूधको पचाता है तथा अम्लपित्त, कृमि, शूल और ग्रहणी विकारको दूर करता है। चूर्णोदकके कुल्ले करनेसे मुखपाक (मुँहके छाले) अच्छा होता है। चूर्णोदक ५-१० तोला छोटी पिचकारी द्वारा गुदामें चढ़ानेसे स्थूलान्त्रस्थ कृमि नष्ट होते हैं। चूर्णोदक और अलसी (तिसी) या नारियलका तैल समभाग ले, उनको काचके पात्रमें काचकी शलाका द्वारा मिश्रण श्वेत वर्ण हो जाय तथा पानी और तैल खूब मिल जायँ इतना हिला कर शीशीमें भर ले। इसको अग्निदग्धस्थान पर लगानेसे दाह शांत होता है।

कमर, घुटने आदिके दर्द तथा यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि पर चूना और शहद या चूना और गुड़ मिला कर लेप करनेसे लाभ होता है। चूना, अंडेकी सफेदी और शहदको खूब मिला, कपड़े पर लगा कर वह पट्टी जहाँ चोट-मार लगी हो वहाँ लगा देनेसे बड़ा लाभ होता है।

सुधापर्पटी—एक भाग चूना और दो भाग शुद्ध गन्धकको एक प्रहर मर्दन करके रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानसे पर्पटी बना ले। इसको **सुधापर्पटी** कहते हैं। **मात्रा**—१-२ रत्ती। **अनुपान**—जल या दूध। सुधापर्पटीसे मुखदूषिका (यौवन-पिडका), कण्ठमाला, फोड़ा-फुन्सी, प्रमेहपिडका आदि रोगोंमें शीघ्र लाभ होता है।

खटिका।

नाम—खटिका, खटिनी, लेखनमृत्तिका; (हिं.) खड़िया, खरिया, खड़ी; (बं.) खड़ी, फूल खड़ी; (म.) खडू; (गु.) खड़ी, खडी माटी; (अं.) क्रीटा (Creta), चॉक (Chalk)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—खड़िया मिट्टी श्वेतवर्ण, स्वादरहित, भंगुर और जीभ पर चिपकनेवाली होती है। खड़िया मिट्टीको पानीमें मिला, कपड़ेसे छान कर ३-४ घंटा रहने दे। पीछे ऊपरका पानी निथार कर फेंक दे और नीचे बैठी हुई मिट्टीको सुखा कर काम में लेवे।

खटिकागुणाः ।

खटिका मधुरा तिक्ता शीतला पित्तदाहनुत् ॥ ४ ॥
व्रणदोषकफास्रघ्नी ग्राहिणी नेत्ररोगनुत् ।

खड़िया मिट्टी मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, ग्राही तथा पित्त, दाह, व्रण, कफ, रक्तस्राव और नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली है।

खटिकाप्रधानो योगः ।

खटिकादिचूर्ण—शुद्ध खड़ी ११ भाग, केशर १ भाग, छोटी इलायचीके बीज १ भाग, लौंग २ भाग, जायफल २ भाग और मिश्री ११ भाग ले, सबको एकत्र कूट, कपड़छान करके शीशीमें भरले। **मात्रा**—१॥-३ माशा। **अनुपान**—सौंफका अर्क या हिम। **उपयोग**—इस चूर्णसे अतिसार और वमनमें अच्छा लाभ होता है।

गोदन्ती ।

नाम—(हिं.) गोदंती; (म.) गोदंती, शिरगोळा; (गु.) गोदंती, घापाण, चिरोडी; (अं.) केल्सिअम् सल्फेट (Calcium Sulphate), जिप्सम् (Gypsum)।

वर्णन—बाजारमें यह श्वेत चमकदार शिला या पहलदार टुकड़ोंके रूपमें मिलती है। यह चूना और गन्धकाम्लका यौगिक (केल्सिअम् सल्फेट Calcium sulphate) है। लोग इसको **गोदंती हड़ताल** कहते हैं, परंतु यह हड़तालका भेद नहीं है।

गोदंतीकी शुद्धि—गोदंतीको गरम जलसें खूब धो लेनेसे वह शुद्ध होती है।

गोदन्तीभस्म ।

शुद्धगोदन्तिजं चूर्णं कुमारीस्वरसैर्दिनम् ॥ ५ ॥
निम्बपत्ररसैर्वाऽपि मर्दितं कृतचक्रिकम् ।
शुष्कं गजपुटे पक्वं श्वेतवर्णं प्रजायते ॥ ६ ॥
गोदन्तभस्म शिशिरं शिरःशूलनिवारणम् ।
ज्वरे क्षये तथा कासे पाण्डुरोगे ह्युरःक्षते ॥ ७ ॥
शस्यते बालशोषे च प्रदरे श्वेतवर्णके ।

शुद्ध गोदन्तीके चूर्णको कुमारीस्वरस या निम्बपत्रस्वरसमें एक दिन मर्दन कर, टिकियाँ वना, सुखा कर गजपुटमें पकानेसे श्वेतवर्णकी भस्म होती है। गोदंतीभस्म

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शिरःशूल, ज्वर, क्षय, खाँसी, पाण्डुरोग, उरःक्षत, बालशोष और श्वेत प्रदरमें विशेष गुणकारक है। **मात्रा**—१-२ माशा। **अनुपान**—मधु, दूध या गोघृत।

काशीशगोदन्तीभस्म।

भागैकं शुद्धकाशीशं गोदन्तं सप्तभागकम् ॥ ८ ॥
कन्यानीरेण संमर्द्य ततो गजपुटे पचेत्।
अरुणाभं भवेद्भस्म पाण्डुरोगे प्रशस्यते ॥ ९ ॥

एक भाग शुद्ध कासीस और सात भाग शुद्ध गोदंतीके चूर्णको ग्वारपाठेके रसमें मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा कर गजपुटमें पकानेसे अरुणवर्णकी भस्म होती है। यह भस्म पाण्डुरोगमें प्रशस्त है। **मात्रा**—४-८ रत्ती। **अनुपान**—दूध।

सुर्मए सफेद।

नाम—(फा.) सुर्मए सफेद; (हिं.) सफेद सुरमा; (अं.) केल्साइट्‌ (Calcite)।

वर्णन—यह द्रव्य श्वेतवर्ण परतदार स्फटिकके रूपमें बाजारमें **सफेद सुरमा** के नामसे मिलता है। यह चूना और कोकिलाम्लका यौगिक (केल्सिअम् कार्बोनेट्र Calcium Carbonate) है।

सफेद सुरमेके चूर्णको घृतकुमारीके रसमें मर्दन कर, गजपुटमें पका कर भस्म बनाते हैं और गोदंतीभस्मके समान उसका उपयोग करते हैं।

सिकताविज्ञानीयाध्यायः षष्ठः।

सिकता।

नाम—(सं.) सिकता, वालुका; (हिं.) बालू, रेत; (म.) रेती, वाळू; (गु.) रेती, वेळू; (फा.) रेग; (अ.) रमल; (अं.) सेन्ड् (Sand); (ले.) सिलिका (Silica)।

वर्णन—रेतीले पत्थर नदियोंके प्रवाहसे टूट कर बने हुए श्वेत कणोंको **वालुका** कहते हैं। श्वेतवर्णकी बालू शुद्ध सिलिका होती है। इसमें लाल या पीला रंग लोहेके मिश्रणके कारण होता है।

सिकतागुणाः।

वालुका मधुरा शीता संतापश्रमनाशिनी।
स्वेदप्रयोगतश्चैव शाखाशैत्यानिलापहा ॥ १ ॥ (ध. नि.)
वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बालू मधुर, शीतवीर्य, लेखन तथा संताप, श्रम, व्रण और उरःक्षतको दूर करनेवाली है । बालूका स्वेद करनेसे हाथ-पाँवका शैत्य और वायुका नाश होता है ।

सिकताप्रधानो योगः ।

आहृत्य सिकतां श्वेतां सुसूक्ष्मां प्रसृतोन्मिताम् ॥ २ ॥
तुल्यां तैलघृतक्षौद्रवसामज्जाभिसंयुताम् ।
अगारधूमत्रिफलालेहेन च विमिश्रिताम् ॥ ३ ॥
सप्तभिः प्रसृतैः सार्धं खजेन मथितां लिहेत् ।
रक्तष्ठीवी क्षतोरस्कः सिद्धयोगं समाचरेत् ॥ ४ ॥

(गदनिग्रह-कासाधिकार)

श्वेत बालूका अति सूक्ष्म चूर्ण, तिलतैल, मधु (शहद), गोघृत, मज्जा, गृहधूम और त्रिफलाकी रसक्रिया-इनको एकत्र मथानीसे खूब मथ कर पीनेसे रक्तष्ठीवन और उरःक्षत अच्छा होता है । **मात्रा**—३-६ माशा । **अनुपान**—दूध ।

दुग्धपाषाणः ।

नाम—(सं.) दुग्धपाषाण; (हिं.) संगेजराहत; (म.) शंखजिरें; (गु.) शंखजीरुं; (मा.) सं(सिं)गराज, घीयाभाटा; (पं.) दूधपथरी; (अ.) हज्रुल् जराहत; (फा.) संगे जहाहत; (सिं.) सिंगजिरो; (अं.) टेल्क् (Talc), सॉफ्टस्टोन् (Soft stone) ।

वर्णन—यह एक प्रकारका पत्थर है जो सफेद और चिकना होता है । यह सिकता और मॅग्नेशियाका यौगिक (मॅग्नेशियम् सिलिकेट्—Magnesium silicate) है ।

दुग्धपाषाणगुणाः ।

दुग्धपाषाणको ग्राही व्रणरोपणकारकः ।
शोणितास्थापनः शीतो दन्तरोगहरस्तथा ॥ ५ ॥

संगजराहत शीतवीर्य, ग्राही, व्रणरोपण, रक्तस्तम्भन और दंतरोगहर है । संगजराहतका चूर्ण दहीके साथ मिला कर अतिसार और प्रवाहिकामें देते हैं । सद्योव्रण पर छिड़कनेसे रक्तस्रावको बन्द करता है । संगजराहत ८ भाग, खूनखराबा (दम्मुल् अखवेन) १ भाग और रसकपूर $\frac{1}{8}$ भाग-इनको सिक्थतैल २० भागमें मिला कर बनाया हुआ मलहम उपदंश और अन्य प्रकारके व्रणोंके लिये अच्छा शोधन-रोपण है । संगजराहत ४ भाग, छोटी इलायची १ भाग, कबाबचीनी १ भाग, कत्था १ भाग और मौलसीरीकी छाल २ भाग मिला कर बनाया हुआ दन्तमंजन लगानेसे मुँहके छाले अच्छे होते हैं और मसूड़े दृढ़ होते हैं । रक्तपित्तमें संगजराहत, नागकेशर और दम्मुल्अखवेन समभागका बनाया हुआ चूर्ण देनेसे रक्तस्राव बन्द होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कौशेयाश्मा।

नाम—कौशेयाश्मा; (दक्षिणभारत) कल्नारु(-र); (फा.) संगे रेशम; (अं.) ॲस्बेस्टोस् (Asbestos)।

वर्णन—यह एक नरम पत्थर है जो एकत्र दवाए हुए रेशमके तन्तुओंके जैसा और कुछ ललाई-पिलाई लिये हुए श्वेत वर्णका होता है। यह उष्णता न वहनेवाला है, इसलिये अग्निसे रक्षा करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। यह एक प्रकारका सिकता और मॅग्निसियाका यौगिक (सिलिकेट् ऑफ् मॅग्निसिअम्) (Silicate of magnesium) है।

उपयोग—दक्षिण भारतके वैद्य इसका दन्तमञ्जन बनाते हैं और इसकी भस्म बनाकर दन्तपूय, प्रमेह और प्रदरमें उसका प्रयोग करते हैं।

नागपाषाण।

नाम—(सं.) नागपाषाण, नागाश्मा; (फा.) जहरमोहरा; (अ.) फादजहर मादनी; (अं.) सर्पेन्टाइन् (Serpentine), ओफाइट् (Ophite)।

वर्णन—यह एक पत्थर है जो चीन, तिब्बत, खोतान, लद्दाख, गढ़वाल, नेपाल आदिकी पर्वतमालाओंमें पाया जाता है। जो चिकना, वजनमें हलका और पीलापन तथा हरापन लिये हुए श्वेतवर्णका हो वह अच्छा समझा जाता है। यह सिकता और मॅग्निसियाका यौगिक है।

गुण-कर्म—यूनानी वैद्यकमें यह पहले दर्जेमें उष्ण और रूक्ष, सौमनस्यजनन, उत्तमाङ्गों (हृदय, मस्तिष्क और यकृत्) को वल देनेवाला, ओजोवर्धक और विषहर माना जाता है। अर्क गुलाबमें इसकी पिष्टी बनाकर इसका उपयोग करते हैं। हैजे-(कॉलेरा)में जहरमोहरा, दरियाई नारियल और पपीता(अं. इग्नेसिया)को अर्क गुलाबमें घिस कर देते हैं। हृत्स्पन्दन, हृदयदौर्बल्य और वमनमें इसका प्रयोग किया जाता है। **मात्रा**—२-८ रत्ती। **अनुपान**—अर्क गुलाब, अर्क केवड़ा या गावज़बानके फूलोंका अर्क।

हज्रल् यहूद।

नाम—(सं.) अश्मभिद्, बदराश्म; (हिं.) बेरपत्थर, पत्थरबेर, हजरतबेर; (गु.) हजरतबोर; (अ.) हज्रुलयहूद, हज्रुज़ैतून; (फा.,) संगे जहूदान, संगे यहूद।

वर्णन—यह एक बेर या बलूत (सीतासुपारी-बाँझका फल)की आकृतिका लंबगोल, दोनों सिरोंपर नोकदार, बाहरसे भूरे रंगका और झुर्रियोंवाला, भीतरसे हरापन लिये हुए सफेद रंगका और १-१॥ इंच लंबा पत्थर है। इसमें कोई स्वाद नहीं होता। यह जलमें शीघ्र पिस जाता है। यह सुधा (चूना) और सिकताका यौगिक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(सिलिकेट् ऑफ् लाइम् Silicate of lime) है । यह अरबस्तानसे भारतवर्षमें आता है । यूनानी वैद्य इसका औषधके लिये उपयोग करते हैं ।

हज्रुल्यहूदकी पिष्टी ।

हज्रुल्यहूदको गरम जलसे धो, कपड़ेसे पोंछ, सुखा, सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण करके अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें तीन दिन मर्दन कर, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—४-८ रत्ती । कई लोग इसको कदलीस्तम्भस्वरस या मूलीके स्वरसकी सात भावना देकर पिष्टी बनाते हैं । **गुण-कर्म**—हज्रुलयहूद मूत्रल, पित्तशामक, वमनको बन्द करनेवाला, अश्मरीशूलहर, मूत्राश्मरीको तोड़नेवाला तथा अश्मरी और शर्कराको मूत्रमार्गसे निकालनेवाला है । मूत्रावरोधमें इसको जलमें घिस कर पेडू पर लेप करते हैं ।

लवण-क्षारविज्ञानीयाध्यायः सप्तमः ।

सैन्धवलवणम् ।

सैन्धवनामानि ।

सैन्धवं स्याच्छीतशिवं मणिमन्थं च सिन्धुजम् ।

नाम—(सं.) सैन्धव, शीतशिव, मणिमन्थ, सिन्धुज, नादेय; (हिं.) सेंधा नमक, सेंधानोन, लाहौरी नमक; (बं.) सैंधवलवण, सैंधवनून; (म.) शेंदेलोण; (गु.) सिंधालूण; (अं.) रॉक् सोल्ट (Rock Salt) ।

वर्णन—सैन्धव लवण खनिज है । पंजाबमें इसकी खाने हैं । सैंधवकी दो जातियाँ होती हैं-(१) सफेद और (२) ललाई लिये सफेद । आयुर्वेदमें सैन्धव लवणको खानेके लिये उत्तम माना गया है-"सैन्धवं लवणोत्तमम् ।" (च. सू. अ. २७) ।

सैन्धवगुणाः ।

रोचनं दीपनं वृष्यं चक्षुष्यमविदाहि च ॥ १ ॥
त्रिदोषघ्नं समधुरं सैन्धवं लवणोत्तमम् ।

(च. सू. अ. २७) ।

चक्षुष्यं सैन्धवं हृद्यं रुच्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ २ ॥
स्निग्धं समधुरं वृष्यं शीतं दोषघ्नमुत्तमम् ।

(सु. सू. अ. ४६)

सैन्धवं शिशिरं स्निग्धं लघु स्वादु त्रिदोषजित् ॥ ३ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हृद्यं हृन्नेत्ररोगघ्नं व्रणारोचकनाशनम् ।
सैन्धवं स्वादु चक्षुष्यं वृष्यं रोचनदीपनम् ॥ ४ ॥
अविदाहि विबन्धघ्नं सुखदं स्यात्त्रिदोषजित् ।
(ध. नि. २ वर्ग)।

सेंधानमक कुछ मधुर, शीतवीर्य, रुचिकर, दीपन, वृष्य, नेत्रके लिये हितकर, विदाह न करनेवाला, हृद्य, लघु, स्निग्ध, आरोग्यप्रद, सब लवणोंमें उत्तम तथा विबन्ध, नेत्ररोग, हृद्रोग, व्रण, अरुचि और वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका नाश करनेवाला है ।

सामुद्रलवण ।

नाम—(सं.) सामुद्र, समुद्रलवण; (हिं.) पाँगा, पाँगानोन, समुद्री नमक; (बं.) करकच; (म.) मीठ; (गु.) मीठुं ।

वर्णन—सामुद्र लवण समुद्रके जलको क्यारियोंमें ले, सूर्यके तापमें सुखा कर बनाया जाता है ।

सामुद्रलवणगुणाः ।

सामुद्रं मधुरं पाके नात्युष्णमविदाहि च ॥ ५ ॥
भेदनं स्निग्धमीषच्च शूलघ्नं नातिपित्तलम् । (सु. सू. अ. ४६) ।
सामुद्रकं समधुरं ×××। (च. सू. अ. २७) ।
सामुद्रं लघु हृद्यं च पलितास्रदपित्तलम् ॥ ६ ॥
विदाहि कफवातघ्नं दीपनं रुचिकृत् परम् । (रा. नि. ६ वर्ग)

सामुद्र लवण कुछ मधुर, मधुरविपाक, कुछ उष्णवीर्य, विदाह न करनेवाला, भेदन, कुछ स्निग्ध, लघु, हृद्य, पलित (केश पकना–सफेद होना)–रक्तविकार और कुछ पित्तको उत्पन्न करनेवाला, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात और शूलका नाश करनेवाला है ।

रोमकलवणम् ।

नाम—(सं.) रोमक, गडलवण, साम्भर, शाकम्भरीय; (हिं.) साँभर लवण, साँभर नोन; (म.) सांभर मीठ; (गु.) साम्भर मीठुं ।

वर्णन—राजस्थानमें साँभरकी झील (सरोवर) है। उसके जलको क्यारियोंमें ले, सूर्यके तापसे सुखा कर जो लवण बनाया जाता है, उसको **साँभर लवण** कहते हैं ।

रोमकलवणगुणाः ।

रोमकं तीक्ष्णमत्युष्णं व्यवायि कटुपाकि च ॥ ७ ॥
वातघ्नं लघु विष्यन्दि सूक्ष्मं विड्भेदि मूत्रलम् । (सु. सू. अ. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

साम्भरं लवणं ख्यातं भेदनं दीपनं परम् ।
अत्युष्णं लघु तीक्ष्णं च कटुपाकि च पित्तलम् ॥ ८ ॥
(र. त. अ. १४)

साँभर लवण उष्णवीर्य, विपाकमें कटु, तीक्ष्ण, लघु, विष्यन्दी, व्यवायी, मलका भेदन करनेवाला, मूत्रल, पित्तको बढ़ानेवाला और वातहर है ।

विडलवणम् ।

नाम—(सं.) विड, विट्लवण, चुल्लिकालवण, नरसार; (हिं.) नौसादर; (बं.) निशादल; (म.) नवसागर; (गु.) नवसार, नवसागर; (फा.) नौशादर; (अं.) ॲमोनिअम् क्लोराइड (Ammonium Chloride) ।

वर्णन—बिड लवणके संबन्धमें वैद्योंमें मतभेद है । रसतरङ्गिणीकार **कविराज नरेन्द्रनाथ मित्रने** "८० तोला साँभर लवण और १० तोला आँवलेके चूर्णको एकत्र करके मिट्टीका लेप की हुई हाँडीमें छः घण्टा प्रखर अग्निमें पकानेसे विडलवण तैयार होता है" ऐसा लिखा है (रसतरङ्गिणी १४ वां तरंग) । **डॉ. वामन गणेश देसाईने भारतीय रसशास्त्र** (पृ. १७५-६) में बिडलवण बनानेकी विधि इस प्रकार लिखी है—"खानेका नमक ८२ भाग, बहेड़ा १ भाग, आँवला १ भाग, सज्जीखार १ भाग एकत्र करके मिट्टीके घड़ेमें पकानेसे बिड लवण बनता है" । परन्तु **रसेन्द्रचूड़ामणिकार सोमदेवने** नौसादरको **विड**[1] नाम दिया है और वह ठीक भी है; क्यों कि नौसादर मनुष्य तथा ऊँट—गाय—बकरी आदिकी विट् (मल-मूत्र) से प्राप्त किया जाता है । रसरत्नसमुच्चयकी व्याख्यामें आयुर्वेदाचार्य **श्री. दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी**जी लिखते हैं कि—"ईजिप्त देशमें ऊँटकी लीदको जला कर यह बनाया जाता था । पूर्वीय देशोंमें ऊँटके मूत्रसे भी यह बनाया जाता था । यूरोपमें यह मनुष्यके मूत्रसे बनाया जाता था और इसी हेतु इसको **नरसार** कहते थे । पंजाबमें ईंटोंके भट्ठोंसे यह प्राप्त किया जाता था । भट्ठोंमें प्रायः लीद, गोवर और जानवरोंके मूत्र आदिसे भीगा हुआ कचरा जलाया जाता है । इन्हीं पदार्थोंके जलनेके कारण भट्ठीके जिस हिस्सेमें आँच कम रहती है वहाँ यह क्षार इकट्ठा होता है । कुम्हार लोग इसको इकट्ठा करके बेच डालते हैं । ××× । इसको **बिड लवण** भी कहते हैं" । इससे मालूम होता है कि प्राचीनोंका बिडलवण नौसादर ही है ।

---

१ "करीरपीलुकाष्ठेषु पच्यमानेषु चोद्भवः । क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणाभिधः ॥ इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु । तदुक्तं नवसाराख्यं चूल्लिकालवणं च तत् ॥ रसेन्द्रजारणं लोहद्रावणं जठराग्निकृत् । गुल्मप्लीहास्यशोषघ्नं भुक्तमांसादिपाचनम् ॥ विडाख्यं च त्रिदोषघ्नं चूल्लिकालवणं मतम् ।" (र. चू. अ. ११) । "इष्टकापाकदहने जायते पाण्डुरप्रभः । मनुष्यशूकराणां च विष्ठान्तः किट्टवद्भवेत् ॥ क्षारेषु गणना तस्य स्वर्णशोधनकः परः । शङ्खद्रावरसे पूज्यो मुखकर्मणि पारदे । विडद्रव्योपयोगी च क्षारवत्तद्गुणाः स्मृताः ॥" (आ. प्र. अ. १०) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विडलवणगुणाः ।

सक्षारं दीपनं सूक्ष्मं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ९ ॥
रोचनं तीक्ष्णमुष्णं च विडं वातानुलोमनम् ।
(सु. सू. अ. ४६)

तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्व्यवायित्वाद्दीपनं शूलनाशनम् ॥ १० ॥
ऊर्ध्वं चाधश्च वातानामानुलोम्यकरं विडम् ।
(च. सू. अ. २७)

विड लवण कुछ क्षारधर्मा, दीपन, सूक्ष्म, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, व्यवायि, वायुका ऊपर और नीचेसे अनुलोमन करनेवाला तथा शूल और हृद्रोगका नाश करनेवाला है ।

सौवर्चललवणम् ।

नाम—(सं.) सौवर्चल; (हिं.) सोंचर(-ल), कालानमक; (बं.) संचललवण; (म.) पादेलोण; (गु.) संचळ ।

वर्णन—सोंचल नमक समभाग सज्जीखार और सेंधानमक दोनोंको जितने जलमें दोनों घुल जायँ इतने जलमें घोल, ऊपरके निथरे हुए जलको कपड़ेसे छान, अग्नि पर पका कर तैयार करते हैं । इसको **सोंचर, सोंचल** या **काला नमक** कहते हैं । काला नमक काँगडा जिलेमें प्राकृत (पहाड़ों, भी मिलता है । **चरकने** काले नमकको सोंचरसे भिन्न बताया है–"न काललवणे गन्धः सौवर्चलगुणाश्च ते ।" (च. सू. अ. २७) । वह यही पहाड़ी काला नमक मालूम होता है ।

सौवर्चलगुणाः ।

लघु सौवर्चलं पाके वीर्योष्णं विशदं कटु ॥ ११ ॥
गुल्मशूलविबन्धघ्नं हृद्यं सुरभि रोचनम् । (सु. सू. अ. ४६) ।
सौक्ष्म्यादौष्ण्याल्लघुत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम् ॥ १२ ॥
सौवर्चलं विबन्धघ्नं हृद्यमुद्गारशोधि च । (च. सू. अ. २७)

सौवर्चल लवण विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, विशद, हृद्य, सुगन्धि, रुचिकर, सूक्ष्म, लघु, उद्गार(डकार)को शुद्ध करनेवाला तथा गुल्म, शूल और विबन्धको दूर करनेवाला है ।

औद्भिदलवणम् ।

वर्णन—ऊसर भूमिमें क्षार (खार) मिली हुई मिट्टी पाई जाती है, जिसको **रेह** कहते हैं । उसको पानीमें घोल, निथार, कपड़ेसे छान कर सूर्यके तापमें या अग्नि पर सुखा लेते हैं, उसको **औद्भिद लवण-खारीनोन** कहते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औद्भिदलवणगुणाः ।

सतिक्तं कटु सक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम् ॥ १३ ॥
(सु. सू. अ. ४६)

सतिक्तकटु सक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम् ।
(च. सू. अ. २७)

औद्भिदलवण कुछ तिक्त और क्षारयुक्त, कटु, तीक्ष्ण और उत्क्लेदि (मिचली लानेवाला) है ।

लवणसामान्यगुणाः ।

रोचनं लवणं सर्वं पाकि स्रंस्यनिलापहम् । (च. सू. अ. २७)
लवणोपहिताः स्नेहाः स्नेहयन्त्यचिरान्नरम् ॥ १४ ॥
(च. सू. अ. १३)
लवणमन्नद्रव्यरुचिकराणाम् ॥ १५ ॥ (च. सू. अ. २५)

लवणं पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपपन्नमनतिगुर्वनतिस्निग्धमुपक्लेदि विस्रंसनसमर्थमन्नद्रव्यरुचिकरम् । आपातभद्रं प्रयोगसमसाद्गुण्यात्, दोषसंचयानुबन्धम् । तद्रोचनपाचनोपक्लेदनविस्रंसनार्थमुपयुज्यते । तदत्यर्थमुपयुज्यमानं ग्लानिशैथिल्यदौर्बल्याभिनिर्वृत्तिकरं शरीरस्य भवति । ये ह्येनद्ग्रामनगरनिगमजनपदाः सततमुपयुञ्जते, ते भूयिष्ठं ग्लास्नवः शिथिलमांसशोणिता अपरिक्लेशसहाश्च भवन्ति । तद्यथा—बाह्लीकसौराष्ट्रिकसैन्धवसौवीरकाः, ते हि पयसाऽपि सह सदा लवणमश्नन्ति । येऽपीह भूमेरत्यूषरा देशास्तेष्वोषधिवीरुद्वनस्पतिवानस्पत्या न जायन्तेऽल्पतेजसो वा भवन्ति, लवणोपहतत्वात् । तस्माल्लवणं नात्युपयुञ्जीत । ये ह्यतिलवणसात्म्याः पुरुषास्तेषामपि खालित्येन्द्रलुप्तपालित्यानि वलयश्चाकाले भवन्ति ॥ १६ ॥ (च. वि. अ. १)

अथ लवणानि-सैन्धवसामुद्रविडसौवर्चलरोमकौद्भिदप्रभृतीनि यथोत्तरमुष्णानि वातहराणि कफपित्तकराणि कटुपाकीनि, यथापूर्वं स्निग्धानि स्वादूनि सृष्टमूत्रपुरीषाणि चेति ॥ १७ ॥ (सु. सू. अ. ४६) ।

सर्व प्रकारके लवण रोचन, पाचन, सारक और वातनाशक हैं । अन्न द्रव्योंपर रुचि उत्पन्न करनेवाले द्रव्योंमें लवण प्रधान है । लवण मिलाये हुए स्नेह तुर्त स्नेहन करते हैं । लवण उष्ण, तीक्ष्ण, न अति गुरु, न अति स्निग्ध, क्लेदन और अन्न द्रव्यपर रुचि उत्पन्न करनेवाला है । यदि लवणका सम-उचित प्रमाणमें उपयोग किया जावे तो वह तुर्त लाभ देनेवाला है, परन्तु यदि उसका अति उपयोग किया जावे तो वह भविष्यमें दोषोंका

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संचय करता है। लवणका रोचन, पाचन, उत्क्लेदन और विस्रंसन कार्यके लिये उपयोग किया जाता है। लवणके अति उपयोगसे शरीरमें मानसिक तथा शारीरिक दौर्बल्य और शैथिल्य आता है। जो ग्राम, नगर (शहर), निगम (जिले) और जनपद (प्रान्त) के लोग लवणका अति उपयोग करते हैं वे प्रायः ग्लानियुक्त, शिथिल मांस-रक्तवाले और क्लेशको न सहन करनेवाले होते हैं। जैसे कि-वाह्लीक (बल्ख-बुखारा), सौराष्ट्र, सिन्ध और सौवीर देशके लोग। इस देशके लोग हमेशा दूधके साथ भी लवण खाते हैं। पृथ्वीके भी जो प्रदेश अति ऊसर (नमकीन मिट्टीवाले) हैं वहाँ वृक्ष-लता आदि प्रायः होते ही नहीं और होते हैं वे भी कमजोर होते हैं। इसलिये लवणका अति उपयोग नहीं करना चाहिये। जो पुरुष लवण अधिक खाते हैं उनको खालित्य इन्द्रलुप्त पालित्य(बाल सफेद होना) और अकालमें शरीरमें वलियाँ (झुर्रियाँ) होती हैं।

यवक्षारनामानि।

नाम—(सं.) यवक्षार, यावशूक; (हिं.) जौखार, जवाखार; (बं.) यवक्षार; (म., गु.) जवखार।

वर्णन—जब जौ पक जाते हैं तब उनकी बालियोंको तोड़, सुखा, जलाकर क्षार-पाकविधिसे जो क्षार बनाया जाता है, उसको **यवक्षार** कहते हैं। जौकी समग्र घासको जलाकर भी यवक्षार बनाते हैं, वह ऊपर लिखे हुएसे न्यून गुणवाला होता है।

यवक्षारगुणाः।

हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहानाहगलग्रहान्।
कासं कफजमर्शांसि यावशूको व्यपोहति॥ १८॥
(च. सू. अ. २७)

ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ।
शुक्रश्लेष्मविबन्धार्शोगुल्मप्लीहविनाशनौ॥ १९॥
(सु. सू. अ. ४६)

यवक्षारः कटूष्णश्च कफवातोदरार्तिजित्।
आमशूलाश्मरीकृच्छ्रविषदोषहरः सरः॥२०॥ (ध. नि. २ वर्ग)

यवक्षार कटु, उष्णवीर्य, सर (मल-मूत्रको साफ लानेवाला) तथा कफ, वात, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, प्लीहा(और यकृत्)की वृद्धि, आनाह, गलग्रह, कफज कास, अर्श, उदर, आमशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, गुल्म और विषदोषको दूर करनेवाला है।

नव्यमत—यवक्षार श्वेतवर्ण, अतिक्षुद्र दानायुक्त चूर्णरूप तथा क्षार और तिक्त आस्वादयुक्त होता है। इसमें प्रधानतः पोटेसियम् क्लोराइड्र ५०.८, पोटेसिअम् सल्फेट्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२०.२, पोटेसिअम् बाई कार्बोनेट् १२.६ तथा पोटेसिअम् कार्बोनेट् ६.८ प्रतिशत होता है। यह पोटेसियम् लवणोंका मिश्रण (Mixture of potassium salts) है। यवक्षार स्निग्ध, लघुपाक, सूक्ष्म (शरीरके सर्व स्थानोंमें शीघ्र प्रवेश करनेवाला), अग्निवर्धक (दीपन), सारक (मृदुविरेचक), मूत्रल, अम्लत्वनाशक और रसायन है। यह प्लीहा, पाण्डुरोग, गुल्म, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, शूल, श्वास, आमदोष, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, गलेके रोग तथा कफ और वातको दूर करनेवाला है **(डॉ. कार्तिकचन्द्र वसु)**।

स्व(स)र्जिकाक्षारः ।

स्वर्जिकाक्षारनामानि ।

नाम—(सं.) स्वर्जिकाक्षार, सुवर्चिका; (हिं.) सज्जी, सज्जीखार; (बं.) साचिक्षार, साजिमाटि; (म., गु.) साजीखार।

वर्णन—पंजाब और सिंधमें लाना (लाणा) नामक क्षारयुक्त वनस्पतिसे सज्जीखार बनाते हैं। इसकी अच्छी जातिको **लोटा सज्जी** कहते हैं। बाजारी सज्जीको पानीमें घोल कर एक दिन रहने दे। दूसरे दिन ऊपरका पानी निथार, उसको ५-७ बार कपड़ेसे छान कर मृत्पात्रमें अग्निपर सुखा लेनेसे सज्जी शुद्ध होती है। औषधके लिये शुद्ध सज्जीका प्रयोग करना चाहिये।

स्वर्जिकाक्षारगुणाः ।

तीक्ष्णोष्णो लघुरूक्षश्च क्लेदी पक्ता विदारणः ।
दहनो दीपनश्छेत्ता स्वर्जिक्षारोऽग्निसन्निभः ॥ २१ ॥
(च. सू. अ. २७) ।
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ।
शुक्रश्लेष्मविबन्धार्शोगुल्मप्लीहविनाशनौ ॥ २२ ॥
(सु. सू. अ. ४६) ।

सज्जीखार तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, क्लेदन करनेवाला, पाचक, ग्रन्थि और व्रणशोथका विदारण करनेवाला, दाह करनेवाला, दीपन, छेदन और अग्नितुल्य है (चरक); सज्जीखार और जवाखार उष्णवीर्य तथा कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहवृद्धिका नाश करनेवाला है (सुश्रुत)।

टङ्कणक्षारः ।

टङ्कणनामानि ।

नाम—(सं.) टङ्कण, सौभाग्य; (हिं.) सुहागा; (बं.) सोहागा; (म.) टांकणखार; (गु.) टंकणखार, खडियो खार; (फा.) तं(तिं)कार; (अं.) बोरेक्स (Borax) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—तिब्बत, नेपाल और ईरानमें खारे सरोवरोंके किनारे जमे हुए दानोंके आकारमें टङ्कण पाया जाता है। टंकणके शुद्ध टुकड़े मिलें तो उनको कपड़ेसे खूब पोंछ, भीतरसे साफ की हुई लोहेकी कड़ाहीमें अग्निपर चढ़ा कर उसकी लाजा (लावा-खील) बना ले। खानेके काममें इस प्रकार शुद्ध किये हुए टंकणका प्रयोग करे। लेप-मलहम आदिमें विना फुलाए हुए टंकणका प्रयोग करे। यदि उसमें धूल आदि मिलें हों तो उसको जलमें घोल कर एक दिन रहने दे। दूसरे दिन ऊपरका जल निथार, उसको कपड़ेसे छान कर कड़ाहीमें मंदी आँच पर पकावे। जब कुछ जल शेष रहे तब उसको धूपमें सुखा कर शुष्क कर ले।

टङ्कणगुणाः।

टङ्कणः कटुरुष्णश्च रूक्षस्तीक्ष्णश्च सारकः।
कफविश्लेषणो हृद्यो वातामयनिषूदनः॥ २३॥
कासश्वासहरः कामं स्थावरादिविषापहः।
अग्निदीप्तिकरश्चापि भृशमाध्माननाशनः॥ २४॥
स्त्रीपुष्पजननो बल्यो विविधव्रणसूदनः।
पित्तकृच्च समाख्यातो मूढगर्भप्रवर्तकः॥ २५॥

सुहागा कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, सारक, कफनिःसारक, हृद्य, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, आर्तवजनन, बल्य, पित्तकारक, मूढगर्भप्रवर्तक तथा वातरोग, कास, श्वास, विष, आध्मान और नाना प्रकारके व्रणोंका नाशक है। **नव्यमत**—टङ्कण शैत्यकारक, मूत्रल, रजोनिःसारक, गर्भाशयसंकोचक, अम्लनाशक, जीवाणुनाशक, स्थानिक अव-सादक और पचननिवारक है। गर्भाशयकी संकोचनशक्तिकी क्षीणताके कारण प्रसवमें विलम्ब होता हो तो अर्गटके साथ टंकणका प्रयोग करते हैं। टंकणका चूर्ण शहदमें मिलाकर मुखव्रण(मुंहके छाले)में लगानेसे लाभ होता है। मुखव्रणमें सुहागा गरम जलमें मिला कर कुल्ले कराये जाते हैं। सुजाक और श्वेत प्रदरमें टंकणद्रव(टंकण ५ ग्रेन, जल १ औंस) की उत्तरबस्ति देनेसे लाभ होता है। योनिकण्डूयनमें टंकणद्रवसे प्रक्षालन करनेसे लाभ होता है। आयुर्वेदमें टंकणको वत्सनाभके विषका निवारण माना गया है।

स्फटिका।

स्फटिकानामानि।

नाम—स्फटिका, तुवरी, काङ्क्षी, सौराष्ट्री; (हिं.) फिटकिरी; (बं.) फट्किरि; (म.) फटकी; (गु.) फटकड़ी; (अ.) शिब्ब; (अं.) एलम् (Alum)।

वर्णन—बाजारमें फिटकिरी दो प्रकारकी मिलती है-(१) सफेद और (२) ललाई लिये सफेद। प्राचीन समयमें यह सौराष्ट्र (कच्छ) में बनाई जाती थी, इसलिये इसको **सौराष्ट्री** नाम दिया गया है। बाह्यप्रयोगके लिये कच्ची फिटकिरीका प्रयोग करना

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चाहिये । खानेके लिये स्वच्छ लोहेकी कड़ाहीमें अग्नि पर फुला कर उसका प्रयोग करना चाहिये । फिटकिरीका सत्त्वपातन करनेसे सत्त्वरूपमें **अॅल्युमिनियम्** लोह प्राप्त होता है।

स्फटिकागुणाः ।

ईषदम्ला समधुरा कषाया व्रणरोपणी ।
श्वित्रापहा ग्राहिणी च रुधिरस्रावरोधिनी ।
मुखरोगहरा केश्या तथा संकोचकारिणी ॥ २६ ॥

फिटकिरी कुछ अम्ल और मधुर, कषाय, व्रणका रोपण करनेवाली, ग्राही, संकोचक, रक्तस्रावको रोकनेवाली, केशके लिये हितकर, तथा श्वित्र और मुखरोगोंका नाश करनेवाली है ।

गुदभ्रंश और योनिभ्रंशमें फिटकिरीके द्रवकी पिचकारी देनेसे लाभ होता है । नेत्राभिष्यन्दमें १ रत्ती फिटकिरी अर्क गुलाबमें मिला कर उसकी २-४ बूँदें नेत्रमें डालने से आँखकी ललाई और पीड़ा कम होती है । नकसीरमें नाकमें फिटकिरीका चूर्ण फूँकने या द्रव डालनेसे रक्त आना बन्द होता है । कुकुर खाँसी (Whooping Cough) में फुलाई हुई फिटकिरीका चूर्ण २-३ रत्ती शहदमें मिलाकर चटानेसे लाभ होता है । शीतज्वरमें फुलाई हुई फिटकिरीका चूर्ण ५ रत्ती मिश्री मिला कर ज्वरवेगके पूर्व ३-४ बार देनेसे ज्वरकी बारी रुकती है ।

पापड़खार ।

नाम—(सं.) पर्पटक्षार; (हिं., म., गु.) पापड़खार; (अ.) बोरक; (फा.) बूरे अरमनी ।

वर्णन—यह क्षारयुक्त भूमिसे प्राप्त होता है और कृत्रिम बनाया भी जाता है । इसका पापड़ बनानेमें प्रयोग करते हैं इसलिये इसको **पापड़खार** कहते हैं । जो पापड़खार सफेद, हलका, जालीदार और शीघ्र टूटनेवाला हो वह अच्छा समझा जाता है ।

गुण-कर्म-वातानुलोमन, मूत्रल, सारक, अम्लतानाशक, विलयन और क्षारकर्मकर है । इसको सेंक कर छाछके साथ खानेसे कामलारोग अच्छा होता है । जीरे और सोंठके साथ चूर्ण बना कर जलके साथ खानेसे पेटका अफारा और दर्द दूर होता है । समभाग पापड़खार और चूना जलमें पीस कर मसे(मशक)पर लगानेसे मसा निकल जाता है । पके हुए व्रणशोथ(फोड़े)पर लगानेसे शोथका विदारण होता है ।

सौरक्षार ।

नाम—(सं.) सौरक्षार, सूर्यक्षार, कर्पूरशिलाजतु, श्वेतशिलाजतु; (हिं.)

१ "पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु ।" (र. चू. अ. १०) । "वह्न्युत्तेजनमुज्ज्वलं यदपरं मूत्रामयिभ्यो हितम् ।" (रसपद्धति) । यदपरं श्वेतं शिलाजतु तद्वह्न्युत्तेजनम् । वह्निशब्देनात्र अग्निशस्त्राणि ग्राह्याणि । तत्रत्याग्नेः प्रदीपनं 'सोरा' इति प्रसिद्धमग्निबाणेषु प्रयुज्यते । तस्य पाकेन स्फटिकाकाराः शलाकाः क्रियन्ते । उत्पत्तिस्तु मृत्तिकाविशेषाज्जलविशेषाच्च ज्ञेया ।" (रसपद्धतिटीका) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शोरा, कलमी शोरा; (बं.) सोरा; (म.) सोराखार; (गु.) सुरोखार; (अ.) अबूकर; (फा.) शोरः; (अं.) पोटेसिअम् नाईट्रेट (Potassium Nitrate)।

वर्णन—शोरेके सफेद रंगके चमकदार छःपहल लंबे स्फटिक (क्रिस्टल-कलम) होते हैं। इसका स्वाद क्षारीय होता है और इसको मुँहमें डालनेसे ठंढापन मालूम होता है। शोरेको अग्निपर रखनेसे वह जलता है, इसलिये आतिशबाजीमें इसका उपयोग करते हैं।

सौरक्षार(कर्पूरशिलाजतु)गुणाः ।

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ २७ ॥
एलातोयेन संभिन्नं शुष्कं शुद्धिमुपैति तत् ।
नैतस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ २८ ॥ (र. चू. अ. १०)

कर्पूरशिलाजतु (शोरा) मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है । शोरेको काचपात्रमें छोटी इलायचीके चतुर्गुण जल(हिम)में घोल कर ४–६ घंटा रहने दे। पीछे ऊपरके निथरे हुए जलको दूसरे काचपात्र(तश्तरी)में कपड़ेसे छान कर धूपमें सुखा ले । इस प्रकार शुद्ध किये हुए शोरेका औषधके लिये प्रयोग करे। इसका मारण या सत्त्वपातन नहीं होता।

शोरा मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, ज्वरहर, श्लेष्महर और शोथहर है।

★

रत्नविज्ञानीयाध्यायोऽष्टमः ।

माणिक्यनामानि ।

नाम—(सं.) माणिक्य, पद्मराग, सौगन्धिक; (हिं.) मानिक; (बं.) माणिक, चुणी; (म.) माणी(णि)क; (गु.) माणेक; (अ.) याकूत, याकूत सुर्ख; (अं.) रूबी (Ruby)।

वर्णन—बर्मा, सीलोन, स्याम आदिमें मानिककी खाने हैं। यह कुरुविन्द जातिका महारत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ४ और काठिन्य ९ है। जो माणिक्य कंदहारी अनारके दाने अथवा लाल कमल या जपाके फूल जैसा रक्तवर्ण, स्वच्छ, स्निग्धस्पर्श और व्रण-छेदरहित हो वह उत्तम होता है। मानिक मुख्यतया ॲल्युमिनियम् और ऑक्सिजनका यौगिक है। इसमें लोहे और क्रोमियमके अल्प मिश्रणसे लाल रंग आता है। **चुन्नी-तांबडा** (गार्नेट् Garnet) और लाल (स्पाइनेल् Spinel) को भी मानिककी हलकी जाति मानते हैं। मानिकको सूर्य ग्रहका रत्न माना जाता है।

---

१ रत्नोंको संस्कृतमें **रत्न** या **मणि**, अरबीमें **जवाहर** और अंग्रेजीमें **प्रेशस् स्टोन्** (Precious stone) कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

माणिक्यगुणाः ।

माणिक्यं मधुरं स्निग्धं वृष्यं हृद्यं च दीपनम् ।
मेध्यं रसायनं बल्यं वातपित्तक्षयार्तिनुत् ॥ १ ॥

माणिक्य मधुर, स्निग्ध, वाजीकर, हृदयको बल देनेवाला, दीपन, मेध्य, बलकारक, रसायन तथा वात, पित्त और क्षयको दूर करनेवाला है ।

यूनानी मत—माणिक्य समशीतोष्ण, दूसरे दर्जेमें खुश्क, हृदय और मस्तिष्कको बलप्रद, रक्तस्तम्भन, प्राकृत देहाग्निका संरक्षक, विषनाशक तथा हृत्स्पन्दन, भ्रम, उन्माद, उरःक्षत, राजयक्ष्मा और अन्यथाज्ञानको दूर करता है । दृष्टिदौर्बल्यमें इसका अंजन करते हैं ।

नीलम् ।

नाम—(सं.) नील; (हिं., म.) नीलम; (गु.) नीलम, शनि; (अ.) याकूत कबूद; (अं.) सॅफायर (Sapphire) ।

वर्णन—कश्मीर (जम्मू), बर्मा, स्याम और सीलोनमें नीलम उत्पन्न होता है। नीलम कुरुविन्द जातिका महारत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ४ और काठिन्य ९ है। नीलमके दो भेद होते हैं—(१) **शक्र(इन्द्र)नील** और (२) **जलनील** । जो नीलम गाढ़ा नीला और भारी हो वह **शक्रनील** होता है, वह श्रेष्ठ है तथा जो सफेदाई लिये नीला तथा वजनमें हलका हो वह **जलनील** होता है। नीलम ॲल्युमिनियम् और ऑक्सिजनका यौगिक है । इसमें कोबाल्ट अल्प मात्रामें मिला रहेनेसे इसका नीला रंग होता है। जो नील गहरे नील वर्णका, स्वच्छ, स्निग्धस्पर्श और तेजस्वी (पानीदार) हो वह उत्तम होता है। नीलमको शनि ग्रहका रत्न माना जाता है ।

नीलगुणाः ।

कासश्वासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।
बल्यं मेध्यं विषहरं हृद्यं चैव रसायनम् ॥ २ ॥

नीलम वाजीकर, दीपन, बलकारक, मेध्य, हृद्य, विषहर, रसायन तथा तीनों दोष, श्वास और कासको दूर करनेवाला है ।

यूनानीमत—नीलम पहले दर्जेमें गरम, दूसरे दर्जेमें रूक्ष, मनको प्रसन्न करनेवाला, हृदय-नेत्र और मस्तिष्कको शक्ति देनेवाला तथा दिलकी धड़कन और अन्यथाज्ञानको दूर करनेवाला है ।

पुष्परागम् ।

नाम—(सं.) पुष्पराग; (हिं.) पुखराज; (म., गु.) पोखराज; (बं.) पोखराज; (फा.) याकूत जर्द, (अं.) टोपेझ् (Topaz) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—इसका उत्पत्तिस्थान उत्तर एशिया और बर्मा है । यह कुरुविन्द जातिका महारत्न है । इसका विशिष्टगुरुत्व ३½ और काठिन्य ८ होता है । यह ॲल्युमिनियम् और सिकता(सिलिका)का यौगिक है । जो पुखराज चंपा या अमलतासके फूलके समान पीतवर्ण, स्निग्धस्पर्श, छिद्ररहित और चमकदार (पानीदार) हो वह उत्तम होता है । यह गुरुग्रहका रत्न माना माता है ।

पुष्पशगगुणाः ।

पुष्परागं विषच्छर्दिकफवाताग्निमान्द्यनुत् ।
दाहकुष्ठप्रशमनं दीपनं लघु पाचनम् ॥ ३ ॥ (र. चू. अ. १२)

पुखराज दीपन, लघु, पाचन तथा विष, वमन, कफ, वात, अग्निमान्द्य, दाह और कुष्ठका प्रशमन करनेवाला है ।

गोमेदम् ।

नाम—(सं., हिं., बं., गु., म.) गोमेद; (अं.) सिनॅमोन् स्टोन् (Cinnamon Stone), हेसोनाइट् Hessonite) ।

वर्णन—यह रत्न गायके मेद(चरबी)के समान वर्णका होता है । इसलिये इसको **गोमेद** कहा जाता है 'गोमेदःसमरागत्वाद्गोमेदं रत्नमुच्यते' (र. चू. अ. १२) । यह राहु ग्रहका रत्न माना जाता है और इसकी महारत्नोंमें गणना होती है । जो गोमेद स्वच्छ, गोमूत्रके समान वर्णवाला, स्निग्धस्पर्श, छिद्ररहित और पानीदार हो वह अच्छा समझा जाता है । गोमेदका विशिष्ट गुरुत्व ३½ और काठिन्य ७¼ होता है ।

गोमेदगुणाः ।

गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥ ४ ॥ (र. चू. अ. १२)

गोमेद दीपन, पाचन, रुचिकर, त्वचाके लिये हितकर, बुद्धिको बढ़ानेवाला और कफ, पित्त, क्षय और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है ।

वैदूर्यम् ।

नाम—(सं.) वैडू(दू)र्य, बिडालाक्ष; (हिं.) लहसुनिया; (म.) लसण्या, मार्जारनेत्री; (गु.) लसणियो; (अं.) कॅटस् क्षाय् (Cat's eye) ।

वर्णन—वैदूर्यका रंग और देखाव बिल्लीकी आँखके जैसा होता है । इसलिये इसको **बिडालाक्ष** नाम दिया गया है । वैदूर्यकी घटनामें मुख्यतः ॲल्युमिनियम् और बेरिलियम् तथा अल्प प्रमाणमें अयस् और क्रोमियम् ये तत्त्व होते हैं । जो वैदूर्य कुछ श्यामता और हरापन लिये श्वेतवर्णका, चिकना, छिद्ररहित और चमकदार हो तथा जिसके मध्यमें १-३ सूतके जैसी चमकती हुई रेखायें दीखती हों वह श्रेष्ठ होता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वैदूर्यको केतुग्रहका रत्न माना जाता है । वैदूर्यका विशिष्ट गुरुत्व ३½ और काठिन्य ८½ है ।

वैदूर्यगुणाः ।

वैदूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम् ।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम् ॥ ५ ॥

(र. चू. अ. १२)

वैदूर्य दीपन, सारक, बुद्धि-आयुष्य और बलको बढ़ानेवाला तथा रक्तपित्त और पित्तप्रधान रोगोंको दूर करनेवाला है ।

तार्क्ष्यम् (मरकतम्) ।

नाम—(सं.) तार्क्ष्य, मरकत; **(हिं.)** पन्ना; **(म.)** पाच; **(गु.)** पानुं; **(अ.)** जमुर्रद; **(अं.)** एमेरॅल्ड् (Emerald) ।

वर्णन—पन्ना हरे रंगका प्रसिद्ध महारत्न है । पन्नाको बुध ग्रहका रत्न माना जाता है । पन्ना सिलिका, ॲल्युमिना, बेरिलियम् और ऑक्सिजन्का यौगिक है । जो पन्ना बाँस या केलेके पत्ते जैसे हरे रंगका, छिद्र और बुद्बुदरहित, स्निग्धस्पर्श और तेजस्वी हो उसको अच्छा माना जाता है । पन्नेका विशिष्ट गुरुत्व ३॥ और काठिन्य ७॥ होता है ।

तार्क्ष्यगुणाः ।

ज्वरच्छर्दिविषश्वाससन्निपाताग्निमान्द्यनुत् ।
दुर्नामपाण्डुशोथघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्धनम् ॥ ६ ॥ (र. चू. अ. १२)

पन्ना ओजको बढ़ानेवाला तथा ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्निपात, अग्निमान्द्य, पाण्डुरोग और शोथका नाश करनेवाला है ।

वज्रम् ।

नाम—(सं.) वज्र, कुलिश, हीरक, भिदुर; **(हिं.)** हीरा; **(बं.)** हीरा; **(म.)** हिरा; **(गु.)** हीरो; **(अ.)** अल्मास; **(अं.)** डायमन्ड् (Diamond) ।

वर्णन—हीरा प्रसिद्ध महारत्न है । हीरेको शुक्र ग्रहका रत्न माना जाता है । हीरेका विशिष्ट गुरुत्व ३½ और काठिन्य १० होता है ।

वज्रखण्डानां चूर्णीकरणम् ।

हीरकं परिसंतप्तं सुधाक्षीरे निषेचितम् ।
शतवारं प्रयत्नेन कुलत्थानां शृते तथा ॥ ७ ॥
ततस्तु वापितं शुद्धे सूते चूर्णत्वमाप्नुयात् ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हीरेके टुकड़ोंको दृढ मूषामें अंगारवर्ण हो जायँ इतना तपा-तपा कर थूहरके दूध, कुलथीके क्वाथ और शुद्ध पारद-इन प्रत्येकमें एक-एक सौ बार बुझानेसे वे चूर्ण बनाने योग्य हो जाते हैं । पीछे उनको लोहेके इमामदस्तेमें कूट, सूक्ष्म रेशमी कपड़ेसे छाने ले ।

वज्रमारणम् ।

हीरकं रससिन्दूरं शिलां गन्धं च तालकम् ॥ ८ ॥
कुलत्थक्वाथसंपिष्टं त्रिदिनं कृतगोलकम् ।
संशुष्कं तु शरावस्थं रुद्धं गजपुटे पचेत् ।
चतुर्दशपुटैरेवं हीरकं मृतिमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त विधिसे बनाये हुए हीरेके सूक्ष्म चूर्णको लोहेके खरलमें समभाग रससिन्दूर, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल और शुद्ध गन्धकके साथ तीन दिन कुलथीके क्वाथमें मर्दन कर, एक गोला बना, सुखा, शरावसंपुटमें रख, संपुटके सन्धिस्थान पर कपड़मिट्टी करके गजपुटमें पकावे । ऐसे चौदह पुट देनेसे हीरेकी भस्म बनती है ।

रत्नानां शोधनम् ।

अम्लेन वै शुद्ध्यति माणिकाख्यं जयन्तिकायाः स्वरसेन मौक्तिकम् ।
क्षारेण सर्वेण हि विद्रुमं च गोदुग्धतस्तार्क्ष्यमुपैति शुद्धिम् ।
धान्यस्याम्लैः पुष्परागस्य शुद्धिं कौलत्थे वै क्वाथ्यमानं हि वज्रम् ॥ १० ॥
नीलं नीलीपत्रजातै रसैश्च गोमेदं वै रोचनाभिस्तथैव ।
वैदूर्यं चेदुत्तमाक्वाथयुक्तं यामैकं वै स्वेदितं शुद्धिमेति ॥ ११ ॥
(र. प्र. सु. अ. ७)

माणिक्यको नीमू आदि किसी अम्ल फलके स्वरसमें, मोतीको जयन्ती (जैत) के स्वरसमें, प्रवालको सजीखार-जौखार आदि किसी क्षारके घोलमें, पन्नेको गायके दूधमें, पुखराजको धान्याम्ल(खट्टी काँजी) में, हीरेको कुलथीके क्वाथमें, नीलमको नीलके पत्रस्वरसमें, गोमेदको गोरोचनाके घोलमें और वैदूर्यको त्रिफलाके क्वाथमें एक प्रहर दोलायन्त्रमें स्वेदन करने(पकाने)से वह शुद्ध होता है ।

रत्नानां मारणविधिः ।

लकुचद्रावसंपिष्टशिलागन्धकतालकैः ।
वज्रं विनाऽन्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ १२ ॥
(र. चू. अ. १२)

शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल और जिस रत्नकी भस्म बनानी हो उसका सूक्ष्म कपड़छान किया हुआ चूर्ण-इनको लकुच(बड़हल)के स्वरसमें तीन दिन मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, टिकियोंको शरावसंपुटमें रख, संपुटकी सन्धिको कपड़मिट्टी करके गजपुटमें पकावे । ऐसे आठ पुट देनेसे हीरेको छोड़ कर अन्य रत्नोंकी (माणिक, नीलम, पुखराज, पन्ना, गोमेद और वैदूर्यकी) भस्म होती है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य—यदि बड़हल न मिले तो जम्बीरी या कागजी नीमूका स्वरस लेना चाहिये । मैनसिल, गन्धक और हरतालका प्रमाण रत्नके समान होना चाहिये । रत्नभस्म चन्द्रिकारहित और आँखमें लगानेके अञ्जन जैसी सूक्ष्म होनी चाहिये ।

उपरत्नानि ।

राजावर्तः ।

राजावर्तनामानि ।

नाम –(सं.) राजावर्त, नीलाश्मा; (अ., फा., हिं.) लाजवर्द; (अं.) लॅपिस् लेझुली (Lapis Lazule) ।

वर्णन—यह प्रसिद्ध उपरत्न है । यह विशेषतः मध्य एशियामें बदक्शामें उत्पन्न होता है । जो लाजवर्द कुछ ललाई और हरापन लिये नीले रंगका, भारी, कड़ा, स्वच्छ और चमकदार हो, जिस पर सुनहले छींटे हों तथा जिसके बीचमें पत्थरका अंश न हो वह अच्छा समझा जाता है । इसका विशिष्ट गुरुत्व २½ और काठिन्य ५½ होता है ।

राजावर्तगुणाः ।

प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः ।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ १३ ॥

(र. चू. अ. १०)

लाजवर्द दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन तथा प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डुरोग, कफ और वातका नाश करनेवाला है ।

यूनानीमत—धोया हुआ लाजवर्द पहले दर्जेमें शीत और दूसरे दर्जेमें खुश्क, सौमनस्यजनन, गाढ़े दोषोंको शरीरसे बाहर निकालनेवाला, ग्राही, हृद्य, रक्तशोधक, आर्तवजनन और सौदावी दोषनाशक है । बाह्यप्रयोगसे लेखन और रूक्षण है । लाजवर्द उन्माद, नेत्राभिष्यन्द, नकसीर, फिरंगोपदंश और सौदावी रोगोंमें लाभप्रद है ।

राजावर्तशोधनम् ।

गोमूत्रेणाथ क्षारैश्च तथाऽम्लैः स्वेदिताः खलु ।
त्रिवारेण विशुद्ध्यन्ति राजावर्तादिधातवः ॥ १४ ॥

गोमूत्र, क्षारके घोल और खट्टे फलोंके रसमें एक-एक प्रहर दोलायन्त्रमें स्वेदन करनेसे लाजवर्द शुद्ध होता है ।

राजावर्तमारणम् ।

भृङ्गाम्बुगन्धकोपेतो राजावर्तो विमर्दितः ।
सप्तवारं हि पुटितो राजावर्तो मृतो भवेत् ॥१५॥ (र. चू. अ. १०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सम भाग शुद्ध लाजवर्द और शुद्ध गन्धकको भँगरेके स्वरसमें मर्दन करके अर्ध गजपुटके अग्निमें पकावे। ऐसे सात पुट देनेसे लाजवर्दकी भस्म होती है।

वक्तव्य—यूनानी वैद्य लाजवर्दको जलसे धोकर उसका प्रयोग करते हैं। **लाजवर्दको धोनेकी विधि**–लाजवर्दके चूर्णको खरलमें खूब बारीक पीस कर जलमें घोले। इससे इसके अत्यन्त सूक्ष्म अंश जलमें मिलकर फैल जायँगे और मोटे अंश पानीके तले बैठ जायँगे। सूक्ष्म घटकसहित उस पानीको अन्य पात्रमें डाल कर स्थिर छोड़ दे, जिससे सूक्ष्म अंश तलस्थित हो जायँ। मोटे अंश जो जलमें घोलते समय तलमें बैठ गये थे उनको पुनः खूब बारीक पीस कर जलमें घोले और जलको अलग करते जायँ, यहाँतक कि समस्त भाग जलमें घुल कर अलग हो जायँ और मोटे बिल्कुल न रहें। इस प्रकार धोये हुए लाजवर्दको **लाजवर्द मग्सूल** कहते हैं। हजरुल् यहुद, शादनज, चूना, गिले अरमनी आदि पत्थरों और मिट्टियोंको इसी प्रकार धोया जाता है। यूनानी वैद्य इस प्रकार धोये हुए लाजवर्दकी अर्क गुलाब या अर्क केवड़ेमें पिष्टि बनाकर उसका उपयोग करते हैं।

संगे यशब।

नाम—(हिं.) संग यशब, हौलदिली: (अ.) यशब, हजरुल्यशब (-फ); (फा.) यशम, संगे यशब; (अं.) जेड (Jade)।

वर्णन—यह एक अति कठिन पत्थर है जो यारकंद और लद्दाखसे कश्मीरद्वारा भारतवर्षमें आता है। यह जैतूनी, पिलाई लिये हरा, हरा और हरापन लिये सफेद रंगका होता है है। जो जैतूनी रंगका, साफ और सख्त हो वह अच्छा समझा जाता है। इसकी खरल बनती है, जो रत्नोंकी पिष्टी बनानेके लिये अच्छी समझी जाती है।

गुणकर्म—यूनानीमत—संगयशब पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें रूक्ष तथा हृदय और आमाशयको शक्ति देनेवाला है। हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पन्दन, आमाशयशूल, आमाशयदौर्बल्य, प्रवाहिका, मूत्रदाह और अश्मरीमें इससे लाभ होता है। यह आन्तरिक जख्मोंको दूर करता है और रक्त आना बन्द करता है। विशेषतया हृदयको शक्ति देनेके लिये इसकी भस्म या पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है। **मात्रा**-भस्म २-४ रत्ती; पिष्टी २-८ रत्ती।

कुर्स संगयशब—संगयशब और प्रवालकी पिष्टी, पिस्तेका बाहरका छिलका (पोस्त बेरून पिस्ता), रूमीमस्तगी, अबरेशम कतरा हुआ, छोटी इलायचीके बीज प्रत्येक तीन भाग और वंशलोचनका चूर्ण ५ भाग सबको बिही या सेबके रसकी रसक्रिया (रुब्ब)में छः घंटा पीसकर १॥-१॥ माशेकी टिकियाँ बना ले। १-२ टिकियाँ दिनमें ३-४ बार अर्क सौंफके साथ देनेसे पित्तप्रधान अतिसारमें लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अकीक।

नाम—(अ., फा., हिं.) अकीक; (अं.) ॲगेट् (Agate)।

वर्णन—यह रंगीन, कड़ा और मूल्यवान् पत्थर (उपरत्न) है। यह कई रंगोंका होता है। रक्तवर्ण अकीक उत्तम माना जाता है। इसकी घटनामें ७० से ९० प्रतिशत सिकता (सिलिका) और न्यूनाधिक प्रमाणमें ॲल्युमिना, ऑक्साइड् ऑफ् आयर्न् (Oxide of Irn) किंवा ऑक्साइड् ऑफ् मँगेनीझ् (Oxide of manganese) होता है। संगे सुलेमानी (ऑनिक्स् (Onyx), ओपल (Opal) और लहसुनिया (वैडूर्य) ये भी अकीककी जातिके ही पत्थर हैं। अकीककी पिष्टी या भस्म बनाकर उपयोग किया जाता है।

अकीकगुणाः।

शीतो रूक्षश्चित्तदोषेषु गीतो रक्तस्तम्भी दार्ढ्यकारी द्विजानाम्।
हेम्ना साकं साधितोऽतीव वृष्यः श्लक्ष्णः शोणः शस्यते कोऽप्यकीकः॥१६

(सि. भै. म. माला)

अकीक शीतवीर्य, रूक्ष, रक्तस्तम्भन, दाँतोंको दृढ करनेवाला और मानसिक रोगोंमें लाभ पहुंचानेवाला है। सुवर्णभस्म या सोनेके वरक (१/१६ भाग) मिलाकर बनाई हुई अकीककी पिष्टी अति वृष्य होती है।

यूनानी मत—अकीक दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष, हृद्य, रक्तस्तम्भन, अश्मरीनाशक और नेत्रके लिये हितकर है। चार रत्ती अकीकपिष्टी सेबके शर्बतके साथ सेवन करनेसे हृत्स्पन्दन दूर होता है और हृदयको शक्ति प्राप्त होती है। रक्तस्राव विशेषतः दुश्चिकित्स्य रजःस्रावमें अकेले या अन्य रक्तस्तम्भन औषधोंके साथ इसके सेवनसे विशेष लाभ होता है। इसके अंजन करनेसे दर्शनशक्ति बढ़ती है। अकीककी भस्म दाँतोंपर मलनेसे मसूढ़ोंसे रक्त आना बन्द होता है और मसूढ़े दृढ़ होते हैं। इसकी भस्म उत्तमाङ्गोंको बलप्रद और वाजीकर है। **मात्रा—**२-४ रत्ती।

स्फटिकः।

नाम—(सं.) स्फटिक, शिवरत्न; (हिं.) स्फटिक; (म.) स्फटिक, काचमणि; (फा.) बिल्लोर; (गु.) फटक, बिलोर; (अं.) रोक् क्रिस्टल (Rock Crystal), पेबल् (Pebal)।

वर्णन—स्फटिक नियताकार छःपहलु, षट्कोण, शंक्वाकार और चिकना होता है। काचपर घिसनेसे काचको काटता है। स्फटिक प्रायः श्वेतवर्ण होता है, परन्तु कभी कभी रंगीन भी मिलता है। स्फटिकका विशिष्टगुरुत्व २.६ से २.८ और काठिन्य ८ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्फटिकगुणाः ।

स्फटिको मधुरो बल्यस्तुषारसमशीतलः ।
रक्तपित्तप्रशमनो ज्वरदाहादिनाशनः ॥ १७ ॥

(र. तं. २३ त.)

स्फटिक मधुर, बलकारक, अति शीतल तथा रक्तपित्त, ज्वर, दाह आदिका नाश करनेवाला है।

स्फटिककी भस्म या पिष्टी बना कर उपयोग किया जाता है। **मात्रा**—२-४ रत्ती।

सूर्यकान्तः ।

नाम—(सं.) सूर्यकान्त, अग्निगर्भ; (हिं., म.) सूर्यकान्तमणि; (अं.) सन् स्टोन् (Sun stone)।

वर्णन—सूर्यकान्त स्फटिककी जातिका एक उपरत्न है।

सूर्यकान्तगुणाः ।

रविकान्तो भवेदुष्णो निर्मलश्च रसायनः ।
वातश्लेष्महरो मेध्यो धारणाद्रवितुष्टिदः ॥ १८ ॥

(आ. प्र. अ. १३)।

सूर्यकान्त उष्णवीर्य, मेध्य, रसायन, धारण करनेसे सूर्यको प्रसन्न करनेवाला तथा वात-कफनाशक है।

सूर्यकान्तकी पिष्टी या भस्म बनाकर उपयोग किया जाता है।

चन्द्रकान्तः ।

नाम—(सं.) चन्द्रकान्त; (अं.) मून् स्टोन् (Moon stone)।

जयपूरके जौहरी लोग इसको **गोदंता** कहते हैं।

वर्णन—यह स्फटिककी जातिका उपरत्न है। पूर्णचंद्रकी किरणोंके सामने धरनेसे इसमेंसे नीचेकी ओर पानी झरता है, ऐसी मान्यता है।

चन्द्रकान्तगुणाः ।

चन्द्रकान्तोऽतिशिशिरः स्निग्धः पित्तापहः परम् ।
रक्तपित्तप्रशमनो हृद्यो दाहज्वरापहः ॥ १९ ॥

चन्द्रकान्त शीतवीर्य, स्निग्ध, हृद्य तथा दाह, पित्तविकार, ज्वर और रक्तपित्तका प्रशमन करनेवाला है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पिरोजा ।

नाम—(हिं.) पि(पे)रोजा; (फा.) फी(पी)रोजः; (अं.) टर्कोइझ़ (Turqucise)।

वर्णन—पेरोजा ईरानसे भारतवर्षमें आता है। यह पिलाई लिये हरा या हरापन लिये नीले रंगका होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २.७५ और काठिन्य ६ है। रासायनिक दृष्टिसे यह ॲल्युमिनियम्, किंचित् लोह और ताँबेका फॉस्फेट् है।

पेरोजागुणाः ।

पेरोजकं तु तुवरं मधुरं दीपनं सरम् ।
हृद्यं विषहरं शीतं नेत्ररोगनिषूदनम् ॥ २० ॥

पेरोजा कषाय, मधुर, शीतवीर्य, दीपन, सारक, हृद्य तथा विष और नेत्रके रोगोंको दूर करनेवाला है। इसकी भस्म या पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है।

यूनानीमत-पेरोजा पहले दर्जेमें शीत और तीसरे दर्जेमें रूक्ष, हृदय-मस्तिष्क और आमाशयको बल देनेवाला, अश्मरीको तोड़नेवाला तथा अन्त्रव्रण और हृत्स्पन्दनमें लाभ देनेवाला है।

वैक्रान्तः ।

नाम—(सं.) वैक्रान्त; (हिं.) तुरमुरी; (म.) तुरमली, तोरमली; (गु.) तरमरी; (अं.) टुर्मेलिन् (Tourmaline)।

वक्तव्य—आजकल भारतवर्षके अधिकांश वैद्य वैक्रान्तके नामसे तुरमलीका प्रयोग करते हैं। पंजाबके कई औषधविक्रेता वैक्रान्तके नाम स्फटिक बेचते हैं। स्व. वा. डॉ. **वामन गणेश देसाईने** फ्लोर् स्पार् (Flour spar), फ्लोराइट् (Flourite), को वैक्रान्त माना है और अपने मतके समर्थनमें कई प्रमाण भी दिये हैं (देखें **भारतीय रसशास्त्र** पृ. १९१-१९४)। श्रीयुत आयुर्वेदाचार्य **दत्तात्रय अनन्त कुळकर्णी**जीने अपनी रसरत्नसमुच्चयकी व्याख्या(पृ. २७ तथा २९) में इस मतका समर्थन किया है। रसग्रन्थोंमें वैक्रान्तका उल्लेख **महारस[1]** और **उपरत्न[2]** दोनोंमें पाया जाता है। मुझे मालूम होता है कि-महारसोंमें परिगणित वैक्रान्त मँगेनीझ़ (Manganese) और उपरत्नोंमें परिगणित वैक्रान्त **तुरमली** या **फ्लोर् स्पार्** है। रसहृदयतन्त्र (अ. १०, श्लो. ११) में वैक्रान्तसे लोहसदृश सत्त्व निकलता है—"पतति वै सत्त्वम् । अभ्रवैक्रान्तकान्तप्रभृतीनां तत्र लोहनिभम् ।" ऐसा लिखा है।

---

१ "महारसाः स्युर्धनराजवर्तवैक्रान्तसस्या विमलाद्रिजाते । तुत्थं च ताप्यं च रसायनास्ते सत्त्वानि तेषाममृतोपमानि" (र. चू. अ. १०)। २ "वैक्रान्तं सूर्यकान्तश्च चन्द्रकान्तो नृपोपलः । पेरोजकं च स्फटिकं क्षुद्ररत्नगणो ह्ययम् ॥" (र. तं. २३ त.)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसकी व्याख्यामें टीकाकारने 'वैक्रान्तं रसवैक्रान्तं' ऐसी व्याख्या की है । 'वैक्रान्त' शब्दको टीकाकारने 'रस' शब्द विशेषणरूपमें लगाया है; इससे प्रतीत होता है कि–टीकाकार रसवैक्रान्तसे भिन्न अन्य **उपरत्न**रूप वैक्रान्त भी मानता है । 'लोहनिभं' का टीकाकारने 'मुण्डनिभं' ऐसा अर्थ किया है । मँगेनीझ धातुका स्वरूप भी लोहे जैसा होता है । **चाणक्यने** अपने **कौटलीय अर्थशास्त्र** (आरम्भसे अध्याय ३३) में सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, सीस, त्रपु, तीक्ष्ण और वैकृन्तक इन सात लोहों (Metals) के धातुओं–खनिजोंका वर्णन किया है । वहाँ वैकृन्तक धातुका वर्णन करते हुए लिखा है कि–**"काकाण्ड-भूर्जपत्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः"** । इसकी व्याख्यामें टीकाकारने **'वैकृन्तकधातुः'** इसका अर्थ **वैकृन्तकाख्यलोहविशेषयोनिर्धातुः** (**वैकृन्तक** नामका लोहविशेष जिससे निकलता है ऐसा खनिज) ऐसा किया है । अर्थात् चाणाक्य **वैकृन्तक** नामका स्वतन्त्र लोह मानते थे । मॅन्गेनीझ भारतवर्षमें पुष्कळ प्रमाणमें मिलता है, उसका ज्ञान यहाँके रससिद्धोंको न हो यह संभव नहीं है । महारसके प्रकरणमें वज्रके अभावमें उसके स्थान पर वैक्रान्तका प्रयोग करनेका विधान है । वहाँ **वज्र** शब्दका तीक्ष्ण लोह (फौलाद) ऐसा अर्थ लेकर तीक्ष्ण लोहके अभावमें उसके स्थान पर मॅन्गेनीझका प्रयोग करना चाहिये । उपरत्नके प्रकरणमें जहाँ वज्रके स्थान पर वैक्रान्तका प्रयोग करना चाहिये ऐसा विधान हो वहाँ **वज्र** याने हीरेके अभावमें उसके स्थान पर तुरमलीका प्रयोग करना चाहिये यह अर्थ लेना चाहिये । विद्वान् लोग इस पर विचार करें ।

वैक्रान्तलक्षणं भेदाश्च ।

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ।
श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ॥ २१ ॥
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरः सप्तधा स्मृतः ।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ २२ ॥

(र. चू. अ. १०)

पुनरयं वैक्रान्तकः सप्तधा ।
यद्यस्ति तथाऽपि कृष्णसुषमं तद्वच्मि सर्वात्मना ।
शेषान्न प्रकृतोपयोगविरहाच्छुद्धस्तु कृष्णो घनः ।
षट्कोणो वसुकोणकोऽपि मसृणः

(रसपद्धति पृ. २९)

वैक्रान्त आठ धार, आठ फलक और छः कोणवाला, चिकना, भारी तथा श्वेत, रक्त, पीला, नील, परेवे जैसे रंगका, श्यामवर्ण और काला ऐसा सात भिन्न भिन्न वर्णका अथवा मिश्रित वर्णवाला होता है **'रसेन्द्रचूडामणि'** । वैक्रान्त यद्यपि सात

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रंगका होता है तथापि कृष्णवर्ण वैक्रान्तको छोड़कर अन्य वर्णवाले वैक्रान्त औषधके लिये निरुपयोगी हैं (रसपद्धति) ।

वैक्रान्तशोधनमारणे ।

कुलत्थक्काथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्ध्यति ।
म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवमर्दितः ॥ २३ ॥

वैक्रान्तको कुलथीके क्वाथके साथ दोलायन्त्रमें एक प्रहर पकानेसे वैक्रान्त शुद्ध होता है । समभाग शुद्ध गन्धक और नीमूके रसके साथ मर्दन करके आठ वार अर्ध गजपुटमें पकानेसे वैक्रान्तकी भस्म बनती है ।

वैक्रान्तगुणाः ।

वैक्रान्तस्तु त्रिदोषघ्नः षड्रसो देहदार्ढ्यकृत् ।
पाण्डूदरज्वरश्वासकासयक्ष्मप्रमेहनुत् ॥ २४ ॥

(आ. प्र. अ. १३)

वैक्रान्त तीनों दोषोंको हरनेवाला, छहों रसोंवाला, देहको दृढ़ करनेवाला तथा पाण्डुरोग, उदर, ज्वर, श्वास, कास, राजयक्ष्मा और प्रमेहको दूर करनेवाला है ।

स्व. वा. **डॉ. वामन ग. देसाईने** मँगेनीझके खनिज (धातु) को **कृष्णपाषाण** (ब्लेक् ऑक्साइड् ऑफ् मँगेनीझ् (Black Oxide of Mangane·e) नाम दिया है । कृष्णपाषाणके शोधन और गुण-कर्मके विषयमें **डॉ. देसाई** लिखते हैं कि– कृष्णपाषाणके चूर्णको तीन दिन नीमूके रसकी भावना देनेसे उसकी शुद्धि होती है । कृष्णपाषाण आमाशयके लिये बिस्मथ जैसा शामक है । इससे आमाशयकी श्लेष्मल त्वचा (कला) को बल प्राप्त होता है । यह प्राकृत रक्तका मुख्य घटक होनेसे इससे रक्तकी वृद्धि होती है । रक्त पर इसकी लोहेके समान क्रिया होती है । यह उत्तम आर्तवजनन है । बिस्मथ और लोहेके स्थानपर इसका प्रयोग करते हैं । स्त्रियोंके पाण्डुरोगमें यदि लोह सहन न होता हो और आमाशयका अभिष्यन्द हो तो यह उत्तम गुणकारक होता है । लोहेके स्थानपर फिरंगरोग, वातरक्त, त्वग्रोग, पाण्डुरोग और अशक्तताप्रधान रोगोंमें यह दिया जाता है (भारतीयरसशास्त्र-पृ. ३५०-३५१) ।

कहरुवा ।

नाम—(सं.) तृणकान्तमणि, तृणकान्त; (फा.) कहरुबा; (गु.) केरबो; (म.) केरबा, कहरोबा; (अं.) अंबर् (Amber); (ले.) सक्सिनम् (Succinum) ।

वर्णन—कहरुबा अश्मीभूत राल (Fossil resin) है । **कहरुबा** फारसी शब्द है, जिसका शब्दार्थ है कह=सूखी घास, रुबा=खेंचनेवाला; सूखी घासको खेंचने-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वाला (तृणकान्त)। कहरुवाको गरम कपड़ेपर खूब रगड़नेसे उसमें विद्युत् जागृत होती है। तब यह सूखी घासके तिनके या रूई जैसी हलकी वस्तुके पास ले जानेसे उसको अपनी तरफ खेंच लेता है। इसका काठिन्य २.२॥ और विशिष्टगुरुत्व १.१ है। इसको कपड़े पर रगड़नेसे इससे नीबूके रसकी सी सुगन्ध आती है। रंग इसका हलका पीला या ललाई लिये पीला होता है।

गुण-कर्म-यूनानीमत—कहरुवा अनुष्णाशीत (मोतदिल), दूसरे दर्जेमें रूक्ष, मनको प्रसन्न करनेवाला, हृदय-अन्त्र और आमाशयको बल देनेवाला, संग्राही तथा रक्तस्तम्भन है। हृदयदौर्बल्य, दिलकी धड़कन, नकसीर, रक्तष्ठीवन, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर और उरःक्षतमें इसको अकेला या अन्य उपयुक्त औषधोंके साथ खिलाते हैं। आमाशय और आँतोंको बल प्रदान करनेके लिये इसको मस्तगीके साथ मिलाकर खिलाते हैं। सद्योव्रण पर छिड़कनेसे रक्तस्राव बंद करता है और उसको सुखाता है। **मात्रा**—१-२ माशा। इसका अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है, भस्म नहीं बनाई जाती।

रत्नोंकी भस्म बनानेके विषयमें यूनानी वैद्यों (हकीमों) का मत—

यूनानी वैद्य रत्नोंकी भस्म बनाना अच्छा नहीं समझते। उनका कहना है कि–रत्नोंकी भस्म बनानेसे एक प्रकारका चूना बन जाता है। उस रत्नके सब असली गुण भस्ममें नहीं आते। अतः रत्नोंकी भस्म न बनाकर उसका अतिसूक्ष्म चूर्ण (पिष्टी) बनाकर ही व्यवहार करना चाहिये। हकीम लोग नमक या सोडा बाय् कार्ब मिलाये हुए गरम जलसे और पीछे स्वच्छ जलसे रत्नोंको धो, सुखा, लोहेके हावनदस्तेमें कूट, सूक्ष्म रेशमी कपड़ेसे छान, संगेयशब, अकीक या समाकके पत्थरके खरलमें अर्क गुलाब और अर्क केवड़ेमें जबतक वह सुरमे (नेत्रांजन) जैसा सूक्ष्म न हो जाय तबतक मर्दन कर, छायामें सुखा, रेशमी कपड़ेसे छान कर बनाई हुई रत्न और उपरत्नोंकी पिष्टीका प्रयोग करते हैं। **चरक** और **सुश्रुत**ने प्रवाल, मुक्ता, शंख आदिका चूर्ण बनाकर प्रयोग करनेको लिखा है "प्रवालमुक्ताञ्जनशङ्खचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकोत्थम्।" (सु. उ. तं. अ. ४४ श्लो. २१)। "पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे।" (च. चि. अ. २६)।

मैं रत्नोंकी भस्म इस प्रकार बनाता हूं–रत्नोंको अच्छी सोना गलानेकी मूषामें डाल कर लकड़ीके कोयलोंकी अग्निमें रत्न अंगारवर्ण हो उतना गरम करके ताजे आँवलोंके स्वरसमें ५०-६० बार बुझाएँ। तीन बार बुझानेके बाद आँवलेका स्वरस बदल देना (पहिला फेंक कर नया लेना) चाहिये। पीछे उनका सूक्ष्म चूर्ण बना, रेशमी कपड़ेसे छान, ताजे आँवलोंके स्वरसमें मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा कर अर्ध गजपुटका अग्नि दे। इस प्रकार २०-३० पुट देनेसे खुले लाल रंगकी भस्म बनेगी। उस भस्मको तीन दिन अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें मर्दन कर, छायामें सुखा कर शीशीमें भरलें। **दूसरी विधि**—यदि आँवलेकी मौसिम (ऋतु) न हो और ताजे आँवले न मिलें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तो ऊपर लिखी हुई विधिसे रत्नोंको मूषामें तपाकर अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें ५०-६० बार बुझा, सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण बना कर अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्कमें नेत्रांजन जैसा अति सूक्ष्म चूर्ण न हो तबतक मर्दन कर, छायामें सुखा ले। मुक्ता और प्रवालको छोड़कर अन्य सब प्रकारके रत्नों और उपरत्नोंकी पिष्टी या भस्म इसी विधिसे बनानी चाहिये। **मात्रा**—१–२ रत्ती । **अनुपान**—मधु (शहद), ताजा मक्खन या खमीरा गावज़बान ।

प्रवाल और **मुक्ता** (मोती) की गणना भी रत्नोंमें होती है। परंतु ये दोनों प्राणिज द्रव्य होनेसे उनका वर्णन **द्रव्यगुणविज्ञान-उत्तरार्धके औषधद्रव्यविज्ञान** नामक द्वितीयखण्डके **जाङ्गमद्रव्यविज्ञानीय** नामक तीसरे अध्यायमें किया गया है। प्रवालको मंगल और मुक्ताको चन्द्रग्रहका रत्न माना जाता है।

जिस ग्रहका जो रत्न बताया गया है वह ग्रह जन्मकुण्डली, महादशा या अन्तर्दशामें अनिष्ट स्थानमें रहा हो तो अनिष्टफलकी शान्ति, इष्ट फलकी प्राप्ति तथा उस ग्रहकी प्रसन्नताके लिये उसके उत्तम जातिके रत्नको उसका शरीरको स्पर्श हो उस प्रकार शरीरपर धारण करना चाहिये ।

सब प्रकारके रत्न ओजको बढ़ानेवाले, मनको प्रसन्न करनेवाले तथा समग्र शरीरावयवोंको विशेषतः दिल (हृदय) और दिमाग (मस्तिष्क) को शक्ति देनेवाले हैं।

रत्नप्रधानयोग–जवाहरमोहरा ।

द्रव्य—माणिक्यपिष्टी २ तोला, पन्नाकी पिष्टी २ तोला, नीलमकी पिष्टी २ तोला, मुक्तापिष्टी २ तोला, संगे यशबकी पिष्टी ४ तोला, कहरुबाकी पिष्टी ४ तोला, चाँदीके वरक २ तोला, सोनेके वरक १ तोला, दरियाई नारियलका चूर्ण ४ तोला, अबरेशम कतरा हुआ २ तोला, मृगशृंगभस्म ४ तोला, हाथीदाँतका चूर्ण २ तोला, जदवार खताईका चूर्ण २ तोला, जहरमोहरा खताईकी पिष्टी २ तोला, कस्तूरी १ तोला और अंबर २ तोला ।

निर्माणविधि—अच्छे न घिसनेवाले पत्थरके खरलमें सब पिष्टियाँ और अन्य द्रव्योंका चूर्ण डाल कर सोने और चाँदीका वरक एक-एक करके डालता जावे और मर्दन करता रहे। जब सब वरक अच्छी तरह मिल जायँ तब उसमें उत्तम अर्क गुलाब थोड़ा-थोड़ा डालकर सात दिन मर्दन करे । आठवें दिन उसमें कस्तूरी और अंबर डाल, अर्क गुलाबमें एक दिन मर्दन करके १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले ।

मात्रा और **अनुपान**—एक-एक गोली दिनमें दो-तीन वार शहद या खमीरे गावज़बानमें मिलाकर दे और ऊपरसे गायका दूध, केवड़ेका अर्क, बेदमुश्कका अर्क या गावज़बानके फूलोंका अर्क पिलावे ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपयोग—यह हृदय और मस्तिष्कको वल देनेमें अनुपम योग है। दिलकी घबराहट और धड़कन, नाड़ीकी क्षीणता और अनियमितता, अति स्वेद आना, हृदयकी दुर्बलतासे थोड़ासा चलने पर दम-श्वास भर जाना और दिमागकी कमजोरीसे होनेवाले भ्रम, विस्मृति आदि लक्षणोंमें जवाहरमोहरासे विशेष लाभ होता है।

रसयोगविज्ञानीयाध्यायो नवमः ।

(१) अग्निकुमाररसः ।

पारदं च विषं गन्धं टङ्कणं समभागतः ।
मरिचादष्टभागाः स्युर्द्वौ द्वौ शङ्खवराटयोः ॥ १ ॥
पक्वजम्बीरजैर्गाढं रसैः सप्त विभावयेत् ।
गुञ्जाद्वयमितो देयो रसो ह्यग्निकुमारकः ॥ २ ॥
कफवातसमुद्भूतमजीर्णं शूलमेव च ।
गुल्मं तथाविधं चैव हन्ति मन्दाग्निमेव च ॥ ३ ॥

प्रथम एक-एक भाग शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धककी कज्जली बना, उसमें शुद्ध बछनाग तथा शुद्ध सुहागा एक-एक भाग, काली मिर्चका चूर्ण आठ भाग तथा शंख और कौड़ीकी भस्म दो-दो भाग मिला, पके हुए जम्भीरी या कागजी नीमूके रसकी सात भावना दे, दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बना, धूपमें सुखा कर शीशीमें भरले। **मात्रा और उपयोग**-१-२ गोली सवेर-शाम जल, छाछ या अनारके रसके साथ खानेसे कफ तथा वातसे उत्पन्न अजीर्ण, पेटका दर्द, गुल्म और अग्निमान्द्य दूर होता है।

(२) अग्नितुण्डी वटी ।

शुद्धं सूतं विषं गन्धमजमोदां फलत्रिकम् ।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ ४ ॥
सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं विडम् ।
विषमुष्टिं सर्वसमां जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ५ ॥
मरिचाभां वटीं खादेद्वह्निमान्द्यप्रशान्तये ।

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध बछनाग, अजमोदा, हर्रका दल, बहेड़ाहल, आँवलादल, सज्जीखार, जौखार, चित्रकके मूल, सेंधानमक, सफेद जीरा, सोंचल नमक, वायविडंग, सामुद्रलवण, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल तथा नौसादर प्रत्येक एक-एक भाग तथा शुद्ध कुचला सबके बराबर ले। प्रथम पारा-गन्धककी कजली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका चूर्ण मिला, जम्भीरी या कागजी नीमूके रसमें सात दिन मर्दन कर, मूँगके बराबर गोलियाँ बना, धूपमें सुखाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—एकसे दो

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गोली जल या छाछके अनुपानसे दिनमें दो-तीनबार यथावश्यक दे। इसके सेवनसे भूख बढ़ती है, अन्न ठीक पचता है तथा अग्निमान्द्य, अजीर्ण, पेटका दर्द और आध्मान ये व्याधि नष्ट होते हैं।

(३) अजीर्णारिरसः ।

शुद्धं सूतं गन्धकं च चित्रकं पलसंमितम् ॥ ६ ॥
हरीतकी च द्विपला त्रिकटु त्रिपलं स्मृतम् ।
सौवर्चलं च सिन्धूत्थं पृथग्देयं पलत्रयम् ॥ ७ ॥
षट्पला विजया देया मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ।
भावनाः सप्त दातव्या घर्ममध्ये पुनः पुनः ॥ ८ ॥
अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ।
भक्षयेद्द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेत् सारयेदपि ॥ ९ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और चित्रकमूल प्रत्येक १ पल (४ तोला), बड़ी हर्रेका दल २ पल, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, सोंचर तथा सेन्धानमक प्रत्येक ३–३ पल और शुद्ध भाँगका चूर्ण ६ पल ले। प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, नीमूके रसकी सात भावना दे, २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना, धूपमें सुखा कर शीशीमें भर ले। मात्रा २–४ गोली। **अनुपान**—जल या छाछ। यह **अजीर्णारि रस** दीपन और पाचन है। इसके सेवनसे अधिक भोजन खाया जाता है, अन्नका पाचन होता है और दस्त साफ आता है।

(४) अतिसारहरी वटी ।

दरदं विजयां बिल्वं जातिपत्रीं लवङ्गकम् ।
टङ्कणातिविषे मोचरसं खदिरसारकम् ॥ १० ॥
शुण्ठीं जातिफलं चन्द्रं शतपुष्पारसैर्दिनम् ।
मर्दयित्वा वटी कार्या गुञ्जात्रितयसंमिता ॥ ११ ॥
देया सर्वातिसारेषु ह्यतिसारहरी स्मृता ।

शुद्ध हिंगुल, जलसे धोकर सुखाई हुई भाँग, बेलगिरी, जावित्री, लौंग, आगपर फुलाया हुआ सुहागा, अतीस, मोचरस, कत्था, सोंठ, जायफल और कपूर–इनके सम-भाग चूर्णको सौंफको द्विगुण जलमें पीस, कपड़ेसे निचोड़कर निकाले हुए जलसे एक दिन मर्दन कर, ३–३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा, अनुपान** और **उपयोग**—२–३ दो गोली ४–४ घंटेसे ठंढे जल, छाछ, अनारके रस या सौंफके अर्कके साथ देनेसे सर्व प्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(५) अश्वकञ्चुकीरसः।

पारदं टङ्कणं गन्धं विषं व्योषं फलत्रयम् ॥ १२ ॥
तालकं च समं सर्वैर्जयपालं समांशकम्।
मर्दयेद्भृङ्गनीरेण ह्येकविंशद्दिनावधि ॥ १३ ॥
द्विगुञ्जां वटिकां कृत्वा छायायां शोषयेद्बुधः।
अश्वारोही रसो देयो ज्वरे श्वासे विबन्धके।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, शुद्ध बछनाग, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, हर्रेदल, वहेड़ादल, आँवलादल और शुद्ध हरताल या माणिक्यरस प्रत्येक एक-एक भाग तथा शुद्ध जमालगोटा ग्यारह भाग ले। प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, इक्कीस (२१) दिन भँगरेके खरसके साथ मर्दन कर, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१-२ गोली। **अनुपान**—अदरकका रस या जल। ज्वर, उदर, श्वास, विबन्ध आदि रोगोंमें जब विरेचन करानेकी आवश्यकता हो तब इसका प्रयोग करे।

(६) आरोग्यवर्धनी गुटिका।

रसगन्धकलोहाभ्रशुल्बभस्म समांशकम् ॥ १४ ॥
त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता त्रिगुणं च शिलाजतु।
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ॥ १५ ॥
तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः।
निम्बवृक्षदलाम्भोभिर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ १६ ॥
ततश्च वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः।
मण्डलं सेविता सैषा हन्ति शोथानशेषतः ॥ १७ ॥
जीर्णज्वरं यकृद्वृद्धिं प्लीहवृद्धिं जलोदरम्।
पाचनी दीपनी पथ्या हृद्या मेदोविनाशिनी ॥ १८ ॥
मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्षं क्षुत्प्रवर्तिनी।
आरोग्यवर्धनी नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्तिता ॥ १९ ॥

रसरत्नसमुच्चय कुष्ठाधिकार (किञ्चित्परिवर्तित)।

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, लोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, बड़ी हर्रेका दल २ भाग, बहेड़ादल २ भाग, आँवलादल २ भाग, शिलाजीत ३ भाग, शुद्ध गूगल ४ भाग, चित्रकके मूलकी छाल ४ भाग और कुटकी २२ भाग ले। प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली कर, उसमें अन्य भस्में, शिलाजतु और शेष द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिलावे। पीछे गूगलको नीमकी ताजी पत्तीके खरसमें ६ घण्टा भिगो, हाथसे मसल, कपड़ेसे छान, उसमें अन्य द्रव्य मिला, नीमकी ताजी पत्तीके रसमें

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३ दिन घोंट, सुखा कर चूर्णरूपमें रख ले या ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर रख ले। **मात्रा**—१-२ गोली (३—६ रत्ती)। **अनुपान**—रोगानुसार जल, दूध, पुनर्नवादि क्काथ, केवल पुनर्नवाका क्काथ, दशमूलक्काथ, मूत्रलकषाय[१] आदि। **गुण और उपयोग**—आरोग्यवर्धनी उत्तम पाचन, दीपन, शरीरके स्रोतोंका शोधन करनेवाली, हृदयको बल देनेवाली, मेदको कम करनेवाली और मलोंकी शुद्धि करनेवाली है। यकृत्, प्लीहा, बस्ति, वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीरके किसी भी अन्तरवयवका शोथ, जलोदर, जीर्णज्वर और पाण्डुरोगमें इस योगसे अधिक लाभ होता है। पाण्डुरोगमें यदि दस्त पतले और अधिक होते हों तो इसका प्रयोग न करके पर्पटीयोगोंका प्रयोग करना चाहिये। सर्वाङ्ग (सर्वसर) शोथ और उदररोगोंमें विशेषतः जलोदरमें रोगीको केवल गाय, बकरी या ऊँटनीके दूधपर रखकर इसका प्रयोग करना चाहिये। यकृत्की वृद्धिके कारण शोथ हो तो पुनर्नवाष्टक क्काथमें रोहीडाकी छाल और शरपुंखामूल १-१ भाग अधिक मिला कर उसके अनुपानसे इसका प्रयोग करे। यदि शोथ हृद्रोगजन्य हो तो आरोग्यवर्धनीके साथ डिजिटेलिसपत्रचूर्ण ½ से १ रत्ती और जङ्गली प्याज (वन्यपलाण्डु) का चूर्ण १ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूलके क्काथके साथ इसका प्रयोग करे। जीर्णफुप्फुसधराकलाशोथमें इसके साथ शृंगभस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारङ्गमूल, पुनर्नवा, देवदार और अडूसेके क्काथके साथ इसका प्रयोग करे। मेद कम करनेके लिये रोगीको केवल गायके दूधपर रख कर शार्ङ्गधरोक्त महामंजिष्ठादि क्काथके अनुपानसे इसका सेवन करे।

(७) कस्तूरीभैरवरसः।

हिङ्गुलं टङ्कणं क्ष्वेडं जातिकोषफले तथा।
मरिचं पिप्पलीं चैव कस्तूरीं घनसारकम्॥ २०॥
नागवल्लीदलरसैर्दिनमेकं विमर्दयेत्।
गुञ्जामितां वटीं दद्यात् सन्निपाते सुदारुणे॥ २१॥
कफवाताधिके ख्यातः कस्तूरीभैरवो रसः।

भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार (किञ्चित् परिवर्तित)

शुद्ध हिंगुल, आगपर फुलाया हुआ सुहागा, शुद्ध बछनाग, जायफल, जावित्री, काली मिर्च, छोटी पीपल इनका कपड़छान चूर्ण, कस्तूरी और कपूर सम भाग ले, पानके रसमें एक दिन मर्दन कर, १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भरले। **मात्रा, अनुपान** और **उपयोग**—१ गोली पानके रस, मधु अथवा दूधमें मिलाकर दे। इसका उपयोग वातज्वर, कफज्वर और वातकफ-प्रधान सन्निपात ज्वरमें करे। सन्निपात ज्वरमें जब पसीना अधिक होकर शरीर ठंडा होने लगे, हाथ-पाँव ठंढे हों और नाड़ी क्षीण होने लगे, ज्वरसंताप (Temperature) कम होनेपर भी प्रलाप हो तब

---

१ मूत्रलकषायका पाठ सिद्धयोगसंग्रह पृ. ७१ पर देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इससे विशेष लाभ होता है। इस योगमें यदि वछनागके स्थानपर शुद्ध कुचला और अम्बर एक-एक भाग डाल कर योग तैयार करे, तो यह नाड़ी और हृदयकी दुर्बलता तथा वातरोगोंमें विशेष लाभ देता है और वाजीकरगुणयुक्त होता है।

(८) कामदुघारसः।

विशोधितं गवां दुग्धैर्भावयेत् स्वर्णगैरिकम् ॥ २२ ॥
धात्रीफलरसैः सम्यगेकविंशद्दिनावधि ।
सत्त्वं गुडूचिकोद्भूतं शुष्के चूर्णीकृते क्षिपेत् ॥ २३ ॥
सितां सर्वसमां दत्त्वा माषमात्रं तु भक्षयेत् ।
शीततोयानुपानेन रसः कामदुघाभिधः ॥ २४ ॥
रक्तपित्तं तृषां दाहं भ्रमं मूर्च्छां च नाशयेत् ।

गायके दूधमें शुद्ध किये हुए सुवर्णगैरिकको ताजे आँवलेके स्वरसकी इक्कीस (२१) भावना दे, सुखा, चूर्ण बना, उसमें बराबर वजनका गिलोयका सत्त्व तथा दोनोंके समान मिश्रीका चूर्ण मिला, ३ घंटा मर्दन करके शीशीमें भरले। इसको **कामदुघारस** कहते हैं। **मात्रा** १-२ माशा। **अनुपान**—शीतजल, तण्डुलोदक या चन्दनादि अर्क। इसके सेवनसे रक्तपित्त, तृषा, दाह, भ्रम और मूर्च्छा आदि पित्तप्रधान रोग दूर होते हैं।

(९) कामलाहरो रसः।

पलं रसं पलं गन्धं त्रिफलाकुडवं तथा ॥ २५ ॥
स्वर्जिक्षारं यवक्षारं नरसारं तथैव च ।
प्रत्येकं द्विपलं दत्त्वा दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ २६ ॥
कामलाहर इत्येष तक्रेण परिशीलितः ।
पाचनः सारकः प्रोक्तः कामलागदनाशनः ॥ २७ ॥

शुद्ध पारद ४ तोला और शुद्ध गन्धक ४ तोलाकी कज्जली बना, उसमें शुद्ध सज्जीखार ८ तोला, यवक्षार ८ तोला और डमरूयन्त्रमें ऊर्ध्वपातन किया हुआ नौशादर ८ तोला तथा कपड़छान किया हुआ त्रिफलाका चूर्ण १६ तोला मिला, एक दिन मर्दन करके शीशीमें भरले। **मात्रा**-१ माशा। **अनुपान** मक्खन निकाली हुई छाछ। यह कामलाहर रस पाचन, सारक और कामला रोगको दूर करनेवाला है।

(१०) कालारिरसः।

त्रिशाणं पारदं चैव गन्धकं टङ्कपञ्चकम् ।
त्रिशाणं वत्सनाभं च पिप्पली दशशाणिका ॥ २८ ॥
लवङ्गं च चतुःशाणं त्रिशाणं कनकाह्वयम् ।
टङ्कणं वह्निशाणं च पञ्च जातिफलात् क्षिपेत् ॥ २९ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मरिचं पञ्चशाणं स्यादाकल्लं च त्रिशाणकम् ।
करीरार्द्रकनिर्गुण्डीस्वरसैर्दिवसत्रयम् ॥ ३० ॥
कालारिर्भावितोऽयं स्यात् सर्वज्वरविनाशनः ।

शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध बछनाग ३ भाग, छोटी पीपल १० भाग, लौंग ४ भाग, शुद्ध धतूरेके बीज ३ भाग, आगपर फुलाया हुआ सुहागा ३ भाग, जायफल ५ भाग, काली मिर्च ५ भाग और अकरकरा ३ भाग ले; प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका सूक्ष्म कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, केरकी कोंपल, अदरक और संभालूकी पत्ती इन प्रत्येकके रसमें ३-३ दिन मर्दन कर, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले । **मात्रा**—१ गोली । **अनुपान** और **उपयोग**—अदरकका रस, तुलसीका रस या ७ से २१ लौंगोंका अर्धावशेष क्वाथ—इनमेंसे किसी एक अनुपानसे वातज्वर, कफज्वर और वातकफाधिक सन्निपात ज्वरमें दे । सन्निपातज्वरकी प्रलापावस्थामें तगरादि क्वाथके अनुपानसे या ७ लौंग, ३ माशा ब्राह्मीकी ताजी-हरी पत्ती, ३ माशा जटामांसी और ३ माशा शंखाहुलीके क्वाथके अनुपानसे देवे । विषमज्वर (पारीके ज्वर) में १ माशा जायफलके चूर्णके साथ देकर ऊपरसे दूध देवे अथवा निम्बपत्रस्वरसपुटित गोदन्ती भस्म १ माशाके साथ मिला कर जलसे देवे । अन्य ज्वरघ्न क्वाथोंके अनुपानसे भी दे सकते हैं ।

(११) कासकर्तरी वटिका ।

रसः कृष्णाऽभया त्वक्षं वासा भार्गी क्रमोत्तरम् ।
तत्समं खादिरं सारं बब्बूलक्वाथभावितम् ॥ ३१ ॥
एकविंशतिवारांश्च मधुनाऽक्षमिता वटी ॥ ३२ ॥
कासं श्वासं क्षयं हिक्कां हन्त्येषा कासकर्तरी ।

रससिन्दूर १ भाग, छोटी पीपल २ भाग, हर्रेदल ३ भाग, बहेड़ादल ४ भाग, अडूसेके पुष्प-पत्र या मूलकी छाल ५ भाग, भारंगीमूल ६ भाग और कत्था सबके बराबर ले । प्रथम रससिन्दूरको खूब सूक्ष्म पीस, पीछे अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, बब्बूलकी छालके क्वाथकी २१ भावना दे, सुखा, पीस, कपड़ेसे छानकर शीशीमें भरले या शहदमें मिला कर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बनाले । **मात्रा**—२-४ रत्ती । अनुपान मधु । यह कासकर्तरी वटी खाँसी, श्वास, क्षय और हिक्काको दूर करती है ।

(१२) कृमिकुठाररसः ।

रसं गन्धं विडङ्गं च रामठेन्द्रयवौ वचाम् ॥ ३३ ॥
कम्पिल्लकं कुबेराक्षं पालाशं बीजमेव च ।
दाडिमाङ्घ्रित्वचां पूगं नाडीहिङ्गुं रसोनकम् ॥ ३४ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सौवर्चलं समांशं च यवानीसत्त्वसंयुतम्।
कुमारीस्वरसेनाथ त्रिवारं भावयेत्ततः॥ ३५॥
माषमात्रं समादाय मुस्ताक्काथेन भक्षयेत्।
रसः कृमिकुठारोऽयं हन्यात् सर्वोदरक्रिमीन्॥ ३६॥

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धककी कजली, वायविडङ्ग, हींग, इन्द्रजव, घोड़बच, कमीला, करंजुवेके बीजोकों सेंककर निकाला हुआ मग्ज, पलाशके बीज, अनारके मूलकी छाल, सुपारी, डीकामाली, छिला हुआ लहसुन, सोंचलनोन और अजवायनका सत्त्व इनका कपड़छान चूर्ण बना, ग्वारपाठेके रसकी ३ भावना दे, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भरले। **मात्रा**—२-४ गोली खाकर ऊपरसे नागरमोथाका क्काथ पीवे। इसके २१ दिन सेवन करनेसे सब प्रकारके पेटके कृमि नष्ट होते हैं।

(१३) चतुर्भुजरसः।

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्म च।
शिला कस्तूरिका तालं कन्यारसविमर्दितम्॥ ३७॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यगर्भे दिनत्रयम्।
संस्थाप्य तत उद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत्॥ ३८॥
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुमर्दितम्।
अपस्मारे ज्वरे कासे योज्यं मन्दानले क्षये॥ ३९॥
हस्तपादशिरःकम्पे पक्षाघाते विशेषतः।

रससिन्दूर दो भाग तथा सुवर्णभस्म, शुद्ध मैनसिल, कस्तूरी और शुद्ध हरताल प्रत्येक एक-एक भाग-इनको ग्वारपाठेके रसमें ३ दिन मर्दन कर, एक गोला बना, सुखा, एरण्डपत्रसे लपेट, ऊपर सूत लपेट कर धान्यभरी हुई बड़ी कोठीमें ३ दिन रहने दे। चौथे दिन गोलेको बाहर निकाल, एरण्डपत्र दूर कर, एक दिन खरलमें मर्दन करके शीशीमें भरले। **मात्रा**-१ रती। **अनुपान**-त्रिफलाका चूर्ण और मधुके साथ सेवन करनेसे यह रसायन गुण करता है। अपस्मार, कफ-वातप्रधान सन्निपातज्वर, खाँसी, मंदाग्नि, क्षय, हाथ-पाँव और सिरका काँपना तथा पक्षाघात-इन रोगोंमें चतुर्भुज रसका योग्य अनुपानके साथ प्रयोग करे।

(१४) चतुर्मुखरसः।

रसगन्धकलोहाभ्रं समं सूताङ्घ्रि हेम च॥ ४०॥
सर्वं खल्वे विनिक्षिप्य कन्याम्भोभिर्विमर्दयेत्।
ततोऽमृतावरामुस्ताब्राह्मीमांसीलवङ्गजैः॥ ४१॥
पुनर्नवाचित्रकजै रसैर्गाढं विमर्दयेत्।
ततो गोलं विधायाथ रवितापे विशोषयेत्॥ ४२॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
संस्थाप्य तत उद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४३ ॥
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् ।
क्षयमेकादशविधं पाण्डुं चैवाम्लपित्तकम् ॥ ४४ ॥
अपस्मारं तथोन्मादं भ्रमं मूर्च्छां प्रमेहकम् ।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४५ ॥
दीयते रससिन्दूरं कज्जलीस्थानके यदा ।
तदा रसोऽयं विख्यातश्चिन्तामणिचतुर्मुखः ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, लोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग और सुवर्णभस्म ¾ भाग ले। प्रथम पारा-गंधककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में मिला, उसको ग्वारपाठा, ताजी गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा, ब्राह्मी, जटामांसी, लौंग, पुनर्नवा और चित्रकके मूलकी छाल—इनके यथालाभ स्वरस या क्वाथमें १-१ दिन मर्दनकर, एक गोला बना कर उसको धूपमें सुखावे। जब गोला सूख जाय तब उस पर एरण्डकी हरी पत्ती लपेट, सूतसे बाँध, बड़ी धान्यकी कोठीमें तीन दिन रहने दे। तीन दिनके बाद गोलेको कोठीसे निकाल, ऊपरका एरण्डपत्र हटा, खरलमें अच्छी तरह पीस कर शीशीमें भर ले। इसको **चतुर्मुख रस** कहते हैं। इस योगमें यदि कज्जलीके स्थान पर दो भाग रससिन्दूर दिया जावे तो इसको **चिन्तामणिचतुर्मुख** कहते हैं। **मात्रा**—१-२ रत्ती। **अनुपान**—त्रिफलाका चूर्ण १॥ से ३ माशा और शहद ·॥· से १ तोलामें मिलाकर दिनमें दो बार सबेरे-शाम दे। **उपयोग**—राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, अपस्मार, उन्माद, भ्रम (चक्कर आना), मूर्च्छा, प्रमेह, वातरोग, दिल और दिमागकी कमजोरी आदिमें इस योगका अच्छा उपयोग होता है।

(१५) चन्दनादिलौहम् ।

रक्तचन्दनह्रीबेरपाठोशीरकणाशिवा- ।
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितः ॥ ४६ ॥
गुडूचीसारिवारेणुमुस्तारसविभावितः ।
लौहो निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ४७ ॥

लाल चन्दन, खस, पाढ़के मूल, नेत्रबाला, छोटी पीपल, हर्डेका दल, सोंठ, नीलोफर, आँवलादल, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रकके मूल—इन प्रत्येकका चूर्ण समभाग और लोहभस्म सबके बराबर ले; उसको ताजी गिलोयका स्वरस, अनन्तमूलका हिम, पित्तपापड़ा और नागरमोथाका क्वाथ—इन प्रत्येककी एक एक भावना देकर छायामें सुखा ले। **मात्रा**—दो रत्ती। **अनुपान**—मधु। इसको **चन्दनादि लोह** कहते हैं। इसके सेवनसे सब प्रकारके पुराने विषमज्वर नष्ट होते हैं, क्षुधा लगती है और रक्त बढ़ता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(१६) चन्द्रकलारसः।

प्रत्येकं कर्षमानं हि सूतमभ्रं च विद्रुमम्।
द्विगुणं गन्धकं मुक्तां दत्त्वा कुर्यात्तु कज्जलीम् ॥ ४८ ॥
तिक्तां गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमागधीः।
चन्दनं सारिवां चैव चाम्पेयं च सुचूर्णितम् ॥ ४९ ॥
मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीकमलद्रवैः।
सहदेव्याः शतावर्याः पर्पटस्य च वारिणा ॥ ५० ॥
भावयित्वा प्रयत्नेन दिनमेकं पृथक् पृथक्।
द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥ ५१ ॥
ततः पोताश्रयं दत्त्वा वट्यः कार्याश्चणोपमाः।
अयं चन्द्रकला नाम रसेन्द्रः परिकीर्तितः ॥ ५२ ॥
अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाघनः।
भ्रमं मूर्च्छां रक्तकासं रक्तवान्तिं विशेषतः ॥ ५३ ॥
ऊर्ध्वाधोरक्तपित्तं च जीर्णज्वरमसृग्दरम्।
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, प्रवालपिष्टी १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मोतीकी पिष्टी २ तोला, कुटकी, गिलोयका सत्त्व, पित्तपापड़ा, खस, छोटी पीपल, श्वेतचन्दन, अनन्तमूल और नागकेशर प्रत्येकका कपड़छान चूर्ण २-२ तोला ले। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका चूर्ण मिला, नागरमोथा, मीठा दाडिम (अनार), दूब, केवड़ा, कमल, सहदेवी, शतावरी और पित्तपापड़ा—इनके यथा-लाभ स्वरस, अर्क या क्वाथकी १-१ भावना और मुनक्काके क्वाथकी ७ भावनाएँ दे। प्रत्येक भावनामें १-१ दिन मर्दन करे और छायामें सुखा करके दूसरी भावना दे। अन्तमें दो तोला कपूर मिला, चने बराबर गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर रख ले। **मात्रा और अनुपान**—१-२ गोली ठंढा जल, उशीरासव, अशोकारिष्ट या पेठेके स्वरससे दिनमें २-३ बार देवे। **उपयोग**—शरीरका दाह, चक्कर, मूर्च्छा, खाँसीमें रक्त आना, रक्तका वमन, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श, जीर्णज्वर और मूत्रकृच्छ्रमें इससे अच्छा लाभ होता है।

(१७) चन्द्रकलावटी।

एला सकर्पूरशिलाजधात्री जातीफलं शाल्मलिगोक्षुरौ च।
सूतेन्द्रवङ्गाभ्रकभस्म सर्वमेतत् समानं परिभावयेत्तु ॥ ५५ ॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमाना मधुना ततश्च।
बद्धा वटी चन्द्रकलेतिसंज्ञा सर्वप्रमेहेषु नियोजनीया ॥ ५६ ॥

रससंकेतकलिका अ: ५५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

छोटी इलायचीके बीज, कपूर, शिलाजीत, आँवलादल, जायफल, शेमलके मूल, गोखरू, रससिन्दूर, वंगभस्म और अभ्रकभस्म समभाग ले; प्रथम रससिन्दूरको पत्थरके खरलमें खूब महीन पीस, पीछे उसमें शिलाजीत, भस्में तथा अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, हरी गिलोय तथा शेमलके मूलके स्वरसमें ३-३ दिन मर्दन कर, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर रख ले। **मात्रा और अनुपान**—२ गोली शहदमें मिलाकर दे और ऊपरसे गायका दूध पिलावे। **उपयोग**-सर्व प्रकारके प्रमेहोंमें विशेष करके शुक्रमेह और स्वप्नदोषमें इसका उपयोग करे।

(१८) चन्द्रप्रभावटी।

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम्।
हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली।
व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥ ५८ ॥
एलाबीजं च कङ्कोलं गोक्षुरः श्वेतचन्दनम्।
एतानि शाणमानानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ ५९ ॥
त्रिवृद्दन्ती पत्रकं च त्वगेलावंशलोचनाः।
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥ ६० ॥
द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत्।
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः ॥ ६१ ॥
एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा।
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ॥ ६२ ॥
प्रमेहान् सूत्रकृच्छ्रांश्च मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम्।
जयेदर्शांसि शूलानि कामलां पाण्डुमेव च ॥ ६३ ॥
पुंसां शुक्रगतान् दोषान् स्त्रीणामार्तवजां रुजम्।

कपूरकचरी, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदार, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रकके मूलकी छाल, धनिया, बड़ी हर्रका दल, बहेड़ादल, आँवलादल, चवक, वायविडङ्ग, बड़ी पीपल, छोटी पीपल, सोंठ, काली मिर्चे, माक्षिकभस्म, सज्जीखार, जौखार, सेन्धानमक, सोंचरनमक, सामुद्रलवण, छोटी इलायचीके बीज, कबाबचीनी (शीतल मिर्च), गोखरू और श्वेत चन्दन–प्रत्येक पाव-पाव तोला, निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची और वंशलोचन–प्रत्येक १-१ तोला, लोहभस्म २ तोला, मिश्री ४ तोला, शिलाजीत ८ तोला और गूगल ८ तोला ले। प्रथम गूगल-को साफ करके लोहेके इमामदस्तेमें कूटे। जब गूगल नरम हो जाय तब उसमें

१ कई वैद्य 'चन्द्रप्रभा' शब्दसे कचूर लेते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शिलाजीत, भस्में तथा अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण क्रमशः मिला, तीन दिन गिलोयके स्वरसमें मर्दन कर, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—२ गोली जल, दूध या तत्तद्रोगहर क्वाथके अनुपानसे दे। **उपयोग**—सर्व प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, अर्श (बवासीर), शूल, कामला, पाण्डुरोग, शुक्रदोष और स्त्रियोंके प्रदर आदि रोगोंमें इस योगसे अच्छा लाभ होता है।

वक्तव्य—गुजरात और सौराष्ट्रके कई वैद्य चन्द्रप्रभामें काले शिलाजीतके स्थानपर ८ तोले श्वेतशिलाजतु (कलमी सोरा) मिलाकर चन्द्रप्रभा तैयार करते हैं और उसमें माक्षिकभस्म तथा लोहभस्म नहीं डालते।

(१९) चन्द्रामृतरसः।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम्॥ ६४॥
रसगन्धकलोहाभ्रं प्रत्येकं कार्षिकं शुभम्।
टङ्कणाद्द्विपलं दत्त्वा वासानीरेण मर्दयेत्॥ ६५॥
गुञ्जात्रयप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्।
कासं पञ्चविधं चापि श्वासं ज्वरसमन्वितम्॥ ६६॥
अनुपानविशेषेण हन्ति चन्द्रामृतो रसः।
कासे सरक्ते दातव्यो रक्तोत्पलरसाप्लुतः॥ ६७॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, हर्रेका दल, बहेड़ादल, आँवलादल, चवक (चाव), धनिया, जीरा, सेन्धानमक, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध सुहागा ८ तोला ले; प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में तथा वनस्पतियोंका कपड़छान चूर्ण मिला, अडूसेके पत्तोंके स्वरसकी ३ भावनायें दे, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भरले। **मात्रा और अनुपान**—१ गोली शहदमें मिलाकर चटावे और ऊपरसे बकरीका दूध, गोजिह्वादि-क्वाथ[1], द्राक्षारिष्ट या शर्बतजूफा पिलावे। यदि खाँसीमें कफके साथ रक्त आता हो तो एक गोली ५ रत्ती नागकेशरचूर्ण और ५ रत्ती खूनखरावा (दम्मुल्अखवेन) के चूर्णके साथ मिलाकर १·२ तोला लालकमलके स्वरसके अनुपानसे दे। खाँसीके साथ श्वास भी हो तो एक गोलीके साथ ५-८ रत्ती सोमचूर्ण मिला कर शहदके साथ दे। **उपयोग**—सब प्रकारकी खाँसी, दमा और उसके साथ हलका ज्वर भी रहता हो तो इस योगसे अच्छा गुण होता है।

(२०) ज्वरसंहाररसः।

निम्बत्वचं त्रिकटुकं कुष्ठं मुस्तां च टङ्कणम्।
सर्षपेन्द्रयवौ रक्तचन्दनं वन्यजीरकम्॥ ६८॥

---

१ गोजिह्वादि क्वाथ, द्राक्षारिष्ट और शर्बत जूफाका पाठ सिद्धयोगसंग्रहमें देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिक्तामतिविषां चैव समभागानि कारयेत्।
रसं सिन्दूरनामानं सर्वतुल्यं प्रदापयेत्॥ ६९॥
निर्गुण्डीसुरसाधूर्तशृङ्गवेररसैः क्रमात्।
भावयित्वा द्विगुञ्जां तु वटीं कृत्वा प्रदापयेत्॥ ७०॥
सर्वज्वरेषु शस्तोऽयं ज्वरसंहारको रसः।

नीमकी अन्तर्छाल, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, कूठ, नागरमोथा, आगपर फुलाया हुआ सुहागा, पीली सरसों, इन्द्रजव, लालचन्दन, काली जीरी, कुटकी और अतीस प्रत्येक समभाग तथा रससिन्दूर सर्वसमान ले; प्रथम रससिन्दूरको सूक्ष्म पीस, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, संभालूकी पत्ती, तुलसी, धतूरेकी पत्ती और अदरकके स्वरसकी एक-एक भावना दे, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा** और अनुपान-१-२ गोली शहदके साथ अथवा किसी ज्वरहर कषायके अनुपानसे दे। इसको **ज्वरसंहाररस** कहते हैं। **उपयोग**—ज्वरसंहार रस अनुपानविशेषसे सब प्रकारके ज्वरोंमें विशेषतः कफ और वातज्वरमें लाभ करता है। इसका अकेला या गोदन्तीभस्मके साथ मिलाकर उपयोग किया जाता है। इसको गोजिह्वादि क्वाथके अनुपानके साथ देनेसे श्लेष्मज्वरमें कफ पककर शीघ्र गिरने लगता है और प्रतिश्याय (जुकाम) तथा खांसी भी शीघ्र अच्छी होती है। कफज्वरमें पार्श्वशूल हो तो इसके साथ २ से ६ रत्ती मृगश्रृङ्गभस्म (हरिण या सांभरके सींगकी भस्म) और श्वसनकज्वर (न्यूमोनिया) हो तो इसके साथ श्रृङ्गभस्म ४-८ रत्ती तथा अभ्रकभस्म एक रत्ती मिलाकर दे और ऊपरसे गोजिह्वादि कषाय या भार्ग्यादि कषाय नौसादर और यवक्षारका प्रतीवाप देकर दे। ज्वरसंहार रसका तरुण और जीर्ण दोनों प्रकारके ज्वरमें प्रयोग कर सकते हैं।

(२१) ताम्रपर्पटी।

मृतं ताम्रं त्रिभागं च रसं गन्धं तयोः समम्॥ ७१॥
भागमेकं वत्सनाभं दत्त्वा कुर्यात्तु कज्जलीम्।
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेद्बुधः॥ ७२॥
ततो गुञ्जाद्वयं दद्यादेलाजीरकसंयुतम्।
त्रिसप्तरात्रयोगेन चिरजां ग्रहणीं जयेत्॥ ७३॥
त्रिफलामधुसंयुक्ता मेहपाण्डुविनाशिनी।
वातारितैलसंयुक्ता सर्वशूलनिवारिणी॥ ७४॥
बाकुचीबीजसंयुक्ता दद्रुश्वित्रविनाशिनी।
ताम्रपर्पटिका ह्येषा यकृत्प्लीहोदरापहा॥ ७५॥

योगरत्नाकर।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ताम्रभस्म ३ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ६ भाग और शुद्ध बछनागका चूर्ण १ भाग ले; प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली बना, पीछे उसमें अन्य द्रव्य मिला, एक दिन मर्दन कर, रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानके अनुसार पर्पटी बना ले। **मात्रा**—१–३ रत्ती। **अनुपान** और **उपयोग**—ताम्रपर्पटी छोटी इलायची और सेंके हुए जीरेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे पुराने ग्रहणीरोगको, त्रिफलाके चूर्ण और मधुके साथ लेनेसे प्रमेह और पाण्डुरोगको, एरण्डतैलके साथ लेनेसे सर्व प्रकारके शूलोंको, बावचीके बीजके चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाद और श्वित्र (सफेद कोढ़) को दूर करती है। ताम्रपर्पटी यकृत्के रोग, प्लीहाकी वृद्धि और उदररोगके लिये उत्तम औषध है।

(२२) तिक्ताद्यं लोहम्।

तिक्तां निशे चन्दनपर्पटाब्दपाठाकणादारुपटोलपत्रम्।
त्रायन्तिमूर्वेन्द्रयवान् किरातं विचूर्ण्य सूक्ष्मं च रजो विदध्यात्॥ ७६॥
एतत्समं लोहरजो विधाय क्षौद्रेण साज्येन भजन् हिताशी।
जयेज्ज्वरान् धातुगतांश्चिरोत्थान् प्लीहानमग्नौ मृदुतां च कार्श्यम्॥ ७७॥

(लोहसर्वस्व)

कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेतचन्दन, पित्तपापडा, नागरमोथा, पाठामूल, छोटी पीपल, देवदारु, पटोलपत्र, त्रायमाण, मूर्वा, इन्द्रयव और चिरायता-ये द्रव्य समभाग ले, सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण बना, सबके समान लोहभस्म मिला, भँगरेके स्वरसकी तीन भावनायें दे, सुखा, पीस कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—२–४ रत्ती। **अनुपान**—३ माशा मधु और ६ माशा गोघृत। इसके सेवनसे धातुगत जीर्ण ज्वर, प्लीहाकी वृद्धि, अग्निमान्द्य और कृशता दूर होती है।

(२३) त्रिनेत्ररसः।

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना।
एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः॥ ७८॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत्।
हृद्रोगं विविधं हन्ति बलाक्वाथानुपानतः॥ ७९॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म समभाग ले, प्रथम पारा-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अभ्रकभस्म मिला, अर्जुन (कौहा) वृक्षकी ताजी छालके क्वाथकी २१ भावनायें दे, धूपमें सुखा, कपड़छान चूर्ण करके शीशीमें भर ले। **मात्रा** और **अनुपान**—४–८ रत्ती शहद-मधुके साथ चाटकर ऊपरसे बला (खरेटी) के मूलका क्वाथ पीनेसे सर्व प्रकारके हृद्रोग नष्ट होते हैं। यदि इस योगके सेवनसे उचित लाभ न हो तो इसके साथ एक गोली जवाहरमोहरा मिलाकर दे। जवाहरमोहराका पाठ इसी ग्रन्थमें पृ. ८८ पर देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(२४) त्रिभुवनकीर्तिरसः ।

हिङ्गूलं च विषं व्योषं टङ्कणं मागधीशिफाम् ।
संचूर्ण्य भावयेत्त्रेधा सुरसार्द्रकहेमभिः ॥ ८० ॥
निर्गुण्डीस्वरसेनापि, रसस्त्रैलोक्यकीर्तिकः ।
विनाशयेज्ज्वरान् सर्वाननुपानविशेषतः ॥ ८१ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बछनाग, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, शुद्ध सुहागा और पीपलामूल–इन प्रत्येकका कपड़छान चूर्ण समभाग ले, उनको तुलसी, अदरक, धतूरा और संभालूकी पत्ती–इन प्रत्येकके रसकी ३-३ भावना दे, १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा** और **अनुपान**—१–१ गोली यथावश्यक दिनमें ३–४ वार अदरकके रस और मधु, तुलसीके रस और मधु, तुलसी और बिल्वपत्रके फांट अथवा किसी ज्वरघ्न कषायके अनुपानसे दे। **उपयोग**—अनुपानविशेषसे सर्व प्रकारके तरुण ज्वरोंमें विशेषतः वात और कफप्रधान ज्वरोंमें इसके प्रयोगसे स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। ३–४ दिन इसके प्रयोगसे यदि ज्वर न उतरे और संततज्वरका निर्णय हो जाय तो आगे इसका प्रयोग न करना चाहिये।

(२५) नवायसचूर्णम् ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गदहनाः समाः ।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ ८२ ॥
भक्षयेत् पाण्डुहृद्रोगप्लीहार्शःकामलापहम् ।
नवायसमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ८३ ॥

चरकसंहिता, चि० अ० १६ ।

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, हड़का दल, वहेड़ादल, आँवलादल, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रकके मूलकी छाल प्रत्येकका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण १-१ भाग और लोहभस्म या मंडूरभस्म ९ भाग ले, सबको ३ दिन भँगरेके स्वरसमें मर्दन कर, धूपमें सुखा, पीसकर रख ले। **मात्रा** और **अनुपान** २—४ रत्ती दूध या छाछके साथ दे। **उपयोग**—ज्वरके पीछे जो पाण्डुरोग होता है उसमें तथा हृद्रोग, जीर्ण विषमज्वर, प्लीहाकी वृद्धि, अर्श और कामलामें इससे अच्छा लाभ होता है।

(२६) नागवल्लभरसः ।

कर्षमाना तु कस्तूरी त्वचा टङ्कणकं तथा ।
काश्मीरजन्मदरदपिप्पल्यः स्युर्द्विकार्षिकाः ॥ ८४ ॥
आकारकरभो जातीपत्री जातीफलं विषम् ॥
प्रत्येकं पलमानानि चत्वार्यथ सुखल्वके ॥ ८५ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अहिवल्लीदलरसैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम्।
मुद्गप्रमाणा वटिका लीढा मध्वार्द्रकद्रवैः॥ ८६॥
हन्ति वातं कफं कासं श्वासं शूलं प्रमेहकम्।

(योगरत्नाकर कासाधिकार)

कस्तूरी, दालचीनी और आगपर फुलाया हुआ सुहागा प्रत्येक एक-एक तोला; केसर, शुद्ध हिंगुल तथा छोटी पीपल प्रत्येक दो-दो तोला; अकरकरा, जावित्री, जायफल और शुद्ध बछनाग प्रत्येक चार-चार तोला ले; प्रथम हिंगुलको सूक्ष्म पीस, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, तीन दिन नागरपानके रसमें मर्दन कर, मूँग बराबर गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा** और **अनुपान**—एक गोली अदरकके रस और मधुके साथ खानेसे सब प्रकारके वात और कफप्रधान रोग, कास, श्वास, शरीरका दर्द, मधुमेह आदि रोग नष्ट होते हैं। यह नागवल्लभ रस उत्तम वाजीकर और बलवर्धक है।

(२७) नृपतिवल्लभरसः।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेलाटङ्करामठम्॥ ८७॥
जीरकं तेजपत्रं च यवानीविश्वसैन्धवम्॥
लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम्॥ ८८॥
मरिचं द्विपलं धात्र्याः स्वरसेन विमर्दयेत्॥
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् यकृद्दोषभवांस्तथा॥ ८९॥
ग्रहणीं च तथा हन्ति रसो नृपतिवल्लभः॥

भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार।

जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, आगपर फुलाया हुआ सुहागा, घीमें भुनी हुई हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, पारद, गन्धक और ताम्रभस्म प्रत्येक ४-४ तोला और काली मिर्च ८ तोला ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में और वनस्पतियोंका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, आँवलेके स्वरसकी सात भावना दे, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१-२ गोली। **अनुपान**—जल या छाछ। **उपयोग**—अग्निमान्द्य और उनसे होनेवाले रोग तथा यकृत्के दोषसे होनेवाले अतिसार-ग्रहणी आदि रोगोंमें यह उत्तम योग है।

(२८) पञ्चामृतपर्पटी।

रसलोहाभ्रताम्राणि समभागानि कारयेत्॥ ९०॥
गन्धकं सर्वतुल्यं तु दत्त्वा कुर्याद्धि कज्जलीम्।
ततः पर्पटिकां कृत्वा दद्याद्योग्यानुपानतः॥ ९१॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पञ्चामृता पर्पटिका स्मृता वह्निप्रदीपनी ।
ग्रहणीमतिसारं च पाण्डुरोगमथारुचिम् ॥ ९२ ॥
श्वासं मन्दानलं हन्ति शूलं चैवाम्लपित्तकम् ।

शुद्ध पारद, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म एक-एक भाग तथा शुद्ध गन्धक सबके समान (चार-भाग) ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में मिला, एक दिन मर्दन कर, रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानके अनुसार पर्पटी बना ले। **मात्रा**—१-३ रत्ती दिनमें २-३ बार दे। **अनुपान**—सेंके हुए जीरेके चूर्ण और शहदके साथ चटाकर ऊपरसे दूध, छाछ या दाड़िम आदि फलोंका रस पिलावे। **उपयोग**—अतिसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग, अरुचि, दमा, मन्दाग्नि और शूलरोगमें इसका प्रयोग करे। पञ्चामृतपर्पटीके प्रयोगसे भूख बढ़ती है। अम्लपित्तमें शतपत्र्यादि चूर्ण या द्राक्षादि चूर्णके साथ मिलाकर इसका प्रयोग करे।

वक्तव्य—मैंने पञ्चामृतपर्पटीमें १-१ भाग वंग और यशद(जस्ते)की भस्म मिलाकर **सप्तामृतपर्पटी** बनाई है। पञ्चामृतपर्पटीसे यह अधिक गुणकारक है। अन्त्र-क्षयमें सप्तामृतपर्पटी केवल या स्वर्णपर्पटीके साथ मिलाकर देनेसे विशेष लाभ होता देखा गया है।

(२९) पञ्चामृतलोहगुग्गुलुः ।

रसगन्धकताराभ्रमाक्षिकाणां पलं पलम् ॥ ९३ ॥
लोहस्य द्विपलं चापि गुग्गुलोः पलसप्तकम् ।
मर्दयेदायसे पात्रे दण्डेनाप्यायसेन च ॥ ९४ ॥
कटुतैलसमायोगाद्यामद्वयमतन्द्रितः ।
माषमात्रप्रयोगेण गृध्रसीमवबाहुकम् ॥ ९५ ॥
स्नायुजान् वातजांश्चान्यान्नाशयेन्नात्र संशयः ।

भैषज्यरत्नावली ।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्यभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णमाक्षिकभस्म-प्रत्येक ४-४ तोला, लोहभस्म ८ तोला और साफ किया हुआ गूगल २८ तोला ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, पीछे गूगलको लोहेके खरलमें लोहेकी मूसलीसे थोड़े कड़ुए तेलके छींटे देकर कूटे। जब गूगल नरम हो जाय, तब उसमें कज्जली तथा अन्य भस्में मिला, ६ घंटा मर्दन कर, ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—१-१ गोली सबेरे-शाम दूधसे अथवा चोपचीनी, असगंध, एरण्डमूल, इन्द्रायनके मूल, उशबा, सोंठ और कड़ुए सुरंजानके क्वाथके अनुपानसे दे। **उपयोग**—इसके सेवनसे गृध्रसी, अवबाहुक, कमर और घुटनेका दर्द तथा स्नायुओंमें होनेवाले वातरोगोंमें अच्छा लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(३०) पित्तान्तकरसः ।

जातीकोषफले मांसी तालीशं चन्दनं तथा ॥ ९६ ॥
माक्षीकं विद्रुमं लौहमभ्रचन्द्रं समांशिकम् ॥
सर्वतुल्यं मृतं तारं भावितं धान्यकाम्बुना ॥ ९७ ॥
द्विगुञ्जाभा वटी कार्या पित्तरोगविनाशिनी ।
कोष्ठाश्रितं च यत् पित्तं शाखाश्रितमथापि वा ॥ ९८ ॥
शूलं चैवाम्लपित्तं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
दुर्नाम वान्तिभ्रान्ती च क्षिप्रमेव विनाशयेत् ॥ ९९ ॥
रसः पित्तान्तको ह्येष चन्दनाम्बुनिषेवितः ॥

जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीसपत्र, श्वेत चन्दन, सुवर्णमाक्षिकभस्म, प्रवालपिष्ट, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और कपूर एक-एक भाग तथा रौप्यभस्म सबके बराबर ले, धनियेके क्वाथमें मर्दन कर, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा—१** गोली। **अनुपान—**चन्दनका अर्क या चन्दन भिगोया हुआ जल। यह **पित्तान्तक रस** कोष्ठाश्रित या शाखाश्रित पित्त, पैत्तिक शूल, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, हलीमक, अर्श, वमन, भ्रम आदि सर्व प्रकारके पित्तप्रधान रोगोंको दूर करता है।

(३१) पीयूषवल्लीरसः ।

सूतकं गन्धकं चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कणम् ॥ १०० ॥
रसाञ्जनं च माक्षीकं जातीपत्री यवानिका ।
लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ॥ १०१ ॥
समङ्गाऽतिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवत्वचम् ।
जातीफलं बिल्वनिम्बं कनकं दाडिमच्छदम् ॥ १०२ ॥
अभया धातकी कुष्ठं प्रत्येकं समभागिकम् ।
भावयेत् सर्वमेकत्र भृङ्गराजरसैः पुनः ॥ १०३ ॥
भावना सप्त दातव्याश्चणकाभां वटीं चरेत् ॥
पक्कापक्कमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ १०४ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम् ।
रसः पीयूषवल्ल्याख्यः संग्राही पाचनस्तथा ॥ १०५ ॥

भैषज्यरत्नावली ग्रहण्यधिकार।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, रौप्यभस्म, लोहभस्म, अग्निपर फुलाया हुआ सुहागा, रसौत, माक्षिकभस्म, जावित्री, अजवायन, लौंग, श्वेतचन्दन, नागरमोथा, पाढ़के मूल, जीरा, धनिया, लाजवन्ती, अतीस, लोध, कुड़ाकी छाल, इन्द्रयव, दालचीनी, जायफल, बेलगिरी, नीमकी पत्ती, शुद्ध धतूरेके बीज, दाड़िमका छिलका, हरड़ेदल,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धायके फूल और कूठ प्रत्येक समभाग ले; प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में तथा औषधोंका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, भँगरेके खरसमें सात दिन मर्दन कर, चने बराबर गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर रख ले । **मात्रा**—१-२ गोली । **अनुपान**—ठंडा जल, इसबगोलका लुआब या बेलफलका शरबत । **गुण और उपयोग**—यह पीयूषवल्ली रस पाचन और ग्राही है तथा किसी भी प्रकारके अतिसार और ग्रहणीको दूर करता है ।

(३२) पुटपक्वविषमज्वरान्तकरसः ।

हिङ्गूलसंभवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलम् ।
पर्पटीरसवत् पाच्यं सूताङ्घ्रि हेमभस्म च ॥ १०६ ॥
लौहमभ्रकताम्रं च रसस्य द्विगुणं क्षिपेत् ।
टङ्कणं गैरिकं वङ्गं प्रवालं च रसार्धकम् ॥ १०७ ॥
मुक्ता शङ्खं शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् ।
निर्गुण्डीसुरसाद्रावैः कालमेघरसेन च ॥ १०८ ॥
भावयित्वा प्रकुर्याच्चु गोलं संशोषयेत्ततः ।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ १०९ ॥
प्रातः सायं भक्षयेत्तु द्विगुञ्जाफलमानतः ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति राजयक्ष्माणमेव च ॥ ११० ॥
प्लीहानं यकृतं शोथं कासं श्वासमथारुचिम् ।
ग्रहणीमामदोषं च मेहं पाण्डुं तथैव च ॥ १११ ॥
पुटपक्वो रसः प्रोक्तो विषमज्वरनाशनः ।

भैषज्यरत्नावलीसे किंचित् परिवर्तित ।

हिंगुलसे निकाला हुआ पारद १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानसे पर्पटी बना, उसको खरलमें डालकर मर्दन करे । जब वह सूक्ष्म हो जाय तब उसमें सोनेकी भस्म ¼ तोला, लोहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, ताम्रभस्म २ तोला, शुद्ध सुहागा ½ तोला, शुद्ध सोनागेरू ½ तोला, वंगभस्म ½ तोला, प्रवालभस्म ½ तोला, मोतीकी पिष्टी ¼ तोला, शंखभस्म ¼ तोला और मोतीकी सीपकी भस्म ¼ तोला डाल, सम्भालूकी पत्ती, तुलसीकी पत्ती और कालमेघ-इन तीनोंके खरसमें एक-एक दिन मर्दन कर, उसका दो सीपोंके बीचमें रह सके ऐसा कुछ चिपटा गोला बना, सुखा, बराबर मापकी दो मोतीकी सीप ले, उसके दोनों किनारोंको संपुट ठीक बने ऐसे घिस, उसमें गोलेको रख, ऊपर एक कपड़ा लपेट, उस कपड़ेके ऊपर पानीमें अच्छी तरह मसली हुई मिट्टीका दो अंगुल मोटा लेप करे; लेप थोड़ा सूखने पर उस सम्पुटको निर्धूम कंडोंकी आँचमें रखे । जब ऊपरकी मिट्टी कुछ लाल हो या भीतरसे गन्धक गरम होनेकी गन्ध आने लगे तब उसको अग्निसे बाहर निकाल, स्वांगशीतल

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होनेपर ऊपरकी मिट्टी हटा, संपुटसे गोला निकाल, उसको खरलमें खूब बारीक पीसकर शीशीमें भर ले। इसको **पुटपक्व विषमज्वरान्तक रस** कहते हैं। **मात्रा**—१-२ रत्ती। **अनुपान** और **उपयोग**—इसका उपयोग जीर्णज्वर, यकृत् और प्लीहाकी वृद्धियुक्त ज्वर, राजयक्ष्मा, पांडुरोग और प्रमेहमें गिलोयके स्वरस या क्वाथके साथ, कास और श्वासमें अडूसेके स्वरसके साथ तथा आमदोष और ग्रहणी रोगमें भुने हुए जीरेका चूर्ण १ माशा और मधु ३ माशेके साथ करे।

(३३) पुनर्नवामण्डूरम् ।

पुनर्नवात्रिवृद्व्योषविडङ्गं दारु चित्रकम् ॥ ११२ ॥
कुष्ठं हरिद्रे त्रिफला दन्ती चव्यं कलिङ्गकाः ।
कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं चेति पलोन्मितम् ॥ ११३ ॥
मण्डूरं तु समं चूर्णाद्गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
कोलवद्गुटिकाः कृत्वा तक्रेणालोड्य ना पिबेत् ॥ ११४ ॥
ताः पाण्डुरोगान् प्लीहानमर्शांसि विषमज्वरम् ।
यकृद्विकारं श्वयथुं हन्युः कुष्ठं कृमींस्तथा ॥ ११५ ॥

चरकसंहिता, चि० अ० १६ से किञ्चित्परिवर्तित ।

पुनर्नवाके मूल, निशोथ, सोंठ, काली मिर्चे, छोटी पीपल, वायविडङ्ग, देवदार, चित्रकके मूलकी छाल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रेका दल, बहेड़ादल, आँवलादल, दन्तीमूल, चवक (चाव), इन्द्रजव, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा-प्रत्येकका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण ४-४ तोला और मण्डूरभस्म सबके बराबर (८० तोला) ले। प्रथम मण्डूरभस्मको अठगुने (१२८० तोले) गोमूत्रमें पकावे। जब वह गाढ़ा होने लगे तब नीचे उतार, उसमें अन्य द्रव्योंका चूर्ण मिला, ३ घंटा मर्दनकर ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बना कर सुखा ले। **मात्रा**—१-२ गोली। **अनुपान** और **उपयोग**—इसको पाण्डुरोग, मन्दाग्नि और अर्श (बवासीर) में छाछके साथ, प्लीहा और यकृत्की वृद्धि तथा शोथमें पुनर्नवादिक्वाथके अनुपानसे और कृमिविकारमें मुस्तादिक्वाथके अनुपानसे दे।

(३४) प्रवालपञ्चामृतरसः ।

प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम् ।
प्रवालमात्रं द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव ॥ ११६ ॥
एकीकृतं तत् खलु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम् ।
पुटं विदध्यात् खलु नागसंज्ञमुद्धृत्य तद्रस क्षिपेत् करण्डे ।
नित्यं द्विवारं मधुना घृतेन वल्लप्रमाणं हि नरेण सेव्यम् ॥ ११७ ॥
ग्रहणीं राजयक्ष्माणं श्वासं कासं हृदामयम् ।
पञ्चामृतः प्रवालाद्यो हन्ति शूलं तथैव च ॥ ११८ ॥

१ मुस्तादि क्वाथका पाठ सिद्धयोगसंग्रहमें पृ. ६४ पर देखें।

National Ayurvedic Library
Lajpat Bagh, New Delhi-26
Call No.
Book No. 000846
Acc No.
L:68

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रवालचूर्ण दो भाग तथा मोती, शंख, मोतीकी सीप और कौड़ी–इन प्रत्येकका कपड़छान चूर्ण एक-एक भाग ले; सबको आकके दूधमें एक दिन मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, शरावसंपुटमें रखकर गजपुट दे। स्वाङ्गशीतल होनेपर संपुटसे टिकियाँ निकाल, पीस, कपड़छान करके शीशीमें भर ले। **मात्रा** २–४ रती। **अनुपान—** मधु और घृत। यह प्रवालपञ्चामृतरस ग्रहणी, राजयक्ष्मा, श्वास, कास, हृद्रोग और परिणामशूलको दूर करता है।

(३५) बालार्करसः ।

रसकं विद्रुमं चैव शृङ्गभस्म च हिङ्गुलम् ।
गोरोचनां च कर्चूरं केशरं च समांशकम् ॥ ११९ ॥
ब्राह्मीरसेन संमर्द्य कुर्याद्गुञ्जामितां वटीम् ।
वातश्लेष्मातिसारघ्नः कृमिकासज्वरापहः ॥ १२० ॥
वम्यामाक्षेपके चैव योज्यो बालार्कसंज्ञकः ।

शुद्ध खपरिया अथवा यशदकी भस्म, प्रवालकी पिष्टी, साँभरसिंगकी भस्म, शुद्ध हिंगुल, गोरोचन, कचूरेका चूर्ण और केशर सब समभाग ले; प्रथम हिंगुलको खूब महीन पीस, उसमें पहिले केशर और पीछे अन्य द्रव्योंका चूर्ण मिला, ब्राह्मीके स्वरसमें एक दिन मर्दन कर, १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान—** यथावश्यक दिनमें ३–४ बार १-१ गोली अदरक, नागरपान, अडूसेकी पत्ती या ब्राह्मी–इनमेंसे किसी एकके स्वरस और मधुके साथ देनेसे बालकोंके वात-कफप्रधान अतिसार, कृमिविकार, खाँसी, ज्वर, उलटी-कै और आक्षेपक ये रोग नष्ट होते हैं।

(३६) भागोत्तररसः ।

रसभागो भवेदेको, गन्धको द्विगुणो भवेत् ॥ १२१ ॥
त्रिभागा पिप्पली, पथ्या चतुर्भागा, बिभीतकः ।
पञ्चभागस्तथा वासा षड्भागा, सप्तभागकम् ॥ १२२ ॥
भार्गीमूलं, तथा यष्टीमधुकं चाष्टभागकम् ।
ततः सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बूलजैर्द्रवैः ॥ १२३ ॥
एकविंशतिवारांस्तु दद्याद्योग्यानुपानतः ।
कासं श्वासं निहन्त्येष भागोत्तररसः शुभः ॥ १२४ ॥

भैषज्यरत्नावलीसे किञ्चित्परिवर्तित ।

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, छोटी पीपल ३ भाग, हरड़का दल ४ भाग, बहेड़ादल ५ भाग, अडूसाके मूलकी छाल या छायामें सुखाये हुए फूल ६ भाग, भारंगमूल ७ भाग और मुलेठी ८ भाग ले; प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, बबूल (कीकर) की अन्तर्छालके

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्वाथकी २१ भावना दे, सुखा, कपड़ेसे छान कर शीशीमें भरले। **मात्रा**—२-४ रत्ती। **अनुपान**—मधु(शहद)के साथ चटाकर ऊपरसे गोजिह्वादिक्वाथ, द्राक्षारिष्ट या शर्वत जूंफा दे। **उपयोग**—सब प्रकारकी खाँसीमें यह उत्तम योग है। यदि खाँसीके साथ श्वास भी हो तो इसके साथ ५—८ रत्ती सोमचूर्ण मिलाकर इसका प्रयोग करे।

(३७) मधुमेहविनाशिनी वटिका।

पलमेकं त्रिवङ्गं स्यात्रिपलं मधुनाशिनी।
त्रिपलं निम्बपत्राणां शिलाजतुपलानि षट् ॥ १२५ ॥
सर्वं संकुट्य वटिकाः कार्या गुञ्जात्रयोन्मिताः।
मधुमेहे प्रयोक्तव्या मधुमेहविनाशिनी ॥ १२६ ॥
भस्म हेम्नस्तु कर्षैकं योगेऽस्मिन् दीयते यदि।
दृश्यते हि गुणाधिक्यं मधुमेहविनाशने ॥ १२७ ॥

त्रिवङ्गभस्म ४ तोला, छायामें सुखाई हुई गुड़मारकी पत्तीका चूर्ण १२ तोला, छायामें सुखाई हुई नीमकी पत्तीका चूर्ण १२ तोला और शुद्ध शिलाजतु २४ तोला ले, सबको एकत्र मिला, खूब कूट कर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना ले। ४-४ घंटेसे ३-३ गोली दिनमें चार बार जल या ताजी हल्दी और आँवलेके स्वरसके साथ खानेसे मधुमेहमें अच्छा लाभ होता है। यदि इस योगमें १ तोला सुवर्णभस्म डाली जाय तो यह विशेष गुण करता है।

(३८) महागन्धकयोगः।

रसगन्धकयोः कार्यं कर्षमेकं सुशोधितम्।
तयोः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत् ॥ १२८ ॥
जात्याः फलं तथा कोशो लवङ्गारिष्टपत्रके।
एलाबीजं तथा कर्षं निर्गुण्डीरसमर्दितम् ॥ १२९ ॥
मुक्तागृहे तु संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत्।
गुञ्जाषट्कप्रमाणेन तोयेन सह भक्षयेत् ॥ १३० ॥
महागन्धकमेतद्धि सर्वातीसारनाशनम्।
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ १३१ ॥

भैषज्यरत्नावली, अतिसाराधिकार।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायचीके बीज और नीमकी ताज़ी कोमल पत्ती प्रत्येक समभाग ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसको घीसे पोती हुई लोहेकी करछीमें रख, कोयलेकी मन्द आँच पर कज्जली सब द्रव हो जाय इतनी गरम कर, नीचे उतार, स्वांगशीतल होनेपर करछीसे निकाल, खरलमें पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करे। पीछे जलसे धोई हुई नीमकी पत्ती डालकर खूब मर्दन कर, अन्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, उसमें संभालूकी पत्तीका रस डाल, ६ घण्टेतक मर्दन करे, उसका गोला बना, दो मोतीकी सीपोंमें उस गोलेको रख कर विषमज्वरान्तकरसमें लिखी हुई विधिके अनुसार पुटपाक करे। पुटपाक तैयार होनेपर भीतरका गोला निकाल, पीस, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१-२ गोली। **अनुपान**—जल, मीठे दाड़िमका रस, चावल भिगोये हुए जल या किसी अतिसारहर क्वाथके अनुपानसे दे। **गुण और उपयोग**—यह उत्तम पाचन, दीपन और ग्राही योग है। अतिसार, प्रवाहिका और ग्रहणीरोगमें इससे अच्छा लाभ होता है।

(३९) महावातराजरसः।

मदनबीजबलीशजलोहजैर्द्विपिचुभिः पृथगेकपिचून्मितैः।
गगनदारुसितासुमजातिकाफलदलत्रुटिचन्द्रमरीचकैः॥ १३२॥
शशिभुजा मकरध्वजरञ्जितै रवियुजा फणिफेनसमञ्चितैः।
मदनजेन रसेन सुपेषितैः पुनरनातपमध्यविशोषितैः॥ १३३॥
विजयते हरिमन्थसहोदरो रसवरो बहुरोगहरो नृणाम्॥ १३४॥

(सिद्धभैषज्यमञ्जूषा पृ. ३२)।

शुद्ध किये हुए धतूरेके बीज, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और लोहभस्म प्रत्येक दो-दो तोला; अभ्रकभस्म, दालचीनी, लवंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायचीके बीज, कपूर, काली मिर्च और मकरध्वज प्रत्येक एक-एक तोला तथा अफीम बारह तोला ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसमें मकरध्वज, लोहभस्म तथा अभ्रकभस्म मिला, एक दिन मर्दन कर, उसमें अफीम और अन्य वनस्पतियोंका चूर्ण मिला कर तीन दिन धतूरेके पत्रस्वरसमें (तथा तीन दिन अदरकके रसमें) मर्दन कर, अन्तमें कपूर मिला, तीन घंटा घोट, एक-एक रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। इसको **महावातराजरस** कहते हैं। **मात्रा**—१-२ गोली। **अनुपान**—यह रस मधुमेहमें बिल्वपत्रस्वरस, पार्श्वशूलमें पुष्करमूल और भारंगीमूलके क्वाथ, अतिसारमें बिल्वादि[1] चूर्ण, कालातिसार(हैजा)में दरियाई नारियल और जहरमोहरा पत्थरके घासे, वातरोगमें अश्वगन्धा और एरण्डमूलके क्वाथ तथा प्रतिश्यायमें अदरकके रसके साथ देनेसे उन रोगोंको नष्ट करता है।

(४०) महाशङ्खवटी।

पटुपञ्चकहिङ्गुशङ्खचिञ्चाभसितव्योषबलीश्वरामृतानि।
शिखिशेखरिकाम्लवर्गवारा भृशभाव्यानि यथाऽम्लतां व्रजन्ति॥ १३५॥
महाशङ्खवटी ख्याता भोजनान्ते प्रभक्षिता।
दीपनी परमा हन्ति मन्दाग्निग्रहणीमुखान्॥ १३६॥

भैषज्यरत्नावली, अग्निमान्द्याधिकार।

---

१ बिल्वादि चूर्णका पाठ सिद्धयोग संग्रहमें पृ. २७ पर देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सेंधानमक, कालानमक (सोंचर), सामुद्र लवण, सांभर लवण, नौसादर, घीमें सेंकी हुई हींग, शङ्खभस्म, इमलीका क्षार, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, वछनाग सब समभाग ले; प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, चित्रकके मूलके क्वाथ और अपामार्गके पत्तोंके स्वरसकी १-१, तथा विजोरा, खट्टे दाड़िम (अनार), कागजी नीबू आदि अम्ल फलोंके रसकी ७ भावना दे, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा, अनुपान** और **उपयोग**—भोजनके बाद २ गोली जलके साथ सेवन करे। इसके सेवनसे अन्नका पाचन होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और अग्निमान्द्य, अजीर्ण, पेटका अफारा और दर्द, वात-कफप्रधान ग्रहणीरोग आदि दूर होते हैं। गुरु भोजन खानेके वाद इसको लेनेसे भोजन अच्छी तरह पच जाता है।

(४१) मुक्तापञ्चामृतरसः ।

मुक्ताप्रवालखुरवङ्गककम्बुशुक्तिभूतिं वसूदधिद्विगिन्दुसुधांशुभागाम् ।
इक्षो रसेन सुरभेः पयसा विदारीकन्यावरीसुरसहंसपदीरसैश्च ॥ १३७ ॥
संमर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिर्दद्यात् पुटं सुमृदुलं भिषजां वरिष्ठः ।
पञ्चामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुक्तं गुञ्जाचतुष्टयमितं चपलारजश्च ॥ १३८ ॥
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनां दुग्धेन च प्रपिबतः खलु पथ्यभोक्तुः ।
जीर्णज्वरः क्षयमियादथ राजयक्ष्मा कासादिलिङ्गसहितश्च क्षयं प्रयाति ॥

योगरत्नाकर, ज्वराधिकारसे किञ्चित्परिवर्तित ।

मोतीका चूर्ण ८ भाग, प्रवालका चूर्ण ४ भाग, वंगभस्म २ भाग, शङ्खका चूर्ण १ भाग और मोतीकी सीपका चूर्ण १ भाग, सबको मजवूत पत्थरके खरलमें—ईख (गन्ने)का रस, गायका दूध तथा विदारीकन्द, ग्वारपाठा (घीकुआर), शतावर, तुलसी और हंसराज-इन प्रत्येकके स्वरसमें ६-६ घण्टे मर्दन कर, गोला बना, सुखा, शरावसंपुटमें बन्द कर, ३-४ सेर जंगली कंडोंकी आँच दे, स्वाङ्गशीतल होनेपर पीस कर शीशीमें भर ले। **मात्रा** और **अनुपान**—इसकी दो रत्ती चार रत्ती छोटी पीपलके चूर्णके साथ मिलाकर ३-४ मासकी ब्यायी (प्रसूता) गायके धारोष्ण दूधके साथ सवेर-शाम दे। **उपयोग**—जीर्णज्वर और कासादि लक्षण सहित राजयक्ष्मामें इससे लाभ होता है। इसके साथ $\frac{१}{१६}$ रत्ती सुवर्णभस्म मिलाकर इसका प्रयोग करे तो अधिक गुण होता है।

(४२) मृगाङ्को रसः ।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं ततः ।
गन्धकं च समं तेन रसपादं तु टङ्कणम् ॥ १४० ॥
विमर्द्य काञ्जिकेनाथ गोलं कृत्वा विशोषयेत् ।
दत्त्वा शरावे संमुद्रय पचेल्लवणयन्त्रके ॥ १४१ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अष्टयामं प्रयत्नेन मृगाङ्को जायते रसः ।
गुञ्जामितः कणाचूर्णनवनीतमधुप्लुतः ॥ १४२ ॥
निहन्ति राजयक्ष्माणमाजमांसरसाशिनः ।

सुवर्णभस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, मोतीका कपड़छान चूर्ण २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध सुहागा ¾ भाग ले, प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्य मिला, एक दिन खट्टी काँजीमें घोट, एक गोला बना, धूपमें सुखा, दो शरावोंके बीचमें रख, शरावकी संधिपर कपड़मिट्टी करके लवणयन्त्रमें आठ प्रहर पकावे। यन्त्र स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकाल, एक दिन पीस कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—१-२ रत्ती २-४ रत्ती पीपलके चूर्ण, ताजे मक्खन और मधुमें मिलाकर चाटे। पथ्यमें बकरीका मांसरस और रोगी निरामिषभोजी हो तो बकरीके दूधका सेवन करे। यह मृगाङ्क रस राजयक्ष्माके लिये उत्तम औषध है।

(४३) यष्ट्यादिलोहम् (धात्रीलोहम्) ।

यष्टीरजो लोहरजोऽथ धात्रीसमुद्भवं चूर्णमिह प्रवृद्धम् ।
द्विरुत्तरं सप्तदिनानि सम्यग्गुडूचिकास्वाङ्गरसेन भाव्यम् ॥ १४३ ॥
ततोऽर्कसन्तापविशोषितं पुनर्विचूर्णितं क्षौद्रघृतान्वितं भजन् ।
निवारयत्येव हि शूलमुल्बणं हितान्नभोजी परिणामसम्भवम् ॥ १४४ ॥

(लोहसर्वस्व)

मुलेठीका कपड़छान चूर्ण एक भाग, लोह भस्म दो भाग और गुठली निकाले हुए आँवलेका कपड़छान चूर्ण चार भाग-इनको खरलमें डाल, ताजी गिलोयके स्वरसकी सात भावना दे, धूपमें सुखाकर एक माशाकी मात्रामें तीन माशा मधु और छ माशा गोघृतके साथ खानेसे परिणामशूल अच्छा होता है। इस योगको **यष्ट्यादिलोह** कहते हैं; अन्य ग्रन्थोंमें इसको **धात्रीलोह** नाम दिया है।

(४४) योगराजः ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ।
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ १४५ ॥
पञ्चाश्मजतुनो भागाः पञ्च रूप्यमलस्य च ।
माक्षिकस्य च शुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ १४६ ॥
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत् सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् ।
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ १४७ ॥
सार्धमाषसितां मात्रां ततः खादेद्यथाग्नि ना ।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १४८ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम्।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम्॥ १४९॥
कुष्ठान्यजीर्णकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम्।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च॥ १५०॥

चरक चि० अ० १६।

हड़का दल १ भाग, बहेड़ादल १ भाग, आँवलादल १ भाग, सोंठ १ भाग, काली मिर्च १ भाग, छोटी पीपल १ भाग, चित्रकके मूलकी छाल १ भाग, वायविडङ्ग १ भाग, लौहशिलाजतु ५ भाग, रौप्यशिलाजतु ५ भाग, माक्षिकभस्म ५ भाग, लोहभस्म ५ भाग और मिश्री ८ भाग ले; भस्में और शिलाजीत छोड़कर अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण बना, उसमें भस्में तथा शिलाजीत मिला, खूब कूट, ६-६ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर रख छोड़े। यदि रौप्यशिलाजतु न मिले तो लौहशिलाजतु १० तोला ले। **मात्रा और अनुपान**—१-२ गोली सवेर-शाम दूधसे दे। **उपयोग**—पांडुरोग, खासी, राजयक्ष्मा, जीर्ण विषमज्वर, कुष्ठ, मन्दाग्नि, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, अपस्मार, कामला और अर्शमें इसका प्रयोग करे। अपस्मारमें इस योगसे लाभ होता देखा गया है।

(४५) योगराजगुग्गुलुः।

नागरं पिप्पली चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ।
कुपीलुश्चाजमोदा च सर्षपा जीरकद्वयम्॥ १५१॥
रास्ना शक्रयवाः पाठा विडङ्गं गजपिप्पली।
कटुकाऽतिविषा भार्गी वाजिगन्धा वचा तथा॥ १५२॥
प्रत्येकं कार्षिकाणि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः।
द्विकर्षं रामठस्यापि पलं दद्याद्रसोनतः।
द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत्॥ १५३॥
एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयश्च गुग्गुलुः।
गुडूच्या दशमूलस्य क्वाथे पक्वो नवः शुभः॥ १५४॥
वङ्गं रौप्यं च नागं च लौहं ताप्यमथाभ्रकम्।
मण्डूरं रससिन्दूरं प्रत्येकं पलसंमितम्॥ १५५॥
रक्तित्रयसिताः कार्या वटीर्देया यथोचितैः।
गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः॥ १५६॥
रास्नादिक्वाथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम्।
मेदोवृद्धिं तथा कुष्ठं मञ्जिष्ठादियुतो हरेत्॥ १५७॥
क्वाथेन निम्बनिर्गुण्ड्योः सर्वव्रणनिषूदनः।

शार्ङ्गधरसंहिता म० खं० अ० ७ से किंचित्परिवर्तित।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सोंठ, छोटी पीपल, चाब, पीपलामूल, चित्रकके मूलकी छाल, शुद्ध कुचला, अजमोद, पीली सरसों, जीरा, कलोंजी (मंगरैला), रास्ना, इन्द्रजव, पाढ़के मूल, वायविडंग, बड़ी पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगमूल, असगंध और बच–इन प्रत्येकका कपड़छान चूर्ण १-१ तोला; घीमें सेकी हुई हींग २ तोला, लहसुन छिला हुआ ४ तोला, हर्रेका दल, बहेड़ादल और आँवले तीनों समभागका कपड़छान चूर्ण मिलाकर ४६ तोला; गिलोय और दशमूलके क्वाथमें शुद्ध किया हुआ गूगल ९२ तोला; वंगभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, माक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म और रससिन्दूर प्रत्येक ४-४ तोला ले। प्रथम गिलोय और दशमूलका मोटा चूर्ण ४० तोला लेकर उसका अठगुने जलमें क्वाथ करे। जब आठवाँ हिस्सा जल बाकी रहे तब कपड़ेसे छान, उसमें १०० तोला गूगल भिगोकर ४-६ घंटा रख दे। बादमें हाथसे खूब मसलकर कपड़ेसे छान ले। पीछे उसको मन्दी आँचपर पकावे। जब गूगल पक जावे तब उसमें सूक्ष्म पीसा हुआ रससिन्दूर, भस्में तथा अन्य द्रव्योंका चूर्ण मिला, अच्छी तरह खरल या इमामदस्तेमें कूट कर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना ले। कई वैद्य गूगलको गिलोय और त्रिफलाके क्वाथमें शुद्ध किये विना वैसे ही साफ और कूट कर उसमें अन्य द्रव्य मिलाकर गोलियाँ बना लेते हैं। इस प्रकार बनाये हुए योगको **महायोगराजगुग्गुलु** और विना भस्मोंके बनाये हुए योगको **लघुयोगराजगुग्गुलु** कहते हैं। **मात्रा**—१-२ गोली महायोगराजगुग्गुलुकी और २—५ गोली लघुयोगराजगुग्गुलुकी है। **अनुपान** और **उपयोग**—लघु या महायोगराजगुग्गुलु रास्नादि क्वाथ अथवा दूधके साथ वातरोगोंमें, महामञ्जिष्ठादि क्वाथके साथ मेदोवृद्धि, कुष्ठ तथा अनार्तव–पीडितार्तव आदि स्त्रीरोगोंमें और नीमकी अन्तरछाल तथा संभालूके मूल या पत्तीके क्वाथके साथ सब प्रकारके व्रणोंमें दे।

(४६) रक्तपित्तकुलकण्डनरसः ।

शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिकभुजङ्गरङ्गकम् ।
मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेदथ पृथग्द्रवैस्त्रिशः ॥ १५८ ॥
चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृषपल्लवस्य च ।
धान्यवारणकणाशतावरीशाल्मलीवटजटामलस्य च ॥ १५९॥
रक्तपित्तकुलकण्डनाभिधो जायते रसवरोऽस्रपित्तिनाम् ।
प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवितस्तु वसुरक्तिकासितः ॥ १६० ॥

(योगरत्नाकर)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवालचूर्ण, सुवर्णमाक्षिकभस्म, नागभस्म और वंगभस्म समभाग ले; प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्य मिलाकर श्वेत चन्दनका हिम, ताजे कमलके पुष्प–चमेलीके पुष्प और अडूसे(बासे)की ताजी पत्ती इनका स्वरस, धनिया तथा गजपीपलका क्वाथ, शतावरी, सेमलके मूल, वटजटा और आँवलेका स्वरस इन प्रत्येककी ३-३ भावनायें दे, छायामें सुखा, सूक्ष्म चूर्ण करके

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शीशीमें भर ले । **मात्रा**—४-८ रत्ती । **अनुपान**—अडूसेका खरस और मधु अथवा श्वेत कूष्माण्ड(पेठे)का रस । यह रस रक्तपित्तके लिये (शरीरके किसी अन्तर अवयवसे रक्त आनेके लिये) उत्तम औषध है ।

(४७) रक्तपित्तहररसः ।

मुक्ता प्रवालं शुक्तिश्च कम्बु लाक्षा च गैरिकम् ।
गोदन्ती रक्तबोलश्च रसभस्म समांशकम् ॥ १६१ ॥
दूर्वेन्दीवरकूष्माण्डस्वरसेन विभावितम् ।
चतुर्गुञ्जासितं लीढं मधुना रक्तपित्तजित् ॥ १६२ ॥

मोती, प्रवाल, मोतीकी सीप, शंख, कच्ची लाख, शुद्ध सोनागेरू, गोदन्ती, खूनखराबा और रससिन्दूर–इनका सूक्ष्म चूर्ण समभाग ले; दूब, रक्तकमल और श्वेत कूष्माण्ड (पेठे) के खरसकी तीन-तीन भावना दे (इनके खरसमें ३-३ दिन मर्दन कर), सुखाकर शीशीमें भर ले । **मात्रा**—४ रत्ती । **अनुपान**—मधु । रक्तपित्तको दूर करनेके लिये यह उत्तम योग है ।

(४८) रसराजरसः ।

पलैकं रससिन्दूरं व्योमभस्म च कार्षिकम् ।
तदर्धं काञ्चनं दद्यान्मुक्तां विद्रुममेव च ॥ १६३ ॥
लौहं रौप्यं मृतं वङ्गं वाजिगन्धां लवङ्गकम् ।
जातीकोषफले क्षीरकाकोलीं तगरं तथा ॥ १६४ ॥
कन्यायाः काकमाच्याश्च रसैः पिष्ट्वा वटीं चरेत् ।
गुञ्जाद्वयोन्मितां दत्त्वा गोक्षीरमनुपाययेत् ॥ १६५ ॥
पक्षाघातेऽर्दिते वाते हनुस्तम्भेऽपतन्त्रके ।
आक्षेपके कर्णनादे तथैव मस्तकभ्रमे ॥ १६६ ॥
सर्ववातविकारेषु रसराजः प्रकीर्तितः ।

रससिन्दूर ४ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, सुवर्णभस्म, मोतीकी पिष्टी, प्रवालकी भस्म या पिष्टी, लोहभस्म, रौप्यभस्म, वङ्गभस्म, असगन्ध, लौङ्ग, जायपत्री, जायफल, काकोली और तगर प्रत्येक आधा-आधा तोला ले । प्रथम सिन्दूरको खूब महीन पीस, उसमें अन्य भस्में तथा वनस्पतियोंका कपड़छान चूर्ण मिला, एक-एक दिन ग्वारपाठे और मकोयके रसमें मर्दन कर, २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले । **मात्रा** और **अनुपान**—१-१ गोली सवेर-शाम शहदमें चटाकर ऊपरसे गायका दूध दे । **उपयोग**—सब प्रकारके वातरोगोंमें, विशेषतः पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, आक्षेपक, कानमें आवाज होना और शिरमें चक्कर आना—इन विकारोंमें इसका प्रयोग करे ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(४९) रसादिप्रलेपः ।

रसद्विजीरद्विनिशामरीचसिन्दूरदैत्येन्द्रमनःशिलानाम् ।
चूर्णीकृतानां घृतमिश्रितानां त्रिभिः प्रलेपैरपयाति पामा ॥ १६७ ॥

वैद्यजीवन ।

पारा, जीरा, काली जीरी (अरण्यजीरक), हल्दी, आँबाहल्दी, काली मिर्च, सिन्दूर, गन्धक और मैनसिल प्रत्येक सब समभाग ले । प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण तथा घी अथवा सिक्थतैल सबके समान मिला, तीन दिन खरलमें मर्दन करके रख छोड़े । इस योगमें चकवड़ (पँवाड़) के बीज १ भाग मिलानेसे विशेष लाभ होता है । **उपयोग**—कण्डू, पामा, दाद और विचर्चिकामें रोगस्थानको गरम जलसे धोकर लगावे ।

(५०) रसादिचूर्णम् ।

रसबलिघनसारकोलमज्जामरकुसुमाम्बुधरप्रियङ्गुलाजाः ।
मलयजमगधात्वगेलपत्रं दलितमिदं परिभाव्य चन्दनाद्भिः ।
मधुमरिचयुतं रजोऽस्य माषं जयति वमिं प्रबलां विलिह्य मर्त्यः ॥ १६८ ॥

योगरत्नाकर, वमनाधिकार ।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, बेरकी गुठलीका मग्ज, लौंग, नागरमोथा, प्रियङ्गु (गुजराती-घंउला), धानका लावा (खील), सफेद चन्दन, छोटी पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपात प्रत्येक समभाग ले । प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्योंका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, चन्दनके अर्कमें या चन्दनका चूर्ण (१ भाग) जल (२ भाग) में १२ घंटा भिगो, कपड़ेसे छानकर उस जलमें एक दिन मर्दन करके छायामें सुखा ले । **मात्रा**—२-६ रत्ती । २-३ घंटे बाद या यथावश्यक दिनमें कई बार दे । **अनुपान**—मधु (शहद), ठण्ढा जल, लाजमण्ड, चन्दनादि अर्क या पोदीनेका रस । **उपयोग**—वमन (उल्टी-कै), अम्लपित्त, हिचकी और विदग्धाजीर्णमें यह उत्तम योग है । इसका केवल या इसके साथ २ रत्ती जहरमोहरापिष्टी मिलाकर उपयोग करे ।

(५१) रसादिवटी ।

रसबलिघनसारचन्दनानां सनलदसेव्यपयोदजीवनानाम् ।
अपहरति वटी मुखस्थितेयं सकलसमुत्थितदाहमश्रमेण ॥ १६९ ॥

योगरत्नाकर, दाहाधिकार ।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, श्वेत चन्दन, जटामांसी, नेत्रवाला, नागरमोथा और खस प्रत्येक समभाग ले, प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्योंका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, गुलाबके अर्क या चन्दनादि अर्कमें २-३ दिन मर्दन कर, दो-दो रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले, या सुखा कर चूर्णके रूपमें रख ले।

चन्दनादि अर्क बनानेकी विधि—उत्तम चन्दनका चूर्ण, मौसिमी गुलाब, केवड़ा, बेदमुश्क और कमलके फूल—सबको एकत्र कर उसमें अठगुना पानी डाल कर भपकेमें आधा अर्क खींचे। मैंने इस प्रकार तैयार किये हुए अर्कका **चन्दनादि अर्क** नाम रक्खा है। मोती-प्रवाल आदिकी पिष्टी बनानेमें इसीका प्रयोग करता हूं। यदि बेदमुश्कके फूल न मिलें तो मौलसरीके फूल डाले। **मात्रा**—१-२ गोली (२—४ रत्ती)। **अनुपान**—जल, गुलाबका अर्क, चन्दनादि अर्क या लाजमण्ड। **उपयोग**—किसी भी प्रकारके दाह, तृषा, हिक्का, विसूचिका और वमनमें इस योगका उत्तम उपयोग होता है। **वक्तव्य**—मैं इस योगमें छोटी इलायची तथा दरियाई नारियल (जहरी नारियल) का चूर्ण और मिलाता हूं। इससे विशेष लाभ होता देखा गया है।

(५२) रोहितकलौहम् ।

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः ।
यकृत्प्लीहभवं शोथं पाण्डुरोगं च नाशयेत् ॥ १७० ॥

हड़का दल, बहेड़ादल, आँवलादल, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, चित्रकके मूलकी छाल, नागरमोथा और वायविडङ्ग प्रत्येक १-१ भाग, रोहीडाके वृक्षकी अन्तर्छाल ९ भाग—इन सबका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण कर, उसमें लोहभस्म या मंडूरभस्म ९ भाग मिला, रोहेडाके वृक्षकी अन्तर्छालके क्वाथकी ७ भावनायें दे, छायामें सुखा, पीसकर रख ले। **मात्रा**—३ रत्ती। **अनुपान**—गोमूत्र या छाछ। **उपयोग**—यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि-शोथ, पाण्डुरोग और जीर्ण विषमज्वरमें यह अच्छा लाभ देनेवाला योग है।

(५३) लक्ष्मीविलासो रसः ।

अभ्रभस्म पलैकं स्यात्तदर्धौ रसगन्धकौ ।
तत्समं चापि कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ १७१ ॥
वृद्धदारुकबीजं च बीजं धत्तूरकस्य च ।
त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीकन्दमेव च ॥ १७२ ॥
शतावरी तथा नागबला चातिबला तथा ।
गोक्षुरं शूकशिम्बी च नैचुलं बीजमेव च ॥ १७३ ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं नागवल्लीरसैः पुनः ।
निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ॥ १७४ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

निहन्ति कफवातोत्थान् रोगान् घोरानशेषतः।
प्रतिश्यायं ज्वरं कासं श्वासं यक्ष्माणमेव च॥ १७५॥
लक्ष्मीविलाससंज्ञोऽयं बल्यो वृष्योऽग्निदीपनः।

अभ्रकभस्म १ पल (४ तोला), पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, कपूर २ तोला तथा जावित्री, जायफल, बिधारेके बीज, शुद्ध धतूरेके बीज, भाँगके बीज, विदारीकन्द, शतावर, नागबला (फरीदबूटी) के मूल, अतिबला (कंघी) के मूल, गोखरू, कवाँचके बीज और समुद्रफल-इन प्रत्येकका चूर्ण एक-एक तोला ले। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्य मिला, तीन दिन पानके रसमें मर्दन कर, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा** और **अनुपान**—दिनमें ३-४ बार एक-एक गोली अडूसे, अदरक या नागरपानके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कफ और वातके रोग-विशेषतः कफ-वातप्रधान प्रतिश्याय, ज्वर, कास, श्वास और राजयक्ष्मा ये रोग दूर होते हैं। यह लक्ष्मीविलास रस बलकारक, वाजीकर और दीपन है।

(५४) लोहासवः।

गुडूचिकां त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम्॥ १७६॥
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चूर्णितं कुडवं क्षिपेत्।
लोहचूर्णं द्विकुडवं चातुर्जातं पलद्वयम्॥ १७७॥
क्षौद्रं प्रस्थसितं दद्याद्गुडमेकतुलोन्मितम्।
मासमात्रं स्थितं भाण्डे वचाकुष्ठप्रलेपिते॥ १७८॥
लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद्वह्निकरं परम्।
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्॥ १७९॥
प्लीहामयं ज्वरं जीर्णं कासं श्वासं भगन्दरम्।
अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत्॥ १८०॥

गिलोय, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, हर्रेदल, बहेड़ादल, आँवलादल, अजवायन, वायविड़ंग, नागरमोथा और चित्रकमूल प्रत्येकका चूर्ण १६-१६ तोला, शुद्ध लोहेका अञ्जनसदृश सूक्ष्म चूर्ण ३२ तोला, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात और नागकेसर-प्रत्येकका चूर्ण ८-८ तोला, शहद ६४ तोला, गुड़ ४०० तोला तथा जल १०२४ तोला-सबको बच और कुठका लेप लगाई हुई चीनी मिट्टीकी पेचदार ढक्कनवाली बरणीमें भरकर एक मास रहने दे। एक मासके बाद कपड़ेसे छान, उसी बरणीको जलसे धो, उसमें आसव भर, उसपर ढक्कन लगाकर रख दे। **मात्रा**—दो तोला उतना ही जल मिलाकर सवेर-शाम पीनेको दे। यह **लोहासव** पाण्डुरोग, शोथ, गुल्म, उदररोग, अर्श, प्लीहाकी वृद्धि, जीर्णज्वर, खाँसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, ग्रहणीरोग तथा हृद्रोगको नष्ट करता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(५५) वसन्तकुसुमाकररसः।

स्वर्णं भागमितं द्विभागममलं रूप्यं त्रिभागं पुन-
र्नागं वङ्गमयोरजोऽभ्रमसितं मुक्ताप्रवालं रसम्।
शुद्धं भागचतुष्टयं सुमृदितं भाव्यं पुनः पौण्ड्रकैः
श्रीवासाजलरात्रिशाल्मलिभवैर्द्रावैः पृथक् सप्तधा ॥ १८१ ॥
मालत्याः कुसुमैस्तथा मृगमदैरम्लानपुष्पोद्भवै
रम्भाकुङ्कुमजैः पुनर्विलुलितः सिद्धो वसन्ताभिधः।
वल्लैकप्रसितो रसायनवरः शुक्रायुषोर्वर्धनः
स्त्रीपुंसोः क्षयकासबीजजनितं दोषं नियच्छेत् परम् ॥ १८२ ॥

सुवर्णभस्म १ भाग, रौप्यभस्म २ भाग, नागभस्म ३ भाग, वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी और रससिन्दूर प्रत्येक ४–४ भाग ले; इनको पत्थर के खरलमें डाल, गन्नेका रस, श्वेत चन्दन भिगोया हुआ जल, अड्सेका स्वरस, ताजी हल्दीका स्वरस, शेमलके मूलका स्वरस या क्वाथ, चमेलीके फूलोंका स्वरस, कमलके पुष्पोंका स्वरस तथा केलाके स्तम्भका स्वरस प्रत्येककी ७-७ भावनायें दे, अन्तमें अर्क गुलाबमें पीसी हुई केसर २ भाग तथा कस्तूरी २ भाग अच्छी तरह मिला, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—एक-एक गोली सवैर–शाम मधुमें मिला कर चाटे और ऊपरसे धारोष्ण या गरम किया हुआ गायका दूध पीवे। मधुमेहमें ताजी हल्दी और ताजे आँवलेके स्वरसके साथ ले। यह वसन्त-कुसुमाकररस उत्तम रसायन, वाजीकर, स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाला तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाला और मधुमेह, राजयक्ष्मा, स्वप्नदोष, दिलकी धड़कन, वातरोग, थोड़ेसे चलने-चढ़ने पर श्वास भरना, सिरमें चक्कर आना आदि रोगोंमें उत्तम लाभ करता है।

(५६) वसन्तमालतीरसः।

स्वर्णं मुक्ता च दरदं मरिचं भागवृद्धितः।
खर्पराष्टौ कलांशं स्यान्नवनीतं पयोभवम् ॥ १८३ ॥
निम्बूकैर्मर्दयेत्तावद्यावत् स्नेहो लयं व्रजेत्।
मालतीप्राग्वसन्तोऽयं रसो धातुज्वरं जयेत् ॥ १८४ ॥
मात्रा गुञ्जाद्वयोन्माना कणामधुसमन्वितः।
प्रकुञ्चपञ्चके पञ्चनवतिर्निम्बुकान्यलम् ॥ १८५ ॥

सिद्धभैषज्यमणिमाला ४ गुच्छ।

सुवर्णकी भस्म अथवा सोनेके वर्क १ तोला, मोतीकी पिष्टी २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला, काली मिर्चका कपड़छान चूर्ण ४ तोला, शुद्ध खपरिया अथवा जसदकी भस्म ८ तोला ले। प्रथम शुद्ध हिंगुलको पीसकर यदि सुवर्णकी भस्म ली हो तो सब द्रव्योंको

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक साथ मिलाकर ३ घंटा मर्दन करे; यदि सोनेके वर्क लिये हों तो उसमें अन्य द्रव्य मिलाकर उसमें सोनेके वर्क एक-एक करके मिलाता जावे और सोनेके सब वर्क अच्छी तरहसे मिल जायँ तबतक मर्दन करता रहे। बाद उसमें दो तोला गायके दूधसे अथवा छाछसे निकाला हुआ मक्खन मिलाकर एक दिन मर्दन करे। पीछे कागजी नीबूका कपड़ेसे अच्छी तरह छाना हुआ रस मर्दनयोग्य हो उतना (अधिक नहीं) प्रति दिन डालकर दिनभर मर्दन करे। एक बार डाला हुआ नीबूका रस सूखने पर ही दूसरा रस डालना चाहिये। इस प्रकार जबतक मक्खनकी चिकनाई नष्ट न हो तबतक नीबूके रसमें मर्दन करे। सामान्यतः मक्खनकी चिकनाहट निकालनेके लिये मध्यम कदके ९५ नीबूका रस आवश्यक होता है। पीछे १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। यह रस **वसन्तमालती** नामसे प्रसिद्ध है। **मात्रा**—१ से २ रत्ती, सवेर-शाम दिनमें दो बार दे। **अनुपान**—छोटी पीपलका चूर्ण २ रत्ती और मधुके साथ देकर ऊपरसे गौका दूध देवे अथवा सितोपलादि चूर्ण १ माशा और मधुके साथ मिलाकर देवे। **उपयोग**—इसका उपयोग अभ्रकभस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १-२ रत्ती, हरिण या साँभरके सींगकी भस्म २-४ रत्ती, गुडूचीसत्त्व १ माशा और सितोपलादि चूर्ण १ माशेके साथ मिलाकर मधु और दूधके अनुपानसे किया जाता है। यह योग जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, रोगान्तदौर्बल्य, स्त्रियोंका श्वेतप्रदर, पांडुरोग, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य, गण्डमाला, अन्त्रक्षय, फुप्फुसकलाशोथ, बालशोष (सूखा-फक्करोग)—इन रोगोंमें विशेष लाभ देता है। यह जठराग्नि और धात्वग्निकी परिपाकक्रियाको सुधार कर उनकी विकृतिसे होनेवाले सब रोगोंको दूर करता है और शरीरको बल, वर्ण तथा पुष्टि देता है।

(५७) वातकुलान्तकरसः ।

मृगनाभिः शिला नागकेशरं कलिवृक्षजम् ।
पारदो गन्धको जातीफलमेला लवङ्गकम् ॥ १८६ ॥
प्रत्येकं कार्षिकं चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
ब्राह्मीरसेन संमर्द्य वटीं कुर्याद् द्विरक्तिकाम् ॥ १८७ ॥
अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ।
वातजान् सर्वरोगांश्च हन्याद्वातकुलान्तकः ॥ १८८ ॥

कस्तूरी, शुद्ध मैनसिल, नागकेशर, बहेड़ादल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, जायफल, छोटी इलायची और लौंग प्रत्येक समभाग ले। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें कस्तूरी डालकर ब्राह्मीके रसमें ३ घंटा मर्दन करे। पीछे अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, ब्राह्मीके रसमें एक दिन मर्दन कर, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना कर छायामें सुखा ले। **मात्रा** और **अनुपान**—१ गोली दिनमें ३-४ बार ब्राह्मी, सर्पगन्धा, शंखाहुली, लौंग और जटामाँसीके क्वाथके अनुपानसे दे। **उपयोग**—अपस्मार, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, आक्षेपक आदि वातरोगोंमें इसका प्रयोग करे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(५८) वातचिन्तामणिरसः।

भागमेकं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम्।
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं भागत्रयमितं भवेत्॥ १८९॥
अश्वगन्धां लवङ्गं च तगरं कुष्ठमेव च।
काकोलीमग्निजारं च भागमेकं विनिक्षिपेत्।
चन्द्रोदयं सप्तभागं कन्यारसविमर्दितम्॥ १९०॥
द्विगुञ्जा वटिका कार्या देया योग्यानुपानतः।
वातचिन्तामणिर्हन्याद्वातरोगानशेषतः॥ १९१॥

स्वर्णभस्म १ भाग, रौप्यभस्म २ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, मोतीकी पिष्टी ३ भाग, प्रवालकी भस्म या पिष्टी ३ भाग, असगंध, लौंग, तगर, कुष्ठ और काकोलीका चूर्ण तथा अम्बर १ भाग और चन्द्रोदय ७ भाग ले। प्रथम चन्द्रोदयको खूब महीन पीस, पीछे उसमें भस्में तथा अन्य द्रव्योंका सूक्ष्म चूर्ण मिला, ग्वारपाठेके रसमें एक दिन मर्दन कर, १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—१ गोली यथावश्यक दिनमें ३-४ बार शहदमें मिलाकर चटावे। **गुण और उपयोग**—यह रस हृदय और मस्तिष्कके लिये उत्तम बलकारक, वात-कफनाशक और वाजीकरण है। सब प्रकारके वातरोगोंमें इसका प्रयोग करे। आक्षेपक और अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) में मांस्यादिक्वाथके[1] अनुपानसे दे। सन्निपात ज्वरमें जब प्रलाप, मोह, नाड़ीकी क्षीणता, हाथ-पाँव काँपना, पसीना अधिक होकर शरीर ठंडा पडना इत्यादि लक्षण हों तो इसके प्रयोगसे लाभ होता है।

(५९) शिरःशूलादिवज्ररसः।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं रवेः।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्धं त्रिफलारजः॥ १९२॥
यष्टीमधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम्।
दशमूलं च प्रत्येकं तोलकं वस्त्रशोधितम्॥ १९३॥
क्वाथेन दशमूलस्य तथा भृङ्गाम्बुनाऽपि च।
भावयित्वा प्रकर्तव्या माषैकप्रमिता वटी॥ १९४॥
छागीदुग्धेन सा सेव्या मधुना पयसाऽथवा।
शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं शिरोरोगविनाशनः॥ १९५॥

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, लोहभस्म ४ तोला, ताम्रभस्म ४ तोला, शुद्ध गूगल १६ तोला, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा और आँवला मिलाकर) ८ तोला; तथा मुलेठी, छोटी पीपल, सोंठ, गोखरू, वायविडंग, तथा सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी

---

१ मांस्यादि क्वाथका पाठ सिद्धयोगसंग्रह पृ. ११७ पर देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कटेरी, छोटे गोखरू, बेल, अरणी, सोनापाठा, गम्भारी और पाडर-इन प्रत्येकके मूल १-१ तोला ले। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें लोहभस्म-ताम्रभस्म तथा अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिलावे। पीछे साफ किये हुए गूगलको इमामदस्तेमें डाल कर कूटे। जब गूगल नरम हो जाय तब उसमें अन्य द्रव्य मिला, दशमूल और भँगरेके रसकी ३-३ भावना दे, ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बना, सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—२ गोली सवेर-शाम बकरीका अथवा गायका दूध या पथ्यादि क्वाथके अनुपानसे दे। **उपयोग**—सब प्रकारके सिरके दर्दमें इसका अकेला या १ माशा गोदन्तीभस्मके साथ मिलाकर प्रयोग करे।

(६०) शूलवज्रिणीवटी।

रसगन्धकलोहानां पलार्धं शङ्खभस्मनः।
टङ्कणं रामठं शुण्ठी त्रिकटु त्रिफला शटी॥ १९६॥
त्वगेलापत्रतालीशं जातीफललवङ्गकम्।
यवानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम्॥ १९७॥
चतुर्गुञ्जासिता वट्यो धात्रीस्वरसपेषिताः।
शीततोयानुपानेन छागीदुग्धेन वा पुनः॥ १९८॥
शूलमष्टविधं हन्ति भक्षिता शूलवज्रिणी।

भैषज्यरत्नावलीसे किञ्चित्परिवर्तित।

शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, लोहभस्म २ तोला, शंखभस्म २ तोला-शुद्ध सुहागा १ तोला, घीमें सेंकी हुई हींग १ तोला, सोंठ १ तोला, कालीमिर्च १ तोला, छोटी पीपल १ तोला, हरड़का दल १ तोला, बहेड़ादल १ तोला, आंवलादल १ तोला, कचूर १ तोला, दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, तेजपात १ तोला, तालीश, पत्र १ तोला, जायफल १ तोला, लौंग १ तोला, अजवायन १ तोला, जीरा १ तोला और धनिया एक तोला ले। प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में तथा वनस्पतियोंका कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला, तीन दिन आँवलेके स्वरसमें मर्दन कर, ४-४ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा और अनुपान**—१-२ गोली सवेरे-शाम बकरीके दूधसे अथवा १-२ गोली भोजनके पीछे ठंढे जलसे दे। **उपयोग**—सर्व प्रकारके उदरशूलमें, विशेषतः परिणामशूलमें इसका उपयोग करे।

(६१) सप्तामृतलोहम्।

त्रिफलायास्त्वचो यष्टीमधुकं च पृथक् पलम्॥ १९९॥
लोहभस्म द्विकर्षं च सर्वं संमर्दयेद्दिनम्।
माषैकप्रसितं चूर्णं घृतक्षौद्रसमन्वितम्॥ २००॥
शयनादौ लिहेत् सम्यग्गव्यं क्षीरं पिबेदनु।
सर्वान्नेत्रगदान् हन्ति दशोर्ध्वं कुरुते बलम्॥ २०१॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हर्रेदल, बहेड़ादल, आँवलादल और मुलेठी-इन प्रत्येकका कपड़छान चूर्ण ४-४ तोला, लोहभस्म २ तोला, सबको एक दिन एकत्र मर्दन करके शीशीमें भर ले। यह चूर्ण १॥ माशा, मधु ३ माशा तथा गोघृत ६ माशा एकत्र मिला कर रातको सोनेके पहले खाकर ऊपर गायका दूध पीनेसे शरीर और नेत्रके पोषणकी कमीसे होनेवाले सब प्रकारके नेत्ररोग अच्छे होते हैं और दर्शनशक्ति बढ़ती है। नेत्रकी बाह्यचिकित्साके साथ इस योगका आभ्यन्तर प्रयोग करे तो रोग शीघ्र अच्छा होता है।

(६२) सर्वतोभद्ररसः ।

निश्चन्द्रं गगनं ग्राह्यं द्विकर्षं शुद्धगन्धकम् ।
तोलकं तोलकार्धं च हिङ्गुलोत्थरसं तथा ॥ २०२ ॥
कर्पूरं केशरं मांसी तेजपत्रं लवङ्गकम् ।
जातीकोषफले चैव सूक्ष्मैला करिपिप्पली ॥ २०३ ॥
कुष्ठं तालीसपत्रं च धातकी चोचमुस्तकम् ।
हरीतकी मरीचं च शृङ्गवेरविभीतकम् ॥ २०४ ॥
पिप्पल्यामलकं चैव शाणभागं विचूर्णितम् ।
नागवल्लीरसैः पिष्ट्वा वटीं कुर्याद्द्विगुञ्जिकाम् ॥ २०५ ॥
भक्षयेत् पर्णखण्डेन मधुना सितयाऽपि वा ।
हन्त्यजीर्णं विदग्धं च तृष्णामामं विसूचिकाम् ॥ २०६ ॥
अरुचिं मूत्रकृच्छ्रं च मूर्च्छां च ग्रहणीं वमिम् ।
अम्लपित्तं शीतपित्तं रक्तपित्तं विशेषतः ॥ २०७ ॥
सर्वतोभद्रनामाऽयं रसो दीपनपाचनः ।

रसेन्द्रसारसंग्रह, ज्वराधिकार ।

अभ्रकभस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, हिंगुलसे निकाला हुआ पारद आधा तोला, कपूर, केशर, जटामाँसी, तेजपात, लौंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, छोटी पीपल, कूठ, तालीशपत्र, धायके फूल, दालचीनी, नागरमोथा, हड़का दल, काली मिर्च, सोंठ, बहेड़ादल, छोटी पीपल और आँवलेका दल प्रत्येक पाव-पाव तोला ले; प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें अभ्रकभस्म और केशर डालकर, नागरपानके रसमें केशर अच्छी तरह मिल जाय इतना घोंट, पीछे अन्य द्रव्योंका सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, नागरपानके रसमें एक दिन मर्दन कर, ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखा कर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१-२ गोली । **अनुपान**—ठंढा जल, कच्चे नारियलका पानी, मीठे दाड़िमका रस या चन्दनादि अर्क। **उपयोग**—विदग्धाजीर्ण, तृषा, आमदोष, विसूचिका, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मूर्च्छा, ग्रहणीरोग, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त और रक्तपित्त इन रोगोंमें सर्वतोभद्र रसका प्रयोग करे । पित्तप्रकृतिवालोंके पाचनके विकारोंमें इसके प्रयोगसे अच्छा लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(६३) सूतशेखररसः ।

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टङ्कणं रौप्यभस्मकम् ॥ २०८ ॥
व्योषमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ।
चातुर्जातं शङ्खभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम् ॥ २०९ ॥
भृङ्गराजरसैर्मर्द्यं त्रिसप्तदिवसावधि ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा दद्याद्योग्यानुपानतः ॥ २१० ॥
हृद्दाहभ्रममूर्च्छाघ्नो वान्तिशूलामयापहः ।
अम्लपित्तहरश्चापि रसोऽयं सूतशेखरः ॥ २११ ॥

योगरत्नाकरसे किञ्चित्परिवर्तित ।

शुद्ध पारद, सुवर्णभस्म, शुद्ध सुहागा, रौप्यभस्म, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, शुद्ध धतूरेके बीज, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, शंखभस्म, बेलगिरी और कचूर प्रत्येक समभाग ले; प्रथम पारद-गन्धककी कज्जली बना, उसमें भस्में तथा अन्य द्रव्योंका कपड़छान चूर्ण मिला, २१ दिन भंगरेके स्वरसमें मर्दन कर, २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना, छायामें सुखाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१ गोली ३-४ घंटेसे दे। **अनुपान**—१॥ माशा शहद और ३ माशा गायका घी, मीठे बेदाने दाड़िमका रस या शर्बत अथवा लाजमण्ड । **उपयोग**—अम्लपित्त, छातीकी जलन, चक्कर आना, मूर्च्छा, वमन, पेटका शूल आदि पित्तविकृतिप्रधान रोगोंमें इससे अच्छा गुण होता है।

(६४) सोमयोगः ।

कुडवं सोमचूर्णस्य रससिन्दूरकर्षकम् ।
संमर्द्य दिनमेकं तु मधुना सह योजितम् ॥ २१२ ॥
श्वासं तमकनामानं शीघ्रं हन्ति न संशयः ।

एक तोले रससिन्दूरको खूब सूक्ष्म पीस, उसमें १६ तोला सोमका कपड़छान चूर्ण मिला, एक दिन मर्दन करके शीशीमें भर ले। इस योगकी ५-८ रत्तीकी मात्रा मधुके साथ यथावश्यक दिनमें ४-५ वार लेनेसे तमकश्वास (दमा) शीघ्र शान्त होता है।

(६५) स्वर्णपर्पटी ।

शुद्धसूतं पलमितं पादांशं स्वर्णपत्रकम् ॥ २१३ ॥
मर्दयेन्निम्बुनीरेण यावदेकत्वमागतम् ।
प्रक्षाल्योष्णाम्बुना पश्चात् पलमात्रं सुगन्धकम् ॥ २१४ ॥
दत्त्वा प्रमर्दयेत्तावद्यावत् कज्जलतां व्रजेत् ।
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेद्बुधः ॥ २१५ ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

देया दुग्धानुपानेन रक्तकादिक्रमेण हि ।
बलपुष्टिकरी शुक्रवर्धनी वह्निदीपनी ॥ २१६ ॥
ग्रहणीं राजयक्ष्माणं हन्ति पाण्ड्वामयं तथा ।
स्वर्णपर्पटिका ख्याता तमकश्वासनाशिनी ॥ २१७ ॥

अच्छे पत्थरके खरलमें चार तोला शुद्ध पारद डाल, उसमें एक तोला सोनेके वर्क एक एक करके मिला, कागजी नीबूका रस डालकर एक दिन मर्दन करे। पीछे उसको गरम जलसे धो, उसमें शुद्ध गन्धक चार तोला डाल, कज्जली बना, रसपर्पटीमें लिखे हुए विधानसे पर्पटी बनाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा**—१-३ रत्ती सवेर-शाम दिनमें दो बार दे। **अनुपान**—मधुसे चटाकर ऊपरसे दूध दे। अन्य सब विधि रसपर्पटीमें लिखे अनुसार करे। क्षयमें स्वर्णपर्पटीके साथ १-४ रत्ती मुक्तापिष्टी मिलाकर देनेसे विशेष लाभ होता है। कई वैद्य पारदके स्थानमें रससिन्दूर देकर रक्तवर्णकी स्वर्णपर्पटी बनाते हैं। **गुण और उपयोग**—स्वर्णपर्पटी जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाली, बलकारक और शरीरको पुष्ट करनेवाली है। ग्रहणीरोग, सर्व प्रकारके क्षय और पांडुरोगमें इससे विशेष लाभ होता है।

(६६) हेमगर्भपोट्टलीरसः ।

शुद्धसूतं चतुर्भागं द्विभागं गन्धकस्य च ।
भागमेकं स्वर्णभस्म त्रिभागं शुल्बभस्म च ॥ २१८ ॥
कुमारीरससंयुक्तं सप्ताहं मर्दयेद्दृढम् ।
गुटिकां कारयेत्तस्य शङ्काकारां भिषग्वरः ॥ २१९ ॥
वस्त्रे किञ्चिद्बलिं दत्त्वा गुटीं तत्र निधाय च ।
मृत्पात्रे गन्धकं दत्त्वा दोलायन्त्रेण तां पचेत् ॥ २२० ॥
मन्दाग्निना पचेद्यावद् व्योमवर्णं तु गन्धकम् ।
किञ्चिच्छीते ततो वस्त्रमपसार्यं प्रयत्नतः ॥ २२१ ॥
पोट्टली हेमगर्भाख्या सन्निपाते प्रयुज्यते ।
आर्द्रकस्वरसे घृष्टा पर्णखण्डरसेऽथवा ॥ २२२ ॥

शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग और ताम्रभस्म ३ भाग ले, ग्वारपाठेके रसमें सात दिन मर्दन कर, शंकुके आकारकी गोली बना, सुखा, उसको शुद्ध गन्धकका चूर्ण छिड़के हुए रेशमी कपड़ेमें रख, सूतसे बाँध, एक मृत्पात्रमें वह गुटिका पक सके इतना शुद्ध गन्धक डाल, उसको मन्दाग्निपर दोलायन्त्रकी विधिसे गन्धकका द्रव आसमानी रंगका हो इतना पका, पोटलीको बाहर निकाल, कुछ ठंढी होने पर ऊपरका कपड़ा हटा कर ठंढी होने दे। ठंढी होने पर ऊपरका गंधक चाकूसे खुरच कर साफ कर ले। सन्निपातज्वरमें या अन्य किसी अवस्थामें शरीरमें अतिस्वेद आने लगे, शरीर ठंढा पड़ने लगे, नाड़ी क्षीण हो तब हेमगर्भपोट्टलीको अदरक या नागरपानके रसमें घिस कर चटानेसे लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिशिष्ट १ ।

भस्म बनाने और पुट देनेके विषयमें आवश्यक सूचनाएँ—

जिस लोह (सुवर्ण आदि) या धातु (माक्षिक आदि) की भस्म बनानी हो उसको प्रथम इस ग्रन्थमें लिखी हुई सामान्य और विशेष शोधनविधिसे शुद्ध कर, लोहेके इमामदस्तेमें कूट, सूक्ष्म वस्त्र या चलनीसे छानकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना लेना चाहिये । पीछे उसको न घिसनेवाले पत्थरके या लोहेके खरलमें डाल, यदि उसकी मारणविधिमें पारद, गन्धक, हिंगुल, हरताल, मैनसिल आदि अन्य द्रव्य मिलानेको लिखा हो तो शुद्ध किये हुए वे द्रव्य मिला, जिस वनस्पतिके स्वरस-क्वाथ आदिके साथ मर्दन करनेके लिये लिखा हो उसका कपड़ेसे छना हुआ स्वरस-क्वाथ आदि मिला, ८ से १२ घंटा या उससे अधिक समय तक मर्दन करना–घोटना चाहिये । घुटाई जितनी अधिक होगी उतनी ही भस्म शीघ्र और सूक्ष्म बनेगी । घोटते–घोटते द्रव्य जब टिकियाँ बनाने योग्य गाढ़ा हो जाय तब टिकियाँ बनाकर धूपमें सुखा ले । यदि टिकियाँ कुछ गीली होंगी तो भस्मका रंग ठीक नहीं आवेगा और पकने पर टिकियाँ कड़ी हो जायँगी । टिकियाँ एक–दो तोलेसे अधिक बड़ी नहीं बनानी चाहिये । टिकियाँ गोल न बनाकर थोड़ी चिपटी बनानी चाहिये । टिकियाँ खूब सूख जानेपर उनको मिट्टीके तवेपर बिछा, ऊपर उतना ही चौड़ा दूसरा तवा रख, यदि भस्म बनानेमें पारा, गन्धक, हरताल, मैनसिल, संखिया आदि अग्निपर उड़जानेवाले द्रव्य मिलाए गए हों तो दो तवोंकी सन्धिको कपरोटीकी मिट्टीसे बंद कर, संपुटके सन्धिस्थानपर ३–४ कपड़मिट्टी लगावे और कपड़मिट्टी सूखने पर पुट दे । इस प्रकार सन्धिलेप और कपड़मिट्टी लगाकर पुट देनेसे धातुद्रव्योंका पारद-गन्धक आदिके साथ अधिक समय संपर्क रहनेसे भस्म शीघ्र और अच्छी बनती है । संपुट स्वाङ्गशीतल होनेपर ही उसको पुटसे बाहर निकालना चाहिये । परन्तु यदि भस्म बनानेमें पारद–गन्धक जैसी अग्निपर उड़नेवाली वस्तु न डाली गई हो तब संपुटकी संधि खुली ही रखनी चाहिये । जिस भस्ममें पारद–गन्धक जैसी अग्निपर उड़नेवाली वस्तु डाली गई हो उसके संपुटकी संधिको भी अन्तके २–३ पुटोंमें खुली रखकर ही पुट देना चाहिये । संपुटकी संधि खुली रखनेसे आँच ठीक लगती है और भस्मद्रव्योंका बाहरके वायु (ऑक्सिजन) के साथ संयोग होता रहनेसे भस्मका रंग भी अच्छा आता है । कई वैद्य मिट्टीके घड़े जैसे बड़े पात्रमें टिकियाँ भर कर पुट देते हैं, परन्तु ऐसा करनेसे बीचतक एक सी आँच नहीं लगती । अतः मिट्टीके दो तवोंके बीचमें टिकियाँ रखकर आँच देनी चाहिये, जिससे सब टिकियोंको एक-सी आँच लगे । तवोंके बीच टिकियोंकी दो तह (स्तर) ही रखनी चाहिये और तवे भी इतने गहरे न हों कि बीचमें अधिक अवकाश रहे । बीचमें अधिक जगह खाली रहनेपर भी आँच ठीक नहीं लगती । किस लोह या धातुको कितना छोटा-बड़ा पुट देना चाहिये यह उसकी भस्मनिर्माणविधिमें प्रायः लिखा गया है । अभ्रक, लोहा, मंडूर, ताम्र और माक्षीकको

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रारम्भके पुटोंमें तेज और पीछेके पुटोंमें उत्तरोत्तर मंदी आँच देनी चाहिये । उनको पीछेके पुटोंमें कड़ी आँच देनेसे भस्म कड़ी हो जाती है, मृदु-मुलायम नहीं बनती और रंग भी अच्छा नहीं आता । सोना, चाँदी और नागको प्रारम्भके पुटोंमें मंदी आँच देनी चाहिये और पीछेके पुटोंमें वे जैसे-जैसे अग्निसह होते जायँ वैसे-वैसे आँच क्रमसे बढ़ानी चाहिये । कोई भी भस्म तैयार होनेके बाद उसमें किसी भी रसविशेष (अम्ल-कषाय आदि) का स्वाद न रहना चाहिये । अर्थात् भस्म आस्वादरहित (बेजायका) और जीभको न लगे ऐसी होनी चाहिये । जबतक भस्म ऐसी न बने तबतक पुट देते रहना चाहिये । भस्म तैयार होनेके पीछे उसको दो-तीन या अधिक दिनतक खूब घोटकर महीन-सूक्ष्म रेशमी कपड़ेसे छान लेना चाहिये । भस्म ठीक बननेका लक्षण रसग्रन्थोंमें "भस्म रेखापूर्ण, वारितर, अपुनर्भव, निश्चन्द्र[1] और अञ्जनसदृश[2] सूक्ष्म बननी चाहिये; अर्थात् खूब घोट कर छनी हुई भस्म आँखमें लगानेके अंजन-सुरमेके समान सूक्ष्म होनी चाहिये; वह आँखमें लगाई जाय तो आँखमें चुभे नहीं इतनी सूक्ष्म बननी चाहिये;" ये लिखे हैं । इसके अतिरिक्त अनुभवसे देखा गया है कि भस्म आस्वादरहित—किसी भी प्रकारके विशिष्ट स्वाद-रसरहित होनी चाहिये । भस्म बनानेमें जहाँतक बने जंगली उपलोंकी आँच दे । यदि वे न मिल सकें तो हाथके बनाए हुए कंडोंकी अग्नि दे । बड़े शहरोंमें उपलोंके जलानेसे धुएँका भय हो या उपले-कंडे न मिलें तो अच्छी लकड़ीके कोयलोंकी आँच दे सकते हैं ।

परिशिष्ट २ ।

चपलः ।

चत्वारश्चपलाः सितासितहरिच्छोणप्रभेदैः पुन-
र्मोघौ शोणितशोणकज्जलनिभौ लाक्षावदाशुद्रवात् ।
शेषौ तु द्रवतश्चिरेण सुभगौ तौ शुद्ध्यतः सप्तधा
कर्कोट्याद्रर्ककजम्भलस्य सलिले संस्वेदितौ वा प्लुतौ ॥
प्राथम्याद्रसबन्धनौ तदुपरि स्यातां तु योगानुगौ
वृष्यौ दोषहरौ बुधैर्निगदितौ माक्षीकभूस्युद्भवौ ।

(रसपद्धति पृ. ३४, आ. प्र. अ. १२)

शेषौ हरितश्वेतौ । सुभगौ गुणवत्तरौ । अनयोश्चिरेण द्रवता, सुवर्णप्रभत्वं, ताराभत्वं च भवति (रसपद्धतिटीका)

---

१ रेखापूर्ण, वारितर, अपुनर्भव और निश्चन्द्र-इन शब्दोंकी व्याख्या द्रव्यगुण-विज्ञान-उत्तरार्धके परिभाषाखण्ड नामक प्रथम खण्डमें पृ. ८५ पर देखें । २ चरकने "मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ।" (च. चि. अ. १६, श्लो० ७४) यहाँ मण्डूरका अञ्जन जैसा सूक्ष्म चूर्ण लेनेको लिखा है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ।
चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णमधुरो मतः ।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः ।
वङ्गवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ।
गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ।
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धनः । (र. र. स. अ. २)
चपलेन समः सूतो निर्गुण्डीरसमर्दितः ।
पाचितो वालुकायन्त्रे रक्तभस्म प्रजायते ॥

चपल चार प्रकारका होता है (१) श्वेत (ताराभ-चाँदी जैसे रंगका), (२) काला, (३) हरा (गौर-सोने जैसे रंगका) और (४) लाल। इनमें लाल और काले रंगका चपल अग्निपर लाखके समान शीघ्र द्रव हो जाता है। ये दोनों प्रकारके चपल गुणरहित हैं—औषधके लिये अनुपयुक्त हैं। हरे (गौर) और श्वेत वर्णके चपलका लाल और काले चपलकी अपेक्षया अग्निपर देरीसे द्रव होता है। ये दोनों गुणकारक (औषधोपयोगी) हैं। यह वङ्गके सदृश अग्निपर शीघ्र पिघलता है, इसलिये इसको **चपल** कहते हैं। जिस खानमें माक्षिक होता है वहाँ चपल भी होता है। चपल स्फटिकाकार, छः पहलुवाला, स्निग्धस्पर्श और भारी होता है। चपल तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, लेखन, पारदका बन्धन करनेवाला, योगवाही, वृष्य तथा तीनों दोषोंको हरनेवाला है। ककोड़ा, अदरक और जम्भीरी नीमूके रसमें स्वेदन करने या भावना देकर जलसे धो लेनेसे चपल शुद्ध होता है। समभाग शुद्ध चपल और पारदको निर्गुण्डी-संभालूके पत्रस्वरसमें मर्दन करके वालुकायन्त्रमें आठ प्रहर पकानेसे चपलकी रक्तवर्णकी भस्म होती है।

वक्तव्य—प्राचीन रसग्रन्थोंमें चपलके विषयमें जो वर्णन मिला वह ऊपर उद्धृत किया है। चपल आजकल वैद्योंके व्यवहारमें नहीं है। स्व. वा. **डॉ. वामन गणेश देसाईने भारतीयरसशास्त्र** (पृ. ३५७-३६१) में चपल आधुनिक रसशास्त्रज्ञोंका **विस्मथ** है ऐसा सिद्ध किया है। **रसरत्नसमुच्चय**की व्याख्यामें आयुर्वेदाचार्य श्री. **दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी**ने इस मतकी पुष्टि की है। चपलको बिस्मथ माननेमें वंगके समान उसका अग्निपर अन्य धातुओंकी अपेक्षया शीघ्र द्रव होना[1], उसका षडस्र होना[2] और गन्धकमिश्रित इसके खनिजका सुवर्णमाक्षिकके साथ एकस्थानमें उत्पन्न होना[3]

---

१ वंग २३३, चपल (बिसथ) २६८ और नाग ३२५ शतांश तापमान पर द्रव होते हैं। २ 'इसके दाने षडंगी (षडस्र-छःपहलु) होते है (भा. र. पृ. ३५)। ३ गन्धचपल (बिसथाइन् *Bishumthine*) जहाँ होता है वहाँ सुवर्णमाक्षिक हमेशा होता है (भा. र. पृ. ३५७)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ये तीन बातें प्रधान मानी जा सकती हैं, जिनका प्राचीनोंने उल्लेख किया है। बिस्मथका विशिष्टगुरुत्व ९ होता है। आधुनिक चिकित्साशास्त्रमें बिस्मथका सफलतासे उपयोग किया जाता है। वैद्योंको भी अपनी पद्धतिसे इसका शोधन-मारण करके उपयोग करना चाहिये। "चपल (बिस्मथ)के खनिज आमाशयके लिये शामक हैं। सर्व प्रकारके आमाशयके रोग जैसे—अर्बुद, व्रण, कुपचन, वमन और अतिसारमें चपल देते हैं" (भा. र. पृ. ३६१)।

रसतरङ्गिणीकार स्व. वा. **कविराज** श्री **नरेन्द्रनाथ मित्रजीने 'चपल-निर्णयः'** नामक निबन्धमें **सेलिनियम** नामकी धातुको **चपल** सिद्ध किया है।

परिशिष्ट ३।

शिलाजतु।

शिलाजतुनामानि।

नाम—(सं.) शिलाजतु, अश्मजतु, शैलनिर्यास, गिरिज; **(हिं.)** शिलाजीत; **(पं.)** सलाजित; **(म., गु.)** शिलाजित; **(फा.)** मोमिआई; **(अं.)** ब्लेक् बिटुमेन् (Black Bitumen), मिनरल् पिच् (Mineral pitch)।

शिलाजतुवर्णनम्।

मासे शुक्रे शुचौ चैव शैलाः सूर्यांशुतापिताः।
जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति यत्॥
शिलाजत्विति विख्यातं सर्वव्याधिविनाशनम्।
तेषु यत् कृष्णमलघु स्निग्धं निःशर्करं च यत्॥
गोमूत्रगन्धि यच्चापि तत् प्रधानं प्रचक्षते।

(सु. चि. अ. १३)

हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः॥
जत्वाभं मृदु मृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु।
×××××× धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य संभवः॥
हेम्नश्च रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि।
यत्तु गुग्गुलुसंकाशं तिक्तकं लवणान्वितम्।
विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम्।

(च. चि. अ. १, पा. ३)

ज्येष्ठ और आषाढ मासमें सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त पर्वतोंकी शिलाओंके भीतरसे जो लाखके जैसा स्राव बाहर आता है उसको **शिलाजतु** कहते हैं। जो शिलाजीत काले रंगका, भारी-वजनदार, स्निग्ध, मिट्टी-कंकर रहित और गोमूत्रके समान गन्धवाला

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हो वह उत्तम होता है (**सुश्रुत**) । जिन पहाड़ोंके भीतर सोना, चाँदी, ताँबा या लोहेके धातु–खनिज हों ऐसे पहाड़ ग्रीष्मकालमें सूर्यके किरणोंसे सन्तप्त होनेपर उनसे लाख जैसा, मृदु, चिंकना और स्वच्छ (मिट्टी–कंकड़ आदिसे रहित) जो स्राव बाहर आता है उसको **शिलाजतु** कहते हैं (**चरक**) । लोहेका शिलाजीत सबसे उत्तम होता है । लोह (आयस) शिलाजतु गूगल जैसा, कड़वा, कुछ नमकीन (लवणानुरस), विपाकमें कटु और शीतवीर्य होता है ।

वक्तव्य—चरक, सुश्रुत आदि संहिताग्रन्थोंमें सुवर्ण, रौप्य और ताम्रके शिलाजतुओंके भी गुण लिखे हैं, परन्तु वर्तमान समयमें लोहशिलाजतु ही मिलता है, अन्य नहीं मिलते । अतः यहाँ उनके गुण नहीं लिखे गये हैं ।

शिलाजतुगुणाः ।

तत् सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥
कटुपाक्युष्णवीर्यं च शोषणं छेदनं तथा ।
मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं गरम् ॥
शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् ।
अपोहत्यचिरात् कालाच्छिलाजतु निषेवितम् ॥
शर्करां चिरसंभूतां निहन्ति च तथाऽश्मरीम् ।
(सु. चि. अ. १३)

अनम्लं च कषायं च कटु पाके शिलाजतु ॥
नात्युष्णशीतं × × × × × × × × × × ।
जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम् ॥
मेधास्मृतिकरं चैव क्षीराशी तत् प्रयोजयेत् ।
वातपित्तकफघ्नैस्तु निर्यूहैस्तत् सुभावितम् ॥
वीर्योत्कर्षं परं याति सर्वैरेकैकशोऽपि वा ।
(च. चि. अ. १, पा. ३)

शिलाजं कटुतिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ॥
छेदि योगावहं हन्ति कफमेहाश्मशर्कराः ।
मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातास्रार्शांसि पाण्डुताम् ॥
अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन् ।
(आ. प्र: अ. १२)

शिलाजीत कटु, तिक्त, कषायानुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य, सारक, शोषण, छेदन, रसायन, योगवाही, शरीरको परम दृढ करनेवाला, मेधा (बुद्धि) और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाला तथा जरावस्था, सर्व प्रकारके साध्य व्याधि, विशेष करके प्रमेह, कुष्ठ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, गरदोष, शोष, शोथ, अर्श, गुल्म, पाण्डुरोग, जीर्ण विषमज्वर,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शर्करा (मूत्रके साथ रेती आना), अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वातरक्त, उदररोग और कृमिका नाश करता है। शिलाजीतको वात, पित्त और कफहर वनस्पतियोंके कषायोंकी भावना देनेसे शिलाजीतके गुण बढ़ जाते हैं।

शिलाजत्वनुपानानि।

पयांसि तक्राणि रसाः सयूषास्तोयं समूत्रा विविधाः कषायाः।
आलोडनार्थं गिरिजस्य शस्तास्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्यम्॥
(च. चि. अ. १. पा. ३)

भावनालोडने चास्य कर्तव्ये भेषजैर्हितैः।
तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषो दिनोदये॥
पिबेत् सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम्। (सु. चि. अ. १३)

तत् तत् रोगकी निवृत्ति तथा देहदार्ढ्य, स्वास्थ्यलाभ आदि प्रयोजनके अनुसार शिलाजीतको दूध, छाछ, मांसरस, यूष, जल, मूत्र और वनस्पतियोंके कषाय-इनके साथ मिला कर प्रयोग करे (**चरक**)। प्रथम वमन-विरेचनादिद्वारा दोषोंका निर्हरण करनेके बाद शिलाजीतको तत् तत् रोगमें हितकारक औषधों(कषायों)की भावना दे तथा उनमें मिलाकर प्रयोग करे। सामान्यतः सालसारादिगणके कषायोंकी भावना दे तथा उनमें मिलाकर प्रातःकाल शिलाजीतका सेवन करे (**सुश्रुत**)।

शिलाजीतका शोधन।

शिलाजीत सीधे चट्टानोंसे बह कर नीचे गिरता है, इसलिये उसमें मिट्टी मिली रहती है। अतः इसका शोधन (बिल्कुल मिट्टीरहित) करके खानेके काममें लेना चाहिये। **शोधनविधि**—शिलाजीतकी मिट्टी सूखी हो तो उसका चूर्ण बना, नरम हो तो छोटे छोटे टुकड़े बना, कड़ाहीमें डाल, ऊपर चतुर्गुण उबलता हुआ जल डाल, ठंढा होनेपर हाथसे मसल कर छोड़ दे। दूसरे दिन ऊपरका जल निथार, कपड़ेसे छान, उबाल आवे इतना गरम करके रख छोड़े। मिट्टीमें और दूसरा द्विगुण जल डाल, ठंढा होनेपर हाथोंसे मसलकर रहने दे। दूसरे दिन ऊपरका जल निथार कर पहलेवाले जलमें मिला दे। इस प्रकार मिट्टीमेंसे जलमें जबतक शिलाजीतका अंश आवे तबतक करता रहे। शिलाजीतमें मिट्टीका अंश आना बन्द होने पर मिट्टीको फेंक दे। दूसरे पात्रमें इकट्ठे किये हुए जलको रोज प्रातः काल धूपमें रखे और सन्ध्याको जलके ऊपर जो शिलाजीतकी मलाई आवे उसको सावधानीसे ले कर एक काचपात्रमें इकट्ठी करता रहे। जब जलके ऊपर मलाई आना बंद हो जाय तब जलको फेंक दे। इस प्रकार शोधित

---

१ भारतवर्षमें शिलाजीत अबतक अधिकतया गिलिगत और पश्चिमी नेपालकी जुमला तथा हुथला पहाड़ियोंसे आता था। परंतु गिलिगत इस समय पाकिस्तानके कब्जेमें जानेसे अब नेपालसे ही शिलाजीत आता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शिलाजीतको **सूर्यतापी** कहते हैं। अथवा संगृहीत जलको उफान आवे इतना अग्निपर गरम करके एक दिन रहने दे। दूसरे दिन ऊपरका जल निथार कर ले लेवे और नीचे बैठी हुई मिट्टीको फेंक दे। निथरे हुए जलको फिर अग्निपर गरम करके एक दिन रहने दे। दूसरे दिन ऊपरका जल निथार कर गरम करे और नीचे जमी हुई मिट्टीको फेंक दे। इस प्रकार जबतक नीचे मिट्टी बैठे तबतक प्रतिदिन करता रहे। जब नीचे मिट्टी बैठना बंद हो जाय तब शिलाजीतमिश्रित जलको मंदी आँचपर पका कर गाढ़ा कर ले। इस प्रकार शुद्ध किये हुए शिलाजीतको **अग्नितापी** कहते हैं।

शुद्धशिलाजतुपरीक्षा।

एक सफेद काचके पात्रमें जल भर, उसमें एक सलाई पर थोड़ा शिलाजीत लेकर सलाईको जलमें थोड़ा नीचे ले जावे। यदि शिलाजीत धुएँ जैसा नीचेकी ओर जा कर जलमें सब घुल जाय तो समझना चाहिये कि शिलाजीत शुद्ध-मिट्टीरहित है। यदि शिलाजीत कफके छिंछडे जैसा नीचेकी ओर जाने लगे और जलमें सब न घुलकर कुछ अलग रह जावे तो समझना चाहिये कि-इसमें मिट्टीका कुछ अंश बाकी रह गया है। कई बेचनेवाले **बांझ** वृक्षके गोंदसे कृत्रिम शिलाजीत बनाकर लाते हैं, जो ऊपर लिखी हुई परीक्षामें ठीक उतरता है। परन्तु उसमें असली शिलाजीतका स्वाद और गन्ध नहीं होता। जो मनुष्य एक बार असली शिलाजीतको चख ले वह जन्मभर उसके गन्ध और स्वादको नहीं भूल सकता। शास्त्रमें "जो शिलाजीत अग्निपर थोड़ा डालनेसे लिङ्गाकार धारण करे और निर्धूम हो वह शुद्ध होता है" ऐसा लिखा है। परन्तु शिलाजीतसे कुछ धुआँ उठता ही है। वह सर्वथा निर्धूम नहीं होता।

नव्यमत—शिलाजीत जलमें पूर्ण रूपसे घुल जाता है, चरबी और ग्लिसराइन में भी मिल जाता है। यह पूतिहर है और सब रोगोत्पादक जन्तुओंको मारता है। यह शरीरके जिस भाग पर लगाया जावे वहाँ संज्ञानाश करता है। यह छोटी धमनियों (Arterioles) को संकुचित करता है। शरीरके किसी भी अवयवके द्रवांशका यह शोषण करता है। इससे कण्डू कम होती है। जिन रोगोंमें धमनियोंका विकास होता है उनमें इससे अच्छा लाभ होता है। जैसे-पुराना आमवात। कुक्ष्युदर, फिरंगोपदंश, कूकर (काली) खाँसी, हरितपाण्डु (Chlorosis) गण्डमाला, क्षय, वातरक्त (Gout), अन्त्र और आमाशयका अभिष्यन्द, कटिशूल, सन्धिगत वातरोग और गर्भाशयके रोगोंमें शिलाजीत देते हैं। सुजाक और बस्तिशोथमें यह दिया जाता है। जले हुए भागपर यह मलहमके रूपमें लगाया जाता है। सुजाकसे होनेवाले सन्धिशोथमें इससे बहुत लाभ होता है **(डॉ. वा. ग. देसाईकृत भारतीय रसशास्त्र** पृ. ७३-७४)

शिलाजतुसे सत्त्वरूपमें लोहा प्राप्त होता है, अतः शिलाजतुको अयस्-लोहेके प्रकरणमें रखना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिशिष्ट ४।

माक्षीक और विमल।

चरक, सुश्रुत और अष्टाङ्गसंग्रहमें **विमल** का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। सुश्रुत चिकित्सास्थान अ. १३ (मधुमेहचिकित्सा)। श्लो. १७-१८ में **माक्षीक**का वर्णन इस प्रकार मिलता है—"एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम्। मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम्॥ पिबन् हन्ति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान्॥"। अष्टाङ्गसंग्रह (उ. तं. अ. ४९) में **माक्षीक धातु**का वर्णन इस प्रकार दिया है—"सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः। तापीकिरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः॥ ताप्यां सूर्यांशुसन्तप्तो माधवे (वैशाखे) मासि दृश्यते। मधुरः काञ्चनाभासः साम्लो रजतसन्निभः॥"। सुश्रुत और वृद्धवाग्भट दोनोंका दिया हुआ वर्णन समान है। **वृद्धवाग्भटने** तापी नदीके अतिरिक्त किरात, चीन और यवन देशको भी माक्षीककी उत्पत्तिका स्थान बताया है। सुश्रुतने माक्षीकके लिये **तापीज, ताप्य, नदीज, माक्षिक, माक्षीक धातु**—इन शब्दोंका प्रयोग किया है तथा वर्ण और रसके भेदसे उसके **काञ्चनाभास** (सोने जैसे रंगका) और **मधुर** तथा **रजतप्रभ** (चाँदीके समान रंगका) और **अम्ल** ये दो भेद बताये हैं। चरकमें माक्षिकके लिये **माक्षिक, सुवर्णमाक्षिक** (चि. अ. ७. श्लो. ७०, ७१), **ताप्य** (चि. अ. १६, श्लो. ७८) तथा **ताप्यधातु** (चि. अ. २६, श्लो. २५) इन शब्दोंका प्रयोग मिलता है। इसके सुवर्णमाक्षिक-मधुर और रजतमाक्षिक-अम्ल इन दो भेदोंका वर्णन नहीं मिलता। ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट होता है कि-उस समय माक्षीकका **माक्षीक** और **ताप्य** इन दो प्रधान नामोंसे व्यवहार होता था[१]; तथा सुश्रुत उसके (१) **काञ्चनाभास**-मधुर और (२) **रजतसन्निभ**-अम्ल ये दो भेद मानते थे। पीछे रसशास्त्रके विकासके समय इसके **माक्षिक** और **विमल** ये दो भेद, उसके भिन्न भिन्न लक्षण तथा उनका सत्त्वपातन करके उनसे किस प्रकारका लोह (Metal) प्राप्त होता है यह निश्चित किया गया।

आधुनिक लेखकोंमें स्व. वा. डॉ. **वामन गणेश देसाई** ने **भारतीय रसशास्त्रमें** माक्षिक और विमलके विषयमें जो वर्णन दिया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"लोहा, ताँबा आदि धातु गन्धकसे मिलकर बने हुए खनिज द्रव्योंके पाषाणोंको भूगर्भशास्त्रमें **पायराइटीझ** (Pyrites)=**अग्निपाषाण** कहते हैं। क्यों कि-ये पाषाण आग पर रखनेसे जलते हैं और पोलाद पर ठोकने पर उनसे आगकी चिनगारी पड़ती-निकलती है। इनको **लोहेके अग्निपाषाण=आयर्न पायराइटीझ्** (Iron

१ संभव है कि संहिताकालमें विमलको माक्षिकका ही एक भेद मानते हों और उसको भी **तापीज या ताप्य** कहते हों। रसपद्धतिकारके समयमें भी यह परिभाषा प्रचलित थी "तापीजं द्विरुदाहरन्ति विमलामाक्षीकभेदादिह" (रसपद्धति पृ. ३४)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Pyrites) कहते हैं । उदाहरणरूप-मुंडलोहके उपधातुको **विमल (आयर्न पायराइटीझ्=गन्धायस्)**, विमलकी एक रेखायुक्त जाति है उसको **माक्षिक (मार्केसाइट्** Marcasite) कहते हैं । ताम्र और विमल जिसमें एकत्र मिला हुआ होता है उसको **सुवर्णमाक्षीक (चेल्को पायराइटीझ्** Chalco Pyrites)= **ताम्रगन्धायस्** कहते हैं । लोहचुम्बकके धर्मयुक्त इसकी एक जातिको **मॅग्नेटिक् आयर्न् पायराइटीझ्** (Magnetic Iron Pyrites)=**चुम्बकगन्धायस्** कहते हैं (भारतीयरसशास्त्र पृ.२९२) ।

विमल—यह लोहेके एक और गन्धकके दो अणुओंके मिश्रणसे बना हुआ खनिज (आयर्न वाइसल्फाइड (Iron Bisulphide)=**द्विगन्धायस्** है । इसके गट्ठे हमेशा कोन, धारा और फलक (पहलु) युक्त होते हैं । ये गठ्ठे प्रायः षट्फलक और कभी-कभी द्वादशफलक होते हैं । **जाति**-विमलकी दो जातियाँ मिलती हैं—(१) [१]पीली और (२) फीके-मैले सफेद[२] रंगकी (परन्तु यह विरल मिलती है) । **रंग**-विमल पीतल जैसे रंगका होता है, इसका रंग सोने जैसा पीला नहीं होता । विमलका काठिन्य ६ से ६॥ और विशिष्ट गुरुत्व ५·२ होता है । विमलको कसौटीपर घिसनेसे कालापन लिये हुए सफेद रंगकी रेखा उठती है । विमलको तवे पर खुली हवामें जलानेसे गन्धककी गन्ध आती है । गन्धक सल्फर डाइ ऑक्साइड् होकर उड़ जाता है और लाल रंगका चूर्ण (फेरिक् ऑक्साइड्–मण्डूर) बाकी रह जाता है । विमल स्थिर धातु है । इसके पीले रंगके बड़े टुकड़ों पर हवाका कुछ भी असर नहीं पड़ता, इसलिये इसको **मधुर**=न्युट्रल (Neutral) कहा गया है । इसकी श्वेत जाति मात्र अस्थिर होती है । अर्थात् हवामें इसका पृथक्करण हो कर कसीस और गन्धकाम्ल वनता है, इसलिये इसको **अम्ल** कहा गया है (भा. र. पृ. २९६) ।

माक्षिक-नाम—(अं.) आयर्न् पायराइटीझ (Iron–Pyrites), मार्केसाइट् (Marcasite), रेडिएटेड् पायराइटीझ (Radiated Pyrites), रोम्बिक् सल्फाइड् ऑफ् आयर्न्(Rhombic sulphide of iron); (फा.) मारकसीसा । माक्षिक विमल जैसा लोहेके एक और गन्धकके दो अणुओंके मिश्रणसे बना हुआ लोहेका खनिज है । अर्थात् विमल और माक्षिककी घटना एक ही है; केवल आकृति और स्वरूप भिन्न हैं । माक्षिक विमलका ही रूपान्तर है । इसके हमेशा कोण-फलकरहित रेखामय गट्ठे मिलते हैं विमल जैसे कोण-फलकयुक्त नहीं होते । माक्षिककी दो जातियाँ मिलती हैं—(१) मैली पीली[३] (ब्रोन्झ यलो Bronze–yellow) और (२) सफेद[४] । **सुवर्णमाक्षिक** नामक धातु माक्षिक किंवा विमलसे

---

१ यह रसशास्त्रोक्त **हेमविमल** या **कांस्यविमल** हो सकता है । २ यह रसशास्त्रोक्त **रौप्यविमल** हो सकता है । ३ यह रसशास्त्रोक्त **कांस्यमाक्षिक** हो सकता है । ४ यह रसशास्त्रोक्त **रौप्यमाक्षिक** हो सकता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भिन्न ताम्रका खनिज है। माक्षिक विमलकी अपेक्षया कम मिलता है। इसका काठिन्य ६ और विशिष्ट गुरुत्व ४.८ होता है। माक्षिकका गट्ठा तोड़नेपर भीतरसे धागे जैसा रेखामय (रेडिएटेड्-Radiated) दिखता है। क्वचित् दानेदार (रोम्बिक् प्रिझम्स् Rhombic Prisms) भी होता है । माक्षिककी सफेद रेखायुक्त जाति अस्थिर होती है। वायुसे मिश्रित होकर उसका पृथक्करण होता है और उससे कसीस तथा गन्धकाम्ल बनता है। इसलिये इस जातिको **अम्ल** कहा गया है वह ठीक है (भा. र. पृ. २९६–२९६-)।

सुवर्णमाक्षिक—(चेल्को पायराइट् Chalco Pyrite), **कॉपर पायराइट्** (Copper Pyrite)। इसकी घटनामें ताम्रके दो अणुओंके साथ गन्धकके एक तथा अयस्के दो अणुओंके साथ गन्धकके तीन अणुओंका मिश्रण होता है। अर्थात् सुवर्णमाक्षिकमें गन्धकके साथ ताम्र और अयस् दोनों एकत्र मिले हुए होते हैं। इसका तुर्तका तोड़ा हुआ अच्छी जातिका खनिज भीतरसे सोने जैसा पीला दिखता है। यह चाकूसे काटा जा सकता है और इसका घन-हथौड़ेसे सहजमें चूर्ण किया जा सकता है (**भारतीय रसशास्त्र** पृ. ४२०)"।

डॉ. देसाईके ऊपर दिये हुए उद्धरणोंसे संहिताग्रन्थों और रसग्रन्थोंमें वर्णित माक्षिक और विमलके भेदोंका स्पष्टीकरण हो जाता है । सुवर्णमाक्षिक (कॉपर पायराइट्ट) की भस्म बनानेसे उसमें गन्धक (और कुछ संखियेका अंश हो तो वह) जलकर उड़ जाता है और ताम्र तथा लोहेकी मिश्रित भस्म (ऑक्साइड्) बनती है। सब प्रकारके विमल तथा कांस्यमाक्षिक और तारमाक्षिककी भस्म बनानेसे गन्धक (और संखियेका कुछ अंश हो तो वह) उड़ जाता है और गन्धकके योगसे बनी हुई लोहेकी भस्म मिलती है।

परिशिष्ट ५ ।

रसाञ्जन ।

रसाञ्जनके विषयमें प्राचीन (चरक-सुश्रुतके व्याख्याकारोंके) समयसे ही मतभेद चला आता है । आजकल बंगालको छोड़ कर भारतवर्षके अन्य प्रदेशोंके वैद्य **रसाञ्जनके** नामसे **रसौंत** (दारुहल्दीकी घनरसक्रिया[1]) का व्यवहार करते हैं। सुश्रुत सू. अ. ३८ **अञ्जनादिगण[2]**में आए हुए **रसाञ्जन** शब्दकी व्याख्यामें **डल्हणाचार्य** लिखते हैं कि—रसाञ्जनं दारुहरिद्राक्काथेन कृत्रिमम्; अन्ये त्वेवं वदन्ति–"रसा-

---

१ **रसाञ्जन** बनानेकी विधि शास्त्रमें इस प्रकार लिखी है—"दार्वीकाथमजाक्षीरपादपक्वं यदा घनम्। रसाञ्जनमिति प्राहुर्नेत्रयोः परमं हितम् ॥"। दारुहल्दीके अष्टमांशजलावशिष्ट काथमें चतुर्थांश बकरीका दूध मिला, मंदाग्नि पर पका कर घन रसक्रिया बना ली जावे, उसको **रसाञ्जन** कहते हैं।

२ "अञ्जनरसाञ्जननागपुष्पप्रियङ्गुनीलोत्पलनलदनलिनकेशराणि मधुकं चेति । अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः। विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥"।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ञ्जनं द्विविधं-स्रोतोञ्जनं कृष्णपाषाणाकृति धातुद्रव्यम्, अन्यद्दारुहरिद्राक्काथेन कृत्रिमम्"। अर्थात् डल्हणके समयमें **रसाञ्जन** शब्दसे कई वैद्य **रसौंत**को और कई वैद्य रसौंत और कृष्ण पाषाणसदृश धातुद्रव्य **स्रोतोञ्जन**-दोनोंको **रसाञ्जन** नाम देते थे; और रसाञ्जनको **स्रोतोञ्जन**का एक पर्याय मानते थे। आज भी वंगालके वैद्य काले सुर्मेको रसाञ्जन मानते हैं। स्व. वा. डॉ. **वामन गणेश देसाईने** पारदकी **पीतभस्म** (यलो ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी—Yellow Oxide of Mercury) को रसशास्त्रोक्त रसाञ्जन माना है (देखें भारतीय रसशास्त्र पृ. २३०)। रसरत्नसमुच्चयकी व्याख्या (पृ. ५९, ६०) में आयुर्वेदाचार्य श्री. **दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी**जी लिखते हैं कि-"रसौंत दारुहल्दीके क्काथसे बनी हुई वस्तु है। काष्ठौषधिसे बनी हुई वस्तु जिसमें पारद या अन्य किसी भी खनिजका कोई भी सम्वन्ध न हो रसशास्त्रके प्राचीन ग्रन्थमें नहीं लिखी जा सकती है। अर्थात् रसौंत नेत्ररोगोंमें हितकर होते हुए भी रसाञ्जन नहीं होसकता है। रसाञ्जन कोई ऐसी वस्तु होगी जिसमें पारेका कुछ प्रत्यक्ष संबन्ध अवश्य होगा। उसके पर्याय नामोंसे भी यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। रसगर्भं (जिसके गर्भमें रस है), रसाग्रजं (जो रसके अग्रभाग पर उत्पन्न होता है), रसोद्भवं (जिसकी पारदसे उत्पत्ति है), अग्निसारं (अग्निकी सहायतासे जो सार द्रव्य प्राप्त होता है)—इन शब्दोंसे अनुमान होता है कि यह अग्निकी सहायतासे बना हुआ पारदका कोई विशेष यौगिक है। संभवतः यह आजकलका **यलो ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी** होगा जो पारदको मूषामें रखकर खुली हवामें धीरे धीरे तपानेसे वायुमें के ऑक्सिजनके साथ पारदका संयोग होकर पारदके ऊपरी पृष्ठ पर पीले रंगके चूर्णके रूपमें पाया जाता है।×××। पिछली कई शताब्दियोंसे केवल ग्रन्थप्रामाण्यके आश्रित चलते रहनेके कारण और उपलब्ध ग्रन्थोंमें इसके बनानेकी विधियोंका उल्लेख न होनेके कारण तथा परंपरा भी छुट जानेके कारण अज्ञानवश पारदके पीत ऑक्साइड्के बदलेमें दारुहल्दीसे बनाया हुआ रसौंत प्रयुक्त होने लगा और सौभाग्यवश नेत्ररोगोंको दूर करनेका गुण उसमें भी होनेके कारण यह भ्रम पक्का ही हो गया। अब हम लोगोंको अवश्य ही पारदके पीत ऑक्साइडको बना कर उसका उपयोग नेत्ररोगचिकित्सामें करना चाहिये। वास्तवमें एलोपेथीमें इसका उपयोग मरहमके रूपमें जीवाणुओंका नाश करने और आँखकी पलककी कण्डू आदि हटानेके लिये प्रतिदिन किया जाता है। यदि स्वयं बनानेमें कष्ट मालूम पड़े तो केमिस्टके यहाँसे खरीद कर भी इसको काममें ला सकते हैं"। **श्री. कुलकर्णीजी** के कथनानुसार यलो ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी रसशास्त्रोक्त रसाञ्जन हो सकता है, परन्तु **'रसौंत रसाञ्जन नहीं हो सकता'** यह उनका मत ठीक नहीं है। क्योंकि यलो ऑक्साइड् आफ् मर्क्युरीका उपयोग बाह्य प्रयोगके लिये, विशेषतः उसका मरहम बनाकर (अकेलेका नहीं) नेत्रमें लगानेके लिये होता है, उसको

---

१ सुश्रुत सू. अ. ३८,४५ में लिखित प्रियङ्ग्वादि गणमें **रसाञ्जन** और **स्रोतोञ्जन** दोनोंका उल्लेख मिलता है, अतः रसाञ्जन और स्रोतोञ्जन दोनोंको एक मानना असंगत है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पेटमें खानेके लिये नहीं दिया जाता। परन्तु रसाञ्जनके खानेके कई योग चरक-सुश्रुतमें दिये गये हैं। यथा—"दार्व्या **रसाञ्जनस्य** च निम्बपटोलस्य खदिरसारस्य। आरग्वध-वृक्षकयोस्त्रिफलायाः सप्तपर्णस्य॥ इति षट् कषाययोगाः कुष्ठघ्नाः सप्तमश्च तिनिशस्य। स्नाने **पाने** च हिताः" (च. चि. अ. ७, ९७-९८); "पाठा वत्सकबीजं **रसाञ्जनं** नागरं यवान्यश्च। बिल्वमिति चार्शसैश्चूर्णितानि **पेयानि** शूलेषु॥" (च. चि. अ. १४, १९५); "किराततिक्तको मुस्तं वत्सकः **सरसाञ्जनः**। ×××। योगाः षडेते सक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः। **पेयाः** पित्तातिसारघ्नाः श्लोकार्धेन निदर्शिताः॥" (च. चि. अ. १९, ५६-५९); "पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलोद्भेदं **रसाञ्जनम्**। ×××। चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्।" (च. चि. अ. ३०, ९०-९६); "**तद्वत्तार्क्ष्यं** मासमात्रं च **पेयं**" (सु. चि. अ. ९, ४६) इत्यादि। इन योगोंमें कुष्ठ, अर्श, पित्तातिसार और प्रदरमें रसाञ्जनको खानेके लिये देनेको लिखा है; जो रसौंतके गुणोंको देखते हुए रसौंतके लिये ही संभव और उचित है। रसौंतके लिये **रसाञ्जन** शब्दका प्रयोग "रसक्रियारूपमञ्जनं **रसाञ्जनं**"[1] इस व्युत्पत्तिसे हो सकता है। **चरकने** नेत्रप्रसादनके लिये नेत्रमें नित्य सौवीराञ्जन लगानेको तथा नेत्रस्रावणके लिये पाँचसे आठ दिनके बीच एक बार रसाञ्जन लगानेको लिखा[2] है। रसौंत नेत्रमें लगानेसे नेत्रस्राव होता है यह अनुभव है। चरकने केवल रसाञ्जनको नेत्रमें लगानेको लिखा है, उसमें कोई स्नेह मिलानेको नहीं लिखा है। यलो ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी का विना वेसेलीन मिलाये अकेला प्रयोग नहीं किया जाता। ऊपरके लेखसे मालूम होगा कि चरक-सुश्रुतमें वर्णित रसाञ्जन **रसौंत** ही हो सकता है, यलो ऑक्साइड् ऑफ् मर्क्युरी नहीं हो सकता। रसग्रन्थोंमें वर्णित रसाञ्जनके 'श्वासहिध्मापहं' आदि गुणोंको देखते हुए रसाञ्जनको पारदकी पीतभस्म मानना संदेहास्पद ही हैं। रसाञ्जनके पर्याय नामोंमेंसे केवल **तार्क्ष्यज** शब्द का उल्लेख **सुश्रुत** उ. तं. अ. १२, १८ में तथा **चरक** चि. अ. ९, ४६ में मिलता है। रसोद्भव, रसाग्रज, रसगर्भ आदि पर्यायोंका प्रयोग संहिताग्रन्थोंमें देखनेमें नहीं आता।

---

१ "रसाञ्जनस्य मात्रा तु यथावन्निर्मिता मता।" (सु. उ. अ. १८-६०)। "रसाञ्जनस्य रसक्रियाञ्जनस्य" (ड.)।

२ "सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्। पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थे रसाञ्जनम्॥" (च. सू. अ. ५, १५)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिशिष्ट ६ ।

अशुद्धानामसम्यङ्मारितानां च लोह-धातूनां दोषाः ।

अशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च सुवर्णस्य दोषाः—

बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं कोपयतीह काये ।
असौख्यकार्येव सदैव हेमापक्वं सदोषं मरणं करोति ॥

(र. र. स. अ. ५)

शोधन न किया हुआ (अशुद्ध) और ठीक भस्म न बनाया हुआ (असम्यङ्मारित) सुवर्ण बल और वीर्य हरता है, रोगसमूहको बढ़ाता है और शरीरमें असुख-विकार उत्पन्न करके मरणतक लाता है (अतः सुवर्णका शोधन और मारण करके प्रयोग करना चाहिये)।

अशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च रजतस्य दोषाः—

तारं शरीरस्य करोति तापं विड्बन्धतां यच्छति शुक्रनाशम् ।
आयुर्बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महागदान् पोषयति ह्यशुद्धम् ॥

(आ. प्र. अ. ११)

शोधन और मारण न किया हुआ रौप्य शरीरमें संताप, मलावरोध आदि महाव्याधि उत्पन्न करता है तथा शुक्र, आयु, बल और शरीरकी पुष्टिका नाश करता है।

अशुद्धस्यामृतस्य च वङ्गस्य दोषाः—

अशुद्धममृतं वङ्गं प्रमेहादिगदप्रदम् ।
गुल्महृद्रोगशूलार्शःकासश्वासवमिप्रदम् ॥

(आ. प्र. अ. ११)

शोधन और मारण न किया हुआ वंग प्रमेह, गुल्म, हृद्रोग, शूल, अर्श, कास, श्वास, वमन आदि रोगोंको उत्पन्न करता है।

अशुद्धस्यामृतस्य च नागस्य दोषाः—

अशुद्धो न मृतो नागः प्रमेहक्षयकामलाः ।
गुल्मं पाण्डुं तथा वह्निमान्द्यशूलभगन्दरान् ॥

अशुद्ध और मारण न किया हुआ नाग प्रमेह, क्षय, कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, शूल और भगन्दर—इन रोगोंको उत्पन्न करता है।

अशुद्धस्यामृतस्य च यशदस्य दोषाः—

यशदं गिरिजं तस्य दोषाः शोधनमारणे ।
वङ्गस्येव हि बोद्धव्याः × × × ।

(आ. प्र. अ. ११)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अशुद्ध और अमारित यशद (जस्ते) से वंगके समान ही दोष उत्पन्न होते हैं ।

अशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च अयसो दोषाः—

अशोधितायः सपुनर्भवं यद्गुणं प्रदर्श्याल्पमथ प्रकुर्यात् ।
आमाग्निमान्द्यारुचिगुल्मशोथविड्भेदमालस्यमुरोविबन्धम् ॥

(र. चू. अ. १४)

अशोधित और ठीक भस्म न बना हुआ लोहा प्रारम्भमें थोड़ा गुण दिखला कर आम, अग्निमान्द्य, अरुचि, गुल्म, शोथ, दस्त पतला होना और छाती जकड़ी सी मालूम होना-ये विकार उत्पन्न करता है ।

अशुद्धगन्धकदोषाः—

अशुद्धगन्धः कुरुते च कुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं तथैव ।
रूपं सुखं वीर्यबले निहन्ति तस्माद्विशुद्धो विनियोजनीयः ॥

(आ. प्र. अ. २)

शोधन न किया हुआ गन्धक शरीरका रूप (वर्ण-सौन्दर्य), सुख (आरोग्य), वीर्य और बलका नाश करता है तथा कुष्ठ, सन्ताप, भ्रम और पित्तके रोग उत्पन्न करता है ।

अशुद्धहिङ्गुलदोषाः—

अशुद्धो हिङ्गुलः कुर्यादान्ध्यं क्षैण्यं क्लमं भ्रमम् ।
मोहं मेहं च संशोध्यस्तस्माद्वैद्यैस्तु हिङ्गुलः ॥

(आ. प्र. अ. ३)

अशुद्ध हिङ्गुल अन्धापन, क्षीणता, क्लम (विना परिश्रम थकावट), भ्रम, मूर्च्छा, और प्रमेह-इन रोगोंको उत्पन्न करता है ।

अशुद्धाभ्रकदोषाः—

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम् ।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं च तज्जाठरवह्निहृत् स्यात् ॥

(आ. अ. अ. ४)

अशुद्ध अभ्रक कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, शोथ, अग्निमान्द्य तथा हृदय और पार्श्वकी पीड़ा-इन रोगोंको उत्पन्न करता है ।

अशुद्धतालकदोषाः—

अशुद्धं तालमायुर्घ्नं पित्तमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटाङ्गसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥

(आ. प्र. अ. ५)

अशुद्ध हरताल आयुको नष्ट करती है, पित्त तथा वायुका प्रकोप करती है तथा प्रमेह, संताप, फोड़े और अंगोंका संकोच-इन रोगोंको उत्पन्न करती है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अशुद्धखर्परदोषाः—

अशुद्धः खर्परः कुर्याद्वान्तिं भ्रान्तिं विशेषतः ।

अशुद्ध खपरिया विशेष करके वमन और भ्रम उत्पन्न करता है ।

अशुद्धमनःशिलादोषाः—

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च ह्यशुद्धा कुरुते शिला ।
मन्दाग्निं मलबन्धं च शुद्धा सर्वरुजापहा ॥

(र. र. स. अ. ३)

अशुद्ध मैनसिल अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अग्निमान्द्य और बद्धकोष्ठ (मलावरोध)-इन रोगोंको उत्पन्न करती है ।

अशुद्धटङ्कणदोषाः—

अशुद्धष्टङ्कणो वान्तिभ्रान्तिकारी प्रयोजितः ।

(आ. प्र. अ. ८)

अशुद्ध टङ्कण वमन और भ्रम उत्पन्न करता है ।

अशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च माक्षिकस्य दोषाः—

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान् सकुष्ठान् ।
मालां विधत्ते खलु गण्डपूर्वां शुद्ध्यादिहीनं खलु माक्षिकं तु ॥

(आ. प्र. अ. १२)

अशुद्ध और ठीक भस्म न हुआ माक्षिक मन्दाग्नि, बलहानि (दुर्बलता), विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ठ और गण्डमाला-इन रोगोंको उत्पन्न करता है ।

अशुद्धतुत्थदोषाः—

वान्तिं भ्रान्तिमशुद्धं तत् कुरुते × × × ।

(आ. प्र. अ. १२)

अशुद्ध नीलाथोथा वमन और भ्रम उत्पन्न करता है ।

अशुद्धशिलाजतुदोषाः—

अशुद्धं दाहमूर्च्छायभ्रमपित्तास्रशोषकृत् ।
शिलाजतु प्रकुरुते मान्द्यमग्नेश्च विड्ग्रहम् ॥ (आ. प्र. अ. १२)

अशुद्ध शिलाजतु दाह, मूर्च्छा, भ्रम, पित्तविकार, रक्तविकार, शोष, अग्निमान्द्य और मलावरोध करता है ।

अशुद्धवज्रदोषाः—

पार्श्वपीडां पाण्डुरोगं हृल्लासं दाहसन्ततिम् ।
रोगानीकं गुरुत्वं च धत्ते वज्रमशोधितम् ॥

अशोधित हीरा पार्श्वपीड़ा, पाण्डुरोग, जी मिचलाना, दाह और अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिशिष्ट ७।

धातूनां सत्त्वपातनविधयः ।

अभ्रकसत्त्वपातनम् ।

चूर्णीकृतं गगनपत्रमथारनाले धृत्वा दिनैकमवशोष्य च सूरणस्य ।
भाव्यं रसैस्तदनु मूलरसैः कदल्याः पादांशटङ्कणयुतं शफरैः समेतम् ॥
पिण्डीकृतं तु बहुधा महिषीमलेन संशोष्य कोष्ठगतमाशु धमेद्धठाग्नौ ।
सत्त्वं पतत्यतिरसायनजारणार्थं योग्यं भवेत्सकललोहगुणाधिकं च ॥
सत्त्वमभ्रस्य शिशिरं त्रिदोषघ्नं रसायनम् ।
विशेषात् पुंस्त्वजननं वयसः स्तम्भनं परम् ॥
(आयुर्वेदप्रकाश अ. ४)

परिहृत्य काचकिट्टं ग्राह्यं सारं प्रयत्नेन ।
(रसहृदयतन्त्र अ. ४)

शुद्ध अभ्रकका चूर्ण बना, उसमें चतुर्थांश सुहागा मिला, एक दिन खट्टी काँजीमें भिगो, सुखा, जंगली सूरण और केलेके मूलके स्वरसकी एक-एक भावना दे, समभाग क्षुद्र मत्स्य और चतुर्गुण भैंसका गोवर मिला, खूब मर्दन कर, चार-चार तोलेके गोले वना, सुखा, लोहा गलानेकी दृढ़ मूषामें डाल, लोहा गलानेकी भट्टीमें रख कर दो धोंकनियों (भाथी-भस्त्रा) की सहायतासे तीव्र आँच दे । कोयले पत्थरके देने चाहियें । जब सब द्रव हो जाय तब रसको तेल लगाये हुए लोहपात्रमें डाले । ठंडा होनेपर कूट, लोहचुंबककी सहायतासे सत्त्वके कण अलग करे और काच तथा किट्टको फेंक दे । अभ्रकका सत्त्व शीतवीर्य, तीनों दोषोंको हरनेवाला, रसायन, वयःस्तम्भन और विशेष कर पुरुषत्व देनेवाला (वाजीकर) है । लोह(अयस्)भस्म निर्माण विधिके अनुसार अभ्रकसत्त्वकी भस्म बनाई जाती है ।

राजावर्तसत्त्वपातनम् ।

राजावर्तस्य चूर्णं तु कुनटीघृतसिश्रितम् ।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥
सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धं तु कारयेत् ।
ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति तद्गतम् ॥
(र. र. स. अ. ४)

शुद्ध लाजावर्दके चूर्णमें समभाग शुद्ध मैनसिल, गोघृत और भैंसका दूध मिलाकर लोहेके पात्रमें पकावे । पककर खोये जैसा होनेपर उसमें समभाग सुहागा और पंचगव्य (गायका मल, मूत्र, दूध, दही और घृत) मिला, खूब मर्दन कर, सुखा, गोले बना, मूषामें डालकर खैरके कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे राजावर्तका सत्त्व निकल आता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

माक्षिकसत्त्वपातनम् ।

एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जा क्षौद्रं च टङ्कणम् ।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत् ॥

(आ. प्र. अ. १२)

शुद्ध सुवर्णमाक्षिक, लाल गुञ्जा, शहद और सुहागा-इनके समभाग चूर्णको एरण्ड-तैलमें मर्दन कर, मूषामें डालकर कड़ी आँच देनेसे सुवर्णमाक्षिकका सत्त्व निकल आता है । सुवर्णमाक्षिकसत्त्व विशुद्ध ताम्र होता है ।

विमलसत्त्वपातनम् ।

विमलं शिग्रुतोयेन काङ्क्षीकासीसटङ्कणम् ।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसैः ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मूकमूषगम् ।
सत्त्वं चन्द्रार्कसंकाशं पतते नात्र संशयः ॥

(र. र. स. अ. २)

शुद्ध विमल, फिटकिरी, कासीस, सुहागा, जंगली सूरण और मोखाके पञ्चांगकी राख समभाग ले, उनको सहिंजनाके पत्र या छालके रसकी भावना दे, सुखा, उसके गोले बना, मूषामें डाल कर कड़ी आँच देनेसे विमलसे **चन्द्रार्क** नामक मिश्रलोह जैसा सत्त्व निकलता है ।

वक्तव्य—सोलह भाग चाँदी और बारह भाग ताँबेको एकत्र गलानेसे जो मिश्र लोह बनता है, उसको **चन्द्रार्क**[१] कहते हैं ।

शिलाजतुसत्त्वपातनम् ।

पिष्ट्वा द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसंभवम् ।
शुष्कं मूषोदरे क्षिप्तं गाढं ध्मातं च कोकिलैः ॥
सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुस्तत्क्षणाल्लोहसन्निभम् ।

(र. चू. अ. १०)

शुद्ध शिलाजीत और द्रावणवर्गके द्रव्य प्रत्येक समभाग ले, उनको नीमूके रसकी भावना दे, गोले बना, सुखा, मूषामें डालकर कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे शिलाजीतसे लोहसदृश सत्त्व निकलता है ।

तालकसत्त्वपातनम् ।

हरितालसे सत्त्व निकालनेकी विधि मूल ग्रन्थमें पृ. ५८ पर दी गई है ।

---

१ "भागाः षोडश तारस्य तथा द्वादश भास्वतः । एकत्रावर्तितास्तेन चन्द्रार्कमिति कथ्यते ॥" (र. चू. अ. ४) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मनःशिलासत्त्वपातनम् ।

तालवच्च शिलासत्त्वं ग्राह्यं तैरेव चौषधैः ।

(आ. प्र. अ. ६)

हरतालके सत्त्वपातनकी विधिसे मैनसिलका भी सत्त्वपातन करना चाहिये ।

सस्यकसत्त्वपातनम् ।

निम्बुद्रवाल्पटङ्काभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च ।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्त्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥

नीले थोथेमें थोड़ा सुहागा मिला, नीमूके रसमें मर्दन कर, टिकियाँ बना, सुखा, मूषामें डालकर कोयलेकी आँच देनेसे नीले थोथेसे ताम्ररूप सत्त्व प्राप्त होता है ।

चपलसत्त्वपातनम् ।

विषोपविषधान्याम्लैर्मर्दितश्चपलस्ततः ।
अन्धमूषागतो ध्मातः सत्त्वं मुञ्चति कार्यकृत् ॥

(आ. प्र. अ. १२)

चपलको यथाप्राप्त विष और उपविषोंके साथ खट्टी काँजीमें मर्दन कर, गोले बना, सुखा, मूषामें डालकर कोयलोंकी अग्नि देनेसे चपलसे सत्त्व निकल आता है ।

गौरीपाषाणसत्त्वपातनम् ।

तालवद्ग्राहयेत् सत्त्वं शुद्धं शुभ्रं प्रयोजयेत् ।

(र. र. स. अ. ३)

गौरीपाषाणसे हरतालके सत्त्वपातनकी विधिसे श्वेत वर्णका शुद्ध सत्त्व प्राप्त होता है ।

हिङ्गुलसत्त्वपातनम् ।

दरदः पातनायन्त्रे पातितश्च जलाशये ।
तत् सत्त्वं सूतसंकाशं जायते नात्र संशयः ॥

(र. र. स. अ. ३)

हिंगुलको ऊर्ध्वपातन या तिर्यक्पातन यन्त्रमें पातित करनेसे हिङ्गुलसे पारदसदृश (पारदरूप) सत्त्व प्राप्त होता है ।

तुवरीसत्त्वपातनम् ।

क्षाराम्लैर्मर्दिता ध्माता सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ।

फिटकिरीको क्षार और अम्ल द्रव्योंके साथ मर्दन कर, गोले बना, सुखा, मूषामें डालकर कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे फिटकिरीसे सत्त्व निकल आता है (फिटकिरीसे सत्त्वरूपमें **एल्युमिनियम्** धातु प्राप्त होती है) ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कासीससत्त्वपातनम् ।

तुवरीसत्त्ववत् सत्त्वमेतस्यापि समाहरेत् ।

(र. र. स. अ. ३)

जिस विधिसे फिटकिरीका सत्त्व निकाला जाता है उसी विधिसे कासीसका भी सत्त्वपातन करना चाहिये । कासीससे सत्त्वरूपमें लोहा प्राप्त होता है ।

खर्परसत्त्वपातनम् ।

लाक्षागुडासुरीपथ्याहरिद्रासर्जटङ्कणैः ।
सम्यक् संचूर्ण्य तत् पक्वं गोदुग्धेन घृतेन च ॥
वृन्ताकमूषिकामध्ये निरुद्ध्य गुटिकीकृतम् ।
ध्मात्वा ध्मात्वा समाकृष्य ढालयित्वा शिलातले ॥
सत्त्वं वङ्गाकृति ग्राह्यं खर्परस्य मनोहरम् ।

लाख, गुड़, राई, हड़, हल्दी, राल और सुहागा–इनके समभाग चूर्णके साथ खपरियेको मर्दन कर, उसको गायके दूध और घृतके साथ पका, गाढ़ा होनेपर गोले बना, मूषामें डाल कर कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे खर्परसे वंगसदृश सत्त्व (जस्ता) निकल आता है ।

अञ्जनसत्त्वपातनम् ।

सौवीरं तीक्ष्णचूर्णं च मूषायामन्धयेत् समम् ।
हठाद् ध्माते पतेत् सत्त्वं वरनागं तदुच्यते ॥

(रसपद्धतिटीका पृ. ४३)

सौवीराञ्जन और तीक्ष्णलोहको एकत्र मर्दन कर, मूषामें डालकर कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे सत्त्व निकल आता है । उसको **वरनाग** कहते हैं ।

भूनागसत्त्वपातनम् ।

ताम्रभूभवभूनागान्निशापिष्टान् समेन तान् ।
गुडगुग्गुलुलाक्षोर्णामत्स्यपिण्याकटङ्कणैः ॥
दृढमेतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत् सुखम् ।
मुञ्चन्ति ताम्रवत् सत्त्वं ते, पक्षा अपि बर्हिणाम् ॥

जिस भूमिमें ताम्र होता हो वहाँके केंचुए ला, उनको समभाग हल्दी, गुड़, गूगल, लाख, ऊन, क्षुद्रमत्स्य, खली और सुहागेके साथ मर्दन कर, गोले बना, मूषामें डालकर कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे ताम्र जैसा (विशुद्ध ताम्ररूप) सत्त्व निकल आता है । मोरके पंखकी चन्द्रिकासे भी इसी प्रकार सत्त्व निकाला जाता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वैक्रान्तसत्त्वपातनम् ।

भस्त्राद्वयेन हठतो ध्मातव्यं पञ्चमाहिषसुबद्धम् ।
दत्त्वा दशांशस्वर्जिकपटुटङ्कणगुञ्जिकाक्षारान् ॥
तद्गच्छति कठिनत्वं मुञ्चति सत्त्वं स्फुलिङ्गकाकारम् ।
मुक्तानिकरप्रायं ग्राह्यं तत् काचमधिवर्ज्य ॥

(र. हृ. तं. अ. १०)

वैक्रान्तके चूर्णमें सज्जीखार, सेंधानमक, सुहागा, घुँघची और जौखार-प्रत्येक दशांश मिला, पञ्चमाहिष (भैंसका मल, मूत्र, दूध, दही और घृत)के साथ मर्दन कर, गोले बना, सुखा, मूषामें डाल, दो धोंकनियोंकी सहायतासे कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे मोतीके दाने जैसा सत्त्व निकल आता है । सत्त्वमें काचका अंश हो तो उसको अलग करके केवल लोहांश ही लेना चाहिये ।

सर्वधातुसत्त्वपातनार्थं सामान्यविधिः ।

गुडटङ्कणपुरलाक्षासर्जरसैः सर्वधातुभिः पिष्टैः ।
छागीक्षीरेण कृता पिण्डी शस्ता हि सत्त्वविधौ ॥

(र. हृ. तं. अ. १०)

किसी भी धातुके चूर्णको गुड़, सुहागा, गूगल, लाख और राल-इनके साथ बकरीके दूधमें पीस, गोला बना, सुखा, मूषामें डालकर धोंकनीकी सहायतासे कोयलोंकी कड़ी आँच देनेसे उसी धातुसे सत्त्व निकल आता है ।

परिशिष्ट ८ ।

रसयोगेषु प्रयुज्यमानानां केषाञ्चिदुद्भिज्जद्रव्याणां शोधनविधिः ।

वत्सनाभ-शृङ्गिकशोधनम् ।

विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत् ।
गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥
गोमूत्रं तु प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः ।
त्र्यहेऽतीते तदुद्धृत्य क्षालयित्वा विशोषयेत् ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अन्यप्रकारः ।

खण्डीकृत्य विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया ।
अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥
अजादुग्धाभावतस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ।

(योगरत्नाकर)

वत्सनाभ (बछनाग) और शृङ्गिक (मोहरी) के छोटे-छोटे टुकड़े कर, कपड़ेमें बाँध, उस पोटलीको मिट्टी या काचके पात्रमें रख, पोटली अच्छी तरह डूब जाय इतना गोमूत्र डालकर दिनभर धूपमें रख छोड़े । दूसरे दिन पहिलेका गोमूत्र फेंक, नया गोमूत्र डालकर दिनभर धूपमें रखे । इस प्रकार तीन दिन करे । चौथे दिन पोटली खोल, विषको जलसे धोकर धूपमें सुखा ले । अथवा विषके छोटे-छोटे टुकड़े कर, कपड़ेमें बाँध कर दोलायन्त्रमें बकरी या गायके दूधमें तीन घंटा पका, गरम जलसे धो, धूपमें सुखा कर योगोंमें डाले । यदि गोमूत्र और दूध दोनोंमें शोधन किया जावे तो विष अच्छा शुद्ध हो जाता है ।

अहिफेनशुद्धिः ।

अहिफेनं शृङ्गवेररसैर्भाव्यं त्रिसप्तधा ।
शुध्यत्युक्तेषु योगेषु योजयेत्तद्विधानतः ॥

अफीमको अदरकके स्वरसकी २१ (इक्कीस) भावना देनेसे वह शुद्ध होता है । योगोंमें शुद्ध अफीमका ही प्रयोग करना चाहिये । एक बार डाला हुआ अदरकका रस अच्छी तरह सुखने पर दूसरा रस डालना चाहिये ।

धत्तूरबीजशोधनम् ।

धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुनः ।
गव्ये पयसि दोलायां यामैकं पाचितं ततः ॥
कण्डितं निस्तुषं कृत्वा शुद्धं योगेषु योजयेत् ।

धतूरेके बीजोंको मिट्टी या काचके पात्रमें गोमूत्रमें एक दिन भिगो, दूसरे दिन जलसे धो, एक प्रहर गायके दूधमें दोलायन्त्रमें पका, गरम जलसे धो, सुखा, थोड़ा कूटकर ऊपरका तुष-छिलका निकाल देनेसे उसकी शुद्धि हो जाती है ।

जयपालशोधनम् ।

जैपालं निस्तुषं कृत्वा दुग्धे दोलायुतं पचेत् ।
अन्तर्जिह्वां परित्यज्य निम्बुनीरेण भावयेत् ॥
एवं शुद्धं तु जैपालं रसयोगेषु योजयेत् ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जयपाल (जमालगोटे) के बीजोंके ऊपरका कवच निकाल, कपड़ेमें पोटली बाँधकर गायके दूधमें एक प्रहर दोलायन्त्रमें पकावे। पीछे गरम जलसे धो, दो दाल अलग कर, बीचकी जीभ (अङ्कुर) निकाल, तीन दिन नीमूके रसमें घोंट, धूपमें सुखा कर रसयोगोंमें उनका प्रयोग करे।

गुञ्जाशुद्धिः।

गुञ्जा काञ्जिकसंस्विन्ना शुद्धिमायाति यामतः।

गुञ्जा (घुँघची) को खट्टी काँजी या गायके दूधके साथ एक प्रहर दोलायन्त्रमें पका, ऊपरका कवच निकाल, जलसे धोकर सुखा लेनेसे वह शुद्ध होती है।

कुपीलुशोधनम्।

गवां मूत्रे कुपीलुं तु स्थापयेत् सप्तरात्रकम्।
तत उद्धृत्य गोदुग्धे दोलायन्त्रे विपाचयेत्॥
याममात्रं ततः कृत्वा त्वगङ्कुरविवर्जितम्।
नीरेण क्षालयित्वाऽथ रसयोगेषु योजयेत्॥

कुचलेको मिट्टी या काचके पात्रमें सात दिन गोमूत्रमें भिगोवे। प्रतिदिन गोमूत्र बदलता रहे। आठवें दिन जलसे धो, गायके दूधमें एक प्रहर पका, गरम जलसे धो, ऊपरका छिलका और दो दालके बीचका अंकुर (जीभ) निकाल, उसी हालतमें कूट, सुखा कर रख छोड़े। इस प्रकार शुद्ध किये हुए कुचलेका योगोंमें प्रयोग करे।

भल्लातकशोधनम्।

भल्लातकान् सुपक्कांस्तु गोमूत्रे दिनसप्तकम्।
तथा च गव्यपयसि वासयेद्दिनसप्तकम्॥
ततो घृष्टेष्टिकाचूर्णैः क्षालयित्वाऽम्भसा पुनः।
संशोष्य मारुतेनाथ वृन्तं छित्त्वा प्रयोजयेत्॥

अच्छे परिपक्क भिलावोंको सात दिन गोमूत्र और सात दिन गोदुग्धमें भिगो, ईंटके चूर्णसे घिस, जलसे धो कर छायामें सुखा ले। इस प्रकार शुद्ध किये हुए भिलावेका वृन्त (टोपी) सरौतेसे काट कर योगोंमें प्रयोग करे।

विजयाशुद्धिः।

विजयां वस्त्रबद्धां तु जलैः प्रक्षालयेद्बुधः।
हरिद्वर्णं जलं यावत्ततः शुष्कां प्रयोजयेत्॥

भाँगको कपड़ेमें बाँध कर जबतक जलमें हरा रंग आवे तबतक जलसे धोवे। पीछे कपड़ेसे जल निचोड़, छायामें सुखा कर योगोंमें डाले।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परिशिष्ट ९ ।

चरकसुश्रुतयोरुल्लिखितानां रसशास्त्रोक्तप्रधानद्रव्याणां स्थलनिर्देशपूर्वकं नामानि ।

अञ्जनम्—च. सू. अ. १, ७० (अञ्जनं सौवीराञ्जनं-च. द.); च. चि. अ. १७, १२५; सु. सू. अ. ३८, ४१; सु. उ. तं. अ. १८, ८५; इत्यादौ ।

अद्रिजतु—(शिलाजतु) च. चि. अ. १६, ७८; इत्यादौ ।

अमृतासङ्गः—च. सू. अ. ३, १० (अमृतासङ्गः तुत्थकं-च. द.); च. चि. अ. ७, ११४ [१](अमृतासङ्गः खर्परिकातुत्थं-च. द.); च. चि. अ. १४, ५५ (अमृतासङ्गः मयूरतुत्थं-च. द.); च. चि. अ. २६, ११७ (अमृतासङ्गः कर्परिकातुत्थं-च. द.) ।

अयस्—च. चि. अ. १, पा. ३, ३; च. चि. अ. १, पा. ४, २२; सु. उ. तं. अ. ४४, २१; इत्यादौ ।

अलम्—(हरितालम्) च. चि. अ १७, ७८; च. चि. अ. १६, ५६ ।

अयोमलं—(लोहसिङ्घाणकं—ड.) सु. उ. तं. अ. ४४, २४ ।

अयस्कान्तः—सु. सू. अ. २७, ४ ।

अश्मजतु—(शिलाजतु) च. चि. अ. १६, २६ ।

अश्मन्तकम्—(मणिविशेषः ड.) सु. उ. तं. अ. १५, २६ ।

आनूपम्—(लवणविशेषः) च. वि. अ. ८, १४१ ।

आलम्—(हरितालम्) च. सू. अ. १, ७०; च. सू. अ. ५, २६; सू. अ. ३७, ३२; सु. उ. तं. अ. ११, ९; इत्यादौ ।

उदुम्बरम्—(ताम्रम्) सु. उ. तं. अ. १८, ८५ ।

ऊषकः—(क्षारमृत्तिका-ड.) सु. सू. अ. ३८, ३७ ।

ऊषसूतम्—(लवणविशेषः) सु. सू. अ. ४६, ३२१ ।

औद्भिदम्—(लवणविशेषः) च. सू. अ. २७, ३०३ ।

औषरम्—(लवणविशेषः) च. वि. अ. ८, १४१ ।

कनकम्—(सुवर्णम्) च. चि. अ. १, पा. १, ५८; सु. शा. अ. १०, ६९; इत्यादौ ।

कनकाकरोद्भवम्—(तुत्थं—ड.) सु. उ. तं. अ. १७, ३९ ।

कर्कैतनः—(कर्कैतनमणिः पद्मरागः-च. द.) च. चि. २३, २५२ ।

काचः—च. चि. अ. १७, १२५ ।

---

१ अस्मिन् योगे तुत्थम्, अमृतासङ्गश्चेत्युभयमपि पठ्यते, अतो भिन्नमेवैतद्द्रव्यद्वयमिति प्रतीयते ।

२ आयुर्वेदप्रकाश (अ. १२, ८५) में सिन्दूरको सुवर्णाकरज बताया है—"सुवर्णाकरजः शुद्धः सिन्दूरो मङ्गलप्रदः ।"

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काञ्चनम्—(सुवर्णम्) सु. शा. अ. १०, ६८; इत्यादौ ।

काञ्चनगैरिकम्—(सुवर्णगैरिकम्) च. चिं. अ. २०, ३२; सु. उ. तं. ४४, २१ ।

काललवणम्—च. सू. अ. २७,३०३ ।

कासीसम्—सु. सू. अ. ३८, ७; च. सू. अ. ३,५; इत्यादौ ।

कांस्यम्—सु. उ. तं. अ. १८, १०३; सु. सू. अ. ४६, ३२८; च चि. अ. २४, १५८ ।

कांस्यनीली—सु. उ. तं. अ. २६, २८ ।

कांस्यापामार्जनमसी—सु. उ. तं. १८, १०३ ।

कुरुविन्दः—सु. सू. अ. ८, १५; सु. उ. तं. अ. १५,२६ ।

कूप्यम्—(लवणविशेषः) च. वि. अ. ८, १४१ ।

कृष्णायः—सु. चि. अ. १२, ११; इत्यादौ ।

गन्धकम्—च. चि. अ. ७, ७१; इत्यादौ ।

गिरिजं—(शिलाजतु) च. चि. अ. २१, १३० ।

गैरिकम्—च. सू. अ. १, ७०; च. सू. अ. ४, १८; सु. क. अ. ६, १६; इत्यादौ ।

जातरूपम्—(सुवर्णम्) च. चि. अ. १, पा. ३, श्लो. ११ ।

टङ्कणक्षारः—सु. सू. अ. ४६, ३२५ ।

ताप्यम्—(माक्षिकम्) च. चि. अ. १६, ७८; सु. उ. तं. अ. ४४, २३; इत्यादौ ।

ताम्रम्—च. चि. अ. १, पा., ५८; च. चि. अ. २३,२३९; सु. सू. अ. ४६, ३२७; इत्यादौ ।

तारः—(तारो रूप्यं-ड.) सु. क. अ. ३, १४ ।

तीक्ष्णायः-तीक्ष्णलोहम्—च. चि. अ. १, पा. ३, १६; सु. चि. अ. १२, १५; इत्यादौ ।

तुत्थम्—च. सू. अ. ३,१२; च. चि. अ. ७, १०२; सु. सू. अ. ३८, ३७; सु. उ. तं. अ. ११, ६; इत्यादौ ।

तुत्थे द्वे—(तुत्थे द्वे इति मयूरतुत्थं, खर्परिकातुत्थं च- च. द.) च. चि. अ. ७, १०८ ।

त्रपु—(वङ्गं) च. चि. अ. ७, ८८; सु. सू. अ. ३८, ६२; सु. सू. अ. ४६, ३२९ ।

नदीजधातुः—सु. उ. तं. अ. ४४,३१ (नदीजं धातुं सुवर्णमाक्षिकं-ड.) ।

नेपालजा—(मनःशिला) सु. उ. तं. अ. १९, १४ ।

नेपाली—(मनःशिला) सु. उ. अ. ३९, २६३ ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पाक्यं—(लवणविशेषः) च. वि. अ. ८, १४१; च. चि. अ. १५, ८५; इत्यादौ ।
पारदः—सु. चि. अ. २५, ३९ ।
पिचुकः (पिचुको माणिरुत्तरापथे प्रसिद्धः- च. द.) च. चि. अ. २३, २५२ ।
पुलकं—(पुलकं स्फटिकमेव पाकाद्वर्णान्तरमापन्नं–ड.) सु. उ. अ. १५, २६ ।
पुष्पाञ्जनम्—च. चि. अ. २६, २५० ।
प्रवालम्—च. चि. अ. १, पा. १, ५८; च. चि. अ. २६, ५६; इत्यादौ ।
फेनाश्म—सु. क. अ. २, ५ ।
मण्डूरम्—च. चि. अ. १६, ७४; सु. उ. अ. ४४, २३; इत्यादौ ।
मनःशिला—च. सू. अ. १, ७०; सु. सू. अ. १, ३२; इत्यादौ ।
मरकतम्—च. चि. अ. २३, ३५२ ।
माक्षीकम्—च. चि. अ. १६, ७३; सु. चि. अ. १३, १७; इत्यादौ ।
मुक्ता—सु. सू. अ. १, ३२; च. चि. अ. १७, १२५; इत्यादौ ।
रजतम्—च. चि. अ. १, पा. १, ५८; सु. उ. अ. १०, १५; इत्यादौ ।
रूप्यम्—च. चि. अ. १७, १२६; सु. सू. अ. ४६, ३२७; इत्यादौ ।
रसः—(पारदः)—च. चि. अ. ७, ७१ ।
रसोत्तमः—(पारदः)—च. चि. अ. २५, ११६ ।
रीतिः—(पित्तलं) च. सू. अ. ५, ७४; इत्यादौ ।
रोमकम्—(लवणविशेषः)—च. वि. अ. ८, १४१; सु. सू. अ. ४६, ३१३; इत्यादौ
रोमशं—(कासीसं)—च. चि. अ. २९, १५२ ।
लेलीतकः (गन्धकः)—च. चि. अ. ७, ७० ।
लोमशं (काशीशं)—च. सू. अ. ३, ४ ; इत्यादौ ।
लौहम्—च. चि. २६, १६; इत्यादौ ।
वज्रम्—च. चि. अ. २३, २५२ ।
वराटकः—च. चि. अ. २६, २२४ ।
विडम्—(लवणविशेषः) च. सू. अ १, ८८ ।
विद्रुमम् (प्रवालम्)—सु. उ. अ. १८, २४; च. वि. अ. ८, ९; इत्यादौ ।
वैदूर्यम्—च. चि. अ. १, पा. ४, २२ ।
शङ्खः—च. चि. अ. १, पा. ४, २२ ।
शातकुम्भम् (सुवर्णम्)—सु. उ. अ. १८, ९ ।
सिकता—च. चि. अ. १, ७० ।
सीसम्—(नागः) सु. सू. अ. ३८, ६२ ।
सुधा—(चूर्णं) च. सू. अ. १, ७० ।

Vaidyaraj Zile Singh National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No. ....
Book No.
Acc No. 000484

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुधाशर्करा—सु. सू. अ. ११, ११ ।
सुराष्ट्रजा-सौराष्ट्री—च. चि. अ. ७, ११४; सु. चि. अ. १९, ४०; इत्यादौ ।
सुवर्णम्—च. चि. अ. १, पा. ३, ४६; सु. शा. अ. १०, ६८; इत्यादौ ।
सुवर्णमाक्षिकम्—च. चि. अ. ७, ७१ ।
सूर्यकान्तः—च. चि. अ. ९, १८ ।
सैन्धवम्—च. सू. अ. २७, ३००; सु. सू. अ. ४६, ३१४; इत्यादौ ।
सौवर्चलम्—च. सू. अ. २७, ३०१; सु. सू. अ. ४६, ३१७; इत्यादौ ।
सौवीराञ्जनम्—च. सू. अ. ५, १५; सु. उ. अ. १७, १३; इत्यादौ ।
स्फटिकः—च. चि. अ. १, पा. ४, २२; च. चि. अ. १७, १२५; सु. उ. अ. १२, २२; इत्यादौ ।
स्रोतोञ्जनं-स्रोतोजम्—च. चि. अ. २०, २९; सु. चि. अ. २४, १८; सु. उ. अ. २१, ९८; इत्यादौ ।
हरितालम्—च. चि. अ. २६, १९६; सु. क. अ. २, ५; इत्यादौ ।
हेम—(सुवर्ण)—च. चि. अ. १, पा. ३, २५; सु. शा. अ. १०, ६९; इत्यादौ ।

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य-
विरचित रसामृत संपूर्ण ।

Vaidyaraj ... National Ayurvedic Library ... New Delhi ...
Acc

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

All India Ayurvedic Congress,
"Dhanwantari Bhavan,"
Road 66, Punjabi Bagh; New Delhi-1100

रसामृतस्य शुद्धिपत्रम् ।

अशुद्धं	शुद्धं	पृ.	पं.
मानमि	मानमिदं	३	२९
यदि	इस पर भी यदि	४	५
घड़ेमें	घड़ेमें सैन्धवयुक्त जलके साथ	५	२९
मिश्रण	यौगिक	६	२२
ढाल	डाल	८	१२
साथ एक	एक साथ	१०	२७
कर,	कर, कज्जली सूखने पर	११	१२
जंजफर	जंजफर,	१२	२०
सर्वदोषहरो	सर्वरोगहरो	१२	२८
क्रमिहर	वमिहर	१७	५
भर	आधेतक भर		२३
जायगी	जायगी ।	९	३३
मूसमें	मूषामें	२०	१
बनानेमें हैं	बनानेमें	२२	२१
मर्दनके	मर्दन करके	२४	१२
अखदः	अखद;	३५	२९
मुदारसंखग	मुरदारसंग	३८	१
इस्पहानी	इस्फहानी	३९	२६
फूल	फूल,	४१	१२
रसकात्रिधा	रसकत्रिधा	४२	२५
मासा	माशा	४६	१३
खैर	खैर,	४७	२८
अभ्रक	वज्राभ्रक	५३	२२
लोह	लोहा	५४	३०
(मनछाल)	मनछाल	५९	२४
सॉफ्टस्टोन्	सॉपस्टोन्	६४	१७
(पहाडों,	(पहाडी)	६९	१७
कहा जाता है	कहते हैं	७७	१५
पाण्डुरोग	अर्श, पाण्डुरोग	७८	२१
राजावर्तो	दिनमेकं	८०	३०
उसका	उनका	८७	१७
अ. ५५	अ. ५	९७	३२
त्रिवृद्यो	त्रिवृद्योष	१०७	८
तोला	भाग	११३	११
हुथला	हुमला	१३१	३१
होते	मिलते	१३४	२८

पृ. १६ पं. २६ के आगे "पक्कं हेम रसायनं विदुरथापक्कं तु सद्यो विषप्रध्वंसि क्षयिबृंहणं वमिहरं वर्ण्यं ज्वरिभ्यो हितम् ।" इतना अधिक पढ़ना चाहिये ।

पृ. ७१ पं. ११ में सैन्धव, सामुद्र, विड, सौवर्चल, रोमक, औद्भिद आदि लवण उत्तरोत्तर उष्णवीर्य, वातहर, कफ-पित्तकर तथा कटुविपाकी है और पूर्व-पूर्व स्निग्ध, मधुर तथा मल-मूत्रको साफ लानेवाले हैं" इतना अधिक पढ़ना चाहिये ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection